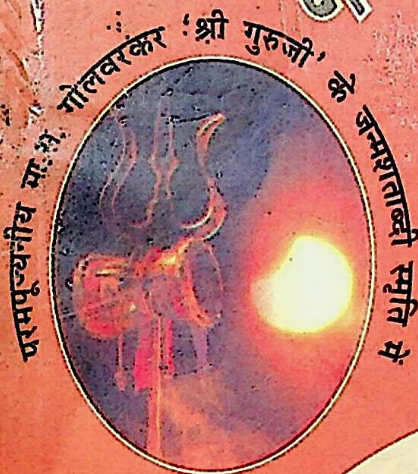
# हिन्दू वैचारिकी: एक अनुमोदन

(हिन्दुत्व के विविध प्रश्नों का समाधान)

5.5

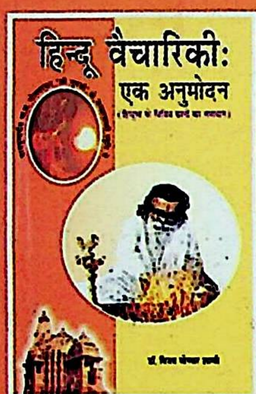


परमपूज्यनीय मा.स. गोलवरकर 'श्री गुरुजी' के जन्मशताब्दी स्मृति में





डॉ. विजय सोनकर शास्त्री




हिन्दू आध्यात्मिक अवधारणाएं प्रकृति पर आधारित सनातन धार्मिक मान्यताओं की सत्यान्वेषित एवं युक्ति संगत चिन्तन है। हिन्दू धर्म के धैर्य (धृति), क्षमा, तपस्या (दम), अस्तेय (चोरी न करना), पवित्रता (शौच), इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य, अहिंसा (अक्रोध) दस लक्षणों को धारण कर तदनुरूप व्यवहार करने से प्रकृति के प्रवाहमान अस्तित्व को बनाये रखने एवं मानव समाज के सर्वांगीण विकास के लिए सक्षम सिद्ध हो सकेगा। 'हिन्दू जीवन पद्धति' पूर्णरूपेण प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर जीवन जीने की एक विधा है। इसका जाति, वर्ण, देश, काल अथवा स्थान विशेष से ही मात्र अभिप्राय नहीं है। इस जीवन पद्धति से मानव अस्तित्व की निरन्तरता एवं गतिशीलता के साथ ही साथ प्रकृति का पूर्णरूपेण संरक्षण होता है। ज्ञान-विज्ञान तथा प्रकृति ज्ञान की पराकष्ठा कर स्थापित सनातन हिन्दू चिन्तन आज विश्व के सामने प्रस्तुत है।

हिन्दू शब्द की व्याख्या, तात्पर्य, भावार्थ एवं परिभाषा जान लेने की ललक आज सबको है। हिन्दुत्व के संदर्भ में व्याप्त भ्रान्तियाँ इस दिशा में अवरोधक सिद्ध हो रही हैं। ये भ्रान्तियाँ योजनाबद्ध रूप से हिन्दू विरोधी ताकतों द्वारा नियोजित है। हिन्दू अवधारणा पर आधारित संयुक्त परिवार पद्धति को हजारों पश्चिमी देशों के परिवारों ने अपना भी लिया है। योग एवं आयुर्वेद से असाध्य रोगों के निदान के लिए पर्याप्त आकर्षण सहज में देखा जा सकता है। अगर संसार इसे जानबूझकर स्वीकार नहीं करता है तो भी एक दिन बाध्य होकर इसे स्वीकार करना ही होगा।

भारतीयों को अपने वर्तमान स्थिति के लिए हीनभाव को त्यागकर इसके लिए उत्तरदायी उन हजारों वर्ष से लेकर आज तक के विदेशी आक्रमणों एवं षडयन्त्रों को उजागर करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। हिन्दू संस्कृति, मानवीय परम्पराएं, प्रकृति पर आधारित हिन्दू जीवन पद्धति एवं लोकजीवन की मर्यादाओं में आवद्ध तथा विश्व कल्यार्थ तत्पर महान हिन्दू धर्म की दृढ़ता के साथ अनवरत चर्चा करनी चाहिए। यह पुस्तक इसी वैचारिकी का प्रतिबिम्ब है।

# हिन्दू वैचारिकी : एक अनुमोदन

(हिन्दुत्व संबंधी विविध प्रश्नों का समाधान)


**डॉ. विजय सोनकर शास्त्री**

एम.ए., एम.बी.ए., पीएच.डी.



नई दिल्ली

2006

प्रकाशक :
**विश्व हिन्दू परिषद**
हनुमान मंदिर, संकटमोचन आश्रम
सेक्टर-6, आर.के.पुरम्,
नई दिल्ली-22



द्वितीय संस्करण : 2006

मूल्य : 100.00 रुपया

मुद्रक :
नीलकंठ कम्युनिकेशंस
5779/2 ब्लॉक नं. 5, देव नगर, करोल बाग-110005
दूरभाष : 011-41558813, 41558814, 9810030014

# विषय क्रम

# आमुख

आज हिन्दुत्व के संदर्भ में विद्वानों, विचारकों, लेखकों एवं वैश्विक एकता, एकरूपता तथा विश्व शान्ति की दिशा में प्रयासरत चिन्तकों को भी भ्रमित कर दिया गया है। हिन्दुत्व के प्रति विश्व भर में इस प्रकार के भाव पैदा करने के पीछे सुनियोजित एवं संगठित रूप से कार्यरत हिन्दू विरोधी ताकतें हैं। स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका में दिए गये व्याख्यान को आज संसार के मानस से मिटाने का प्रयास किया जा रहा है। श्री अरविन्द का आध्यात्मिक चिन्तन तथा महात्मा गांधी द्वारा सत्य एवं अहिंसा का आग्रह रूपी उपहार पर न जाने कैसे एक धुंधली-सी परत छाने लगी है। आज तो सम्पूर्ण विश्व में कट्टर इस्लामिक जेहाद समर्थित उग्रवाद काले घनघोर बादलों के समान छाया हुआ है। वर्चस्व की ललक ने परमाणु अस्त्र एवं अन्य विध्वंसक आविष्कार के साथ न केवल मानव अस्तित्व को अपितु पृथ्वी को ही खतरे में डाल दिया है। ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि इस प्रलयंकारी स्थिति से संसार को कैसे बाहर निकाला जाए? इन परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार इस्लामिक शक्ति को कैसे नियन्त्रित किया जाए? इसी प्रकार एक बार पुनः सम्पूर्ण विश्व पर शासन की इच्छा के साथ व्यग्र ईसाइयत और उसके मिशन को देखकर क्या विश्व शान्ति एवं सुरक्षा की आशा या अपेक्षा विश्व समुदाय कर सकेगा?

हिन्दू संस्कृति के संदर्भ में डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा प्रकट विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है - "हिन्दू संस्कृति सनातन एवं सार्वभौमिक होने के कारण यह संसार के समस्त लोगों के लिए व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में हिन्दू संस्कृति का आधार हिन्दू जीवन पद्धति है जो प्रकृति प्रदत्त है। और जो न केवल प्रत्येक व्यक्ति के लिए, प्रत्येक समुदाय के लिए या प्रत्येक देश के लिए उपयुक्त है बल्कि यह कालातीत है और सर्वदा कल्याणकारी है। यह कभी पुराना या निष्प्रयोज्य नहीं हो सकती। स्मरण रहे हजारों-लाखों वर्ष पहले हमारे ऋषियों ने इस ज्ञान को ज्ञातकर इसे समस्त मानव के कल्याणार्थ सम्प्रेषित किया है।" इस संदर्भ में मेरा भी मानना है कि विश्व कल्याण हेतु यह एक

मात्र संस्कृति है। आज देश में हिन्दू संस्कृति के उत्थान के संघर्ष एवं प्रयास को चाहे जिस दृष्टि से देखा जाए किन्तु हिन्दुओं के इस प्रयास के पीछे भी विश्व कल्याण का ही भाव निहित है।

प्रस्तुत कृति में हिन्दू शब्द की प्राचीनता से संबन्धित अत्यन्त प्राचीन प्रमाणों का उल्लेख, हिन्दू शब्द की विशिष्टता का संकेत है। किन्तु सर्वस्वीकृत हिन्दू शब्द के लिए वर्तमान उपेक्षा एवं तिरस्कार, हिन्दुत्व के प्रति योजनाबद्ध षड्यंत्र एवं दुष्प्रचार का प्रतिफल है। आज हिन्दुत्व का नाम लेने वाले को साम्प्रदायिक घोषित किया जाता है जबकि हिन्दुत्व के दस तत्त्वों (धृति, क्षमा, दम, आस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध) में कुछ तत्त्वों को पूर्ण अथवा आंशिक रूपेण ही धारण करने पर संसार में शान्ति तथा सुव्यवस्था का आधार तत्काल तैयार हो सकता है। इंडियन एयरलाइन्स के विमान को इस्लामिक उग्रवादियों द्वारा किए गए अपहरण एवं सप्ताह बाद उसकी मुक्ति के उपरान्त विमान से बाहर आए एक इटली के ईसाई नागरिक ने कहा कि हिन्दुस्तानियों के धैर्य एवं शान्ति (अक्रोध एवं इन्द्रिय निग्रह) को मैं संसार का आश्चर्य मानता हूँ। हम यूरोपियन ऐसा कदापि नहीं कर सकते थे।

हिन्दू शब्द का तात्पर्य, हिन्दू शब्द की उत्पति का वैदिक स्रोत, संस्कृत व्याकरण के आधार पर व्याख्या, हिन्दू का अर्थ, भावार्थ तथा हिन्दू की परिभाषा इस कृति के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि हिन्दू एक वैज्ञानिक आधारयुक्त जीवन पद्धति है। ऐसे में हिन्दू संस्कृति में व्याप्त कुरीतियों, भेदभाव, ऊँच-नीच के भाव तथा अमीरी-गरीबी के अन्तर अतार्किक एवं अर्थहीन हैं। बारह सौ वर्षों की लम्बी गुलामी, नरसंहार तथा उत्पीड़न ने हिन्दू समाज को उक्त बुराइयों के साथ स्वार्थयुक्त चरित्र की दिशा में धकेल दिया। वरना हिन्दू परम्परा तो मर्यादित आचरण, सत्यनिष्ठ व्यवहार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भातृत्व की भावना, पड़ोसी धर्म तथा वसुधैवकुटुम्बकम् जैसी विशेषताओं पर अडिग है।

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा 'हिन्दू वैचारिकी: एक अनुमोदन' नामक इस कृति में हिन्दुत्व से संबन्धित विविध प्रश्नों का समाधान लिखने एवं निहितार्थ भावबोधों का विज्ञान की कसौटी पर

परीक्षण करने की चुनौती ही इस कृति की विशेषता है। इसे पढ़कर सामान्य व्यक्ति भी हिन्दू धर्म के वैदिक काल की वैज्ञानिक उपलब्धियों को सहज स्वीकार करेगा। वैदिक काल में ज्ञान-विज्ञान का पूर्ण व्यवहार्य स्वरूप था। आधुनिक विज्ञान हिन्दू धर्म को सत्यापित करने के अलावा कुछ नहीं है। भृगु ऋषि का वैमानिक शास्त्र (पुष्पक विमान इत्यादि), वैदिक अंकगणित, शून्य का गूढ़ ज्ञान, ज्योतिष एवं खगोल शास्त्र में ग्रहों-नक्षत्रों की हजारों साल पहले वर्णित दूरियां, भ्रूण प्रत्यारोपण के उदाहरणस्वरूप अत्रि ऋषि का चमड़े के पात्र में उत्पत्ति इत्यादि कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण का उल्लेख किया गया है।

हिन्दू जीवन पद्धति, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू सर्व धर्म समभाव इत्यादि विशेषताओं पर आधारित राष्ट्रीयता तथा नागरिकता यथोचित उदाहरणों के साथ-ही-साथ अनेक प्रश्नों का निहितार्थ भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। डॉ. विजय सोनकर शास्त्री ने पूज्य धर्माचार्यों से परामर्श एवं उनके अनुभवों तथा शाश्वत धर्म ग्रन्थों के गहन अध्ययन से प्राप्त तथ्यों को बड़ी विनम्रता के साथ पुनः प्रस्तुत किया है। ''वसुधैवकुटुम्बकम् तथा सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।'' इत्यादि नीति वाक्यों को हिन्दू वैचारिकी के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके हिन्दू संस्कृति के उदात्त भाव को अन्यान्य कोणों से स्पष्ट किया गया है।

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री ने बाल्यावस्था से ही संघ से जुड़ने के साथ संस्कार भारती तथा विश्व हिन्दू परिषद में विभिन्न उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। सर्वदा महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी इन्होंने अपनी साहित्य रचना की दिशा में चल रही अनवरत यात्रा को प्रवहमान रखा। डॉ. शास्त्री ने राजनीति के क्षेत्र में भी शीर्ष भूमिका का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया है। लोकसभा के सदस्य के रूप में भारतीय संसद में सैकड़ों महत्त्वपूर्ण प्रश्न एवं चर्चाओं में हिन्दुत्व तथा वेद पर जन सामान्य का ध्यान आकृष्ट किया। इनकी योग्यता एवं समाज के प्रति इनकी संवेदनशीलता को देखकर इन्हें राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, भारत

सरकार का अध्यक्ष बनाया गया। हिन्दुस्थान के अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सशक्तीकरण एवं उन्हें प्रतिष्ठित करने के संदर्भ में डॉ. सोनकर शास्त्री की प्रशंसनीय भूमिका को आज भी इस वर्ग के लोग देश भर में याद करते हैं।

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री की इस कृति से सम्पूर्ण हिन्दू समाज वैचारिक पुष्टता की दृष्टि से लाभान्वित होगा तथा देश को हिन्दुत्व के बारे में चिन्तन की एक नई दिशा प्राप्त होगी। मुझे विश्वास है कि अपने वर्तमान युवास्था के इस साहित्यिक यात्रा को सर्वदा गतिशील रखेंगे।

डॉ. सोनकर शास्त्री के उज्ज्वल भविष्य हेतु मेरी मंगल कामनाएँ हैं-

दिनांक: 3 सितम्बर 2005

अशोक सिंहल

(अशोक सिंहल)
अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष
**विश्व हिन्दू परिषद्**
संकटमोचन आश्रम, सेक्टर-6,
आर.के.पुरम्, नई दिल्ली-22

# विचार-भूमि

आज देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार में हिन्दू विरोधी शक्तियां सक्रिय हैं। हिन्दुस्थान की परम्परागत संस्कृति और सभ्यता पर चहुँमुखी कुठाराघात हो रहा है। राजनैतिक अथवा वैयक्तिक हितों की पूर्ति के लिए सनातन हिन्दू जीवन के मानवीय एवं कल्याणकारी मूल्यों के साथ छेडछाड़, उपहास तथा कुप्रचार तीव्र गति से चल रहा है। यह प्रयास विदेशी इस्लामिक आक्रान्ताओं, मुगलों एवं ब्रिटिश काल में व्यापक रूप से हुआ।

विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं एवं मुगलशासन काल में हिन्दुओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। दिल्ली के आसपास के नगर मुस्लिम बाहुल्य थे। बाबर ने स्वयं एक जगह स्वीक़ार किया है कि हिन्दुओं से सम्पूर्ण नगर एक या देढ़ दिन में इस प्रकार खाली करवा लिए जाते थे कि मानो वहां कभी वे रहे ही न हों।[1] मुसलमान सिपाही नगरों के आसपास के गाँवों पर धावा बोलकर हिन्दुओं को पकड़ते एवं उनकी बहू-बेटियों को अपनी हवस का शिकार बनाते थे। मुसलमान नगरों में और हिन्दू आस-पास के गाँवों में ही रहते थे। विदेशी मुस्लिम आक्रान्ता शासकों के सिपाहियों के भय से कभी-कभी हिन्दुओं के गाँव पूर्णरूपेण खाली हो जाते थे। वे जंगलों में भाग जाते थे। इतना ही नहीं हिन्दुओं को जंगलों में ढूँढ़कर जानवरों की तरह शिकार किया जाता था।[2] इन अत्याचारों से हिन्दुओं की एक बड़ी संख्या अपनी बहु-बेटियों एवं स्वयं की रक्षा हेतु घने जंगलों में चली गई। वर्तमान जनजातियों को मध्ययुगीन मुगल अत्याचार के भय से पलाइत उन्हीं हिन्दुओं के वंशज के रूप में चिह्नित किया जाता है।

शक, हूण, फारसी, ईसाई, मुसलमान, मुगल, डच, पुर्तगाली तथा अंग्रेजों इत्यादि के अत्याचार, मारकाट, लूटपाट तथा भयंकर नरसंहार को झेलते हुए आज भी हिन्दू अपने धर्म, संस्कृति एवं जीवन पद्धति की रक्षा में सफल है। इसके पीछे उन आधार-जनित तत्वों का हिन्दू राष्ट्र की वैचारिकी में पाया जाना ही महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान समय में तो स्थिति यह है कि स्वयं हिन्दू ही स्व-संस्कृति को समझने के बजाय दिग्भ्रमित है। इस प्रस्तुति के पार्श्व में यह भी एक विचार है।

---

1. Srivastava, K.L., studies in medieval Indian History PP 24-30.
2. Gopal, L., Economic life of Northern India, Varanasi, P.8.

प्रबुद्ध तथा एकताबद्ध मानव समूह और परिवेश का हिन्दू धर्म सम्यक भावदर्शन है जिसमें मानवता के ज्ञात, अज्ञात, भौतिक, आध्यात्मिक इत्यादि सभी तत्त्व अपनी सम्पूर्णता के साथ निरन्तर सक्रिय तथा प्रवहमान रहते हैं। यह धर्म चिन्मय तत्त्वों को भौतिकता के संचालन के लिए सजगता-पूर्वक प्रयुक्त करता है। हिन्दू धर्म इसलिए एक संवेदनशील धर्म है। वैदिक वाङमय में धर्म के जिन तत्त्वों का उल्लेख है, उनसे यह स्पष्ट होता है कि भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत की समष्टि को इस सनातन धर्म ने आत्मसात कर रखा है। 'मातृभूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' 'द्यौ मे पिताजनिता', 'इमं मे गंगे ज़मुने सरस्वति शुतद्रि स्तोमं सचतां परूष्ठया .......', 'आ राष्ट्रे राजन्यः शूरः इष व्योऽति व्याधि महारथो जायताम्। ....... योगक्षेमो न कल्पताम्' आदि ऋग्वेद, अथर्ववेद एवं शुक्ल यजुर्वेद मन्त्र हिन्दू राष्ट्र का सर्वोपांग चित्रण हैं। वैदिक दर्शन, धर्म के सभी विधायक तत्त्वों का निरूपण करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दू वैचारिकी के अन्तर्गत हिन्दुत्व के विविध प्रश्नों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

हमारा हिन्दू से तात्पर्य भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों के अविच्छिन्न योग से है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में इन्हीं दोनों शक्तियों की ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। हिन्दू जीवन पद्धति में जिस संस्कृति का निर्माण हुआ है, वह सत्, ऋत् एवं ब्रह्म से परिपूर्ण है। हिन्दुत्व को परिभाषित करते हुए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसे एक जीवन पद्धति के रूप में अंगीकार किया है। यह एक मात्र सार्वभौम जीवन पद्धति है। इस जीवन पद्धति को विकसित करने वाला एकमात्र धर्म हिन्दू धर्म है जिसे सम्पूर्ण जगत धारण कर मानवीय कल्याण सुनिश्चित कर सकता है। हिन्दुत्व एक संकुचित अवधारणा नहीं है। हिन्दुत्व को अवधारित करने वाला हिन्दू धर्म केवल विश्वासों और सिद्धांतों का समुच्चय नहीं है। इसका दार्शनिक आयाम विस्तीर्ण है जिसमें अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद तथा द्वैताद्वैतवाद का अप्रतिम चिंतन समाहित है। वेद और उपनिषद् इसकी आधारभूमि का सृजन करते हैं। यह विश्व धर्म है। यह उदार और सर्वग्राही है। हिन्दू धर्म की सार्वभौमिकता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता। हिन्दू संस्कृति की धारा को प्रवाहमान बनाए रखने के लिए समस्त विश्व को सजग एवं प्रयत्नशील होना आवश्यक है; क्योंकि यही एक मात्र मानव धर्म है जो अनादि, सनातन तथा चिरन्तन है। हिन्दू सांस्कृतिक सम्पदा को आत्मसात् कर

सभी देशों के निवासी अपने चिंतन को पुष्ट कर सकते हैं। वस्तुतः हिन्दुत्व का भावबोध मानवता के हित सम्वर्धन से जुड़ा हुआ है। यह पाश्चात्य शब्द 'रिलीजन' से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। 'रिलीजन' तो किसी-न-किसी मत, पंथ या सम्प्रदाय को सम्बोधित करता है जो किसी एक समूह की मान्यता हो सकती है। उसमें न तो सार्वभौमिकता पायी जाती है और न ही सर्वग्राहिता है।

हिन्दू की शाब्दिक व्याख्या के पहले हिन्दुस्थान में स्वभूत सनातन (हिन्दू) धर्म की विशिष्टता के विषय में जानकारी करना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दू धर्म समस्त मतों की जननी है जिसका प्रसार संस्कृत वाङ्मय में निहित है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है कि संस्कृत ही एकमात्र ऐसी विकसित भाषा है जिसमें भाषाशास्त्र के समस्त वैज्ञानिक नियम सार्वभौमिक मान्यताओं के साथ निहित हैं। हिन्दुस्थान की यह सनातन भाषा भौतिक तथा आध्यात्मिक अज्ञानता का निवारण करती है। हिन्दुस्थान का एक नाम भारत भी है। भारत का तात्पर्य 'ज्ञानरत' है अथवा वह जो सदैव ज्ञान की खोज में लगा रहता है। आज समस्त विश्व इस दिशा में अग्रसर है, अतएव जो भी ज्ञान जगत है, वह भारत है। तात्पर्य यह है कि भारत किसी भौगोलिक सीमा से आबद्ध नहीं है। इसमें विश्व के समस्त देश समाहित हो गए हैं। सभी हिन्दू हैं। भौतिक रहस्य आज का विज्ञान है और आध्यात्मिक रहस्य दर्शन है। कर्म, भक्ति और ज्ञान का सम्यक् स्वरूप हिन्दू राष्ट्र में समाहित है। इस विश्व के लिए हिन्दू राष्ट्र एकमात्र उपयुक्त व्यवस्था है।

भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों को भारतीय संतों, ऋषियों तथा मनीषियों ने जो समन्वित चेतना प्रदान की है, वह विलक्षण है। हिन्दू शब्द का शब्दार्थ भी इसी ज्ञान की व्युत्पत्ति है जिसमें 'हि' (शक्ति) तथा 'दू' (दो प्रकार) यानि भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का समन्वय निहित है। वस्तुतः चेतना शक्ति ही सर्वोच्चपूर्ण सत्ता है। ज्ञान और इच्छा के भावों से संयुक्त होकर यह शक्ति कर्म के लिए जीव को प्रेरित करती है जो चैतन्य होकर अपना विकास करता है। सभी प्राणियों के संतुलित विकास के लिए प्रकृति का संरक्षण करना हिन्दू धर्म का आत्मबोध रहा है। यही मूल कारण है कि हिन्दू धर्म, हिन्दू जीवन पद्धति और हिन्दू राष्ट्र प्रकृति का पोषक एवं उससे पोषित रहा है। वास्तव में हिन्दू धर्म प्राकृतिक मानकों पर आधारित सामाजिक व्यवस्थाओं

का सिद्धान्त है। इस संदर्भ में हिन्दू संस्कृति प्रकृतिधर्मा है, जिसके समस्त उपांग प्राकृतिक नियमों का अनुपालन करते हैं और अपनी सनातन आध्यात्मिक ऊर्जा को बनाए रखते हैं।

भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का अस्तित्व सत्, ऋत् तथा ब्रह्म के अधीन है। हिन्दू राष्ट्र में इन शक्तियों की प्रवाहमान गति को बनाए रखने वाले विविध युक्तिसंगत एवं वैज्ञानिक आधारों पर विश्लेषण किया जाना चाहिए। इन दोनों शक्तियों के संतुलन को भारतीय संस्कृति का मूल रहस्य स्वीकार करते हुए इसे जीवन पद्धति में समाहित करने पर बल दिया जाए। हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की दिशा में यह चिंतन ब्रह्माण्ड के कल्याण को दृष्टि में रखते हुए ही उद्भूत है। भारतीय वाङ्मय में 'धर्म' शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थबोध 'भाव' में निहित है। व्यक्तिगत जीवन को धारण करने वाले नियमों, सामाजिक क्रियाओं को धारण करने वाले नियमों और समस्त संसार को धारण करने वाले नियमों के लिए हिन्दू धर्म प्रयुक्त हुआ है। विराट हिन्दू धर्म के वेद, उपनिषद् एवं पुराणादि ग्रन्थों में विश्व के मानव मात्र के कल्याण की जो सम्भावनाएं निहित हैं, वह किसी मत विशेष से आबद्ध नहीं हैं। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की वैचारिकी को हिन्दू राष्ट्र ही अवधारित करता है। अन्य किसी मत में इस प्रकार का चिन्तन प्रस्फुटित नहीं हुआ है। हिन्दू जीवन पद्धति के वैश्विक आयाम का विश्लेषण करते हुए हमने यहां यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि हिन्दू सामाजिक संरचना को विश्व के समस्त देशों में व्यवहृत किया जाए जिससे प्रगति के अनन्त आयाम स्वतः जीवन एवं प्रकृति के हित पोषण के लिए सुलभ हो उठेंगे। हिन्दू धर्म का आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक पक्ष इस कृति में विश्लेषित है। हिन्दू धर्म के सनातन स्वरूप को आधुनिक देशों के सभी मानव समूहों के लिए उपलब्ध कराने की दिशा में यह एकल प्रयास लोगों को चिन्तन के साथ-साथ अनुपालन करने के लिए यदि आकर्षित कर सके तो निःसंदेह स्वभूत चेतना एक बार फिर से सजग हो जायेगी और ब्रह्माण्ड में अवस्थित चैतन्य एवं जड़ का भौतिक तथा आध्यात्मिक पक्ष सुदृढ़ होगा। हिन्दू राष्ट्र का आधार मानव को ज्ञान की निरन्तर खोज में संलग्न करने के साथ-साथ प्रकृति को संचित एवं सुरक्षित रखना तथा मानव जीवन को सुख समृद्धि से परिपूर्ण बनाना है।

आज विश्व में वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की मानसिकता की आंधी प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी है। वर्चस्व की लड़ाई में परमाणु

विध्वंस, समाज में अमीरी तथा गरीबी की खाई, विलासिता की होड़, मानवीय संबन्धों का चूर-चूर होना, भू-सीमा के लिए उग्रवाद का सहारा, अनावश्यक इस्लामिक जेहाद के आधार पर भयानक नरसंहार तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन कराकर जनसंख्या के आधार पर सम्पूर्ण विश्व पर शासन करने की कुचेष्टा ने अब मानव को कहां-से-कहां पहुंचा दिया है? ऐसे में आज हिन्दुओं के अस्तित्व की रक्षा एवं हिन्दुस्थान के प्राचीन राष्ट्रीय मिशन को ध्यान देना आवश्यक है। हिन्दू सुरक्षित होगा तभी हिन्दुस्थान अपना राष्ट्रीय मिशन पूर्ण कर सकेगा। हिन्दुस्थान का राष्ट्रीय मिशन विश्व शान्ति, वसुधैवकुटुम्बकम् तथा विश्व का मार्गदर्शन करना है। तभी भारत विश्व-गुरू कहलाऐगा।

प्रस्तुत पुस्तक का आधार उक्त विचारों पर आधारित है किन्तु सतगुरू की असीम कृपा एवं शुभचिन्तकों की मंगल कामना मेरे इस कार्य के नेपथ्य में प्रमुख है। माननीय अशोक सिंहल जी के यथार्थ कर्मबोध, हिन्दू समाज के संदर्भ में उनकी दृष्टि, सम्पूर्ण हिन्दू समाज के प्रति उनके मन की गहराइयों में पल रहे प्यार, स्नेह, ममता, करुणा, दया तथा समय-समय पर मुझे प्राप्त मार्गदर्शन ही मुख्य स्रोत है। श्री सिंहल जी द्वारा निरन्तर तथ्य संगत शोध की अभिप्रेरणा तथा निर्बाध भेंटवार्ता इस साहित्यिक यात्रा को लक्ष्य तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण रहा है। डॉ. मुरली मनोहर जोशी द्वारा सदैव दिये गये मान-सम्मान, राष्ट्र प्रेम के प्रति सम्वेदनशीलता तथा सार्थक प्रयासों की ओर निरन्तर संलग्न रहने की प्रेरणा मेरे लिए अमूल्य धरोहर है। परम् श्रद्धेय दत्तोपंत ठेंगडी जी की कमी उनके सूत्रवत हिन्दू समाज के सेवा मंत्र वाक्यों ने कभी साथ नहीं छोड़ा। श्री ठेंगडी जी की दैहिक यात्रा समाप्ति के उपरान्त भी एकान्त क्षणों में उनकी स्मृतियाँ मेरे बौद्धिक समृद्धि के लिए पर्याप्त रहीं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह माननीय मोहनराव भागवत जी एवं सह सरकार्यवाह माननीय मदनदास जी द्वारा मेरे रचित साहित्यों पर सन्तोष की अभिव्यक्ति मेरे लिए बहुमूल्य पुरस्कार के समान प्रतीत होता है। माननीय सह सरकार्यवाह श्री सुरेश सोनी जी की पुस्तकें सहायक की भुमिका में रही हैं इस कृति के रूप में प्रस्तुत करके मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। श्रद्धेय मा. गो. वैद्य जी जिन्होंने इस कृति को पढ़कर कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यानं आकर्षित करके मुझे अनुग्रहित किया। माननीय बजरंगलाल जी गुप्त संघचालक-उत्तर क्षेत्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा कर्म भूमि में लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्साहवर्धन एवं

उनकी पुस्तकों के आलोक में सजग हुई मेरी भावनाएँ उन्हे हृदय श्री अधीश जी, अखिल भारतीय सह प्रचार प्रमुख-रा.स्व.स.; डॉ. कृष्णगोपाल जी, क्षेत्र प्रचारक-रा.स्व.सं. पूर्वोत्तर भारत, गुवाहटी जो स्वयं एक लेखक हैं एवं लेखन क्षेत्र के साथ अन्य क्षेत्रो में उनके द्वारा प्राप्त मार्ग-दर्शन मेरे लिए सदैव हितकारी रहा है, इस कृति के माध्यम से मैं उनका हार्दिक सम्मान व्यक्त करता हूँ। मा० ज्योति जी, क्षेत्र प्रचारक प्रमुख, पश्चिम उ०प्र०, मेरठ; मा० शिवनारायण जी, प्रान्त प्रचारक, काशी प्रान्त; मा० चन्द्रमोहन जी प्रान्त शारीरिक प्रमुख, काशी एवं श्री सुनील पांडेय जी वरिष्ठ केन्द्रीय अधिकारी, स्वदेशी जागरण मंच द्वारा अनेकानेक विषयों का विश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति, सारतत्त्व का सारगर्भित सम्प्रेषण तथा अप्रतिम स्नेहिल मार्गदर्शन मेरे लिए सफलता का द्वार प्रमाणित होता है।

श्री कल्याण सिंह वरिष्ठ भाजपा नेता एवं पूर्व मुख्यमंत्री उ०प्र०, श्री कलराज मिश्र वरिष्ठ भाजपा नेता, पूर्व प्रदेश अध्यक्ष एवं पूर्व कैबिनेट मंत्री उ० प्र०, मा० संजय जोशी, महामन्त्री (संगठन)- भारतीय जनता पार्टी, माननीय महेश शर्मा पूर्व अध्यक्ष-खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, डॉ. महेश चन्द शर्मा पूर्व सांसद, अध्यक्ष-एकात्ममानववाद प्रतिष्ठान, श्री वीरेन्द्र सिंह-पूर्व सांसद एवं सदस्य अ० भा० संचालन समिति, स्वदेशी जागरण मंच, श्री डी. एस. विरैया-प्रख्यात विचारक,सदस्य कर्नाटक विधान परिषद् एवं प्रदेश अध्यक्ष-कर्नाटक प्रदेश अनुसूचित मोर्चा, भा.ज.पा., श्री सी. चेलप्पन (आई.ए.एस.) पूर्व सदस्य-राष्ट्रीय अनु.जाति एवं जनजाति आयोग, श्रीयुक्त श्रीश देव पुजारी, अ० भा० संगठक-स्वदेशी जागरण मंच, प्रो. रामजी मालवीय एवं प्रो. नागेन्द्र पाण्डेय-सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री सत्यप्रकाश असीम, राजनीतिक सम्पादक-दैनिक 'आज', श्री अमितांशु पाठक, पत्रकार, वाराणसी, श्री विजय खंडेलवाल, प्रदेश प्रभारी उड़ीसा, सामाजिक समरसता अभियान, विश्व हिन्दू परिषद्, श्री सी.वी. पटोदिया, सलाहकार-विड़ला ग्रुप, प्रो० श्रीमती निर्मला मौर्य-चेन्नई, श्री पी. गुनासेकरन, श्री रंजन खन्ना-चितरंजन एडवरटाईजिंग, श्री अमलेन्दु हलदर, वरिष्ठ नेता- यू.वी.आई. बैंक कर्मचारी कल्याण संगठन, कोलकाता, ज्योतिर्विद पं. प्रसाद दीक्षित, श्री शीतल सिंह, इन्दौर, ई. रंजन कुमार, ई.जे.एल. गुप्ता, श्री विजय मित्तल, डॉ. सुरेन्द्र झा, श्री राजकुमार अग्रवाल, श्री सतीश कुमार उपाध्याय एवं ई. अनुराग जी कुशवाहा, श्री महेश जी आहिरवार आदि सभी शुभेच्छुओं के प्रति आभारी हूं।

आहिरवार आदि सभी शुभेच्छुओं के प्रति आभारी हूं।

मैं विश्व हिन्दू परिषद् के अन्तर्राष्ट्रीय महामंत्री माननीय प्रवीण भाई तोगड़िया के द्वारा दिये जाने वाले उत्साहवर्धन तथा हिन्दू मिशन के प्रति उनकी सुस्पष्ट निर्दिष्ट नीति जो मेरे लिए प्रेरक रही, इस कृति के माध्यम से उन्हे मैं धन्यवाद देता हूँ। श्रद्धेय ठा. सुबेदार सिंह, सदस्य-अखिल भारतीय मार्ग- दर्शक मण्डल, गो रक्षा संवर्धन परिषद् एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री-विश्व हिन्दू परिषद् के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ । ठाकुर सुबेदार सिंह जी ने मुझे प्रारम्भ में ही परिषद् के कार्य में लगाकर मेरे अन्तर्मन में अवस्थित हिन्दू तत्त्व को जगा दिया। विश्व हिन्दू परिषद् के मा० रामफल जी केन्द्रीय मंत्री, मा० पुरुषोत्तम सिंह, केन्द्रीय मंत्री एवं अ०भा० सम्पर्क प्रमुख, महावीर जी प्रदेश संगठन मंत्री, उ०प्र०, मा० उमाशंकर जी प्रदेश संगठन मंत्री, मध्यप्रदेश, मा० गिरिजा सिंह उत्तर क्षेत्र प्रभारी-एकल विद्यालय, श्री शिवदास सिंह, क्षेत्रीय संगठन मंत्री-अ०भा० सामाजिक समरसता अभियान एवं श्री भागवत सिंह के अविस्मरणीय उत्साहवर्धन के लिए मैं कोटिशः धन्यवाद करता हूँ।

इस कृति के माध्यम से मैं श्रद्धेय आचार्य स्वामी श्री धर्मेन्द्र जी महाराज, श्रीपंचखण्डपीठ, विराट नगर, जयपुर, स्वामी ब्रम्हदेव जी महाराज, श्रीब्रहमविद्यापीठ, वेस्टइंडिज, दक्षिण अमेरिका, स्वामी सुधीर जी महाराज, श्रद्धेय महन्त, कालाराम मंदिर, नासिक, स्वामी राधे राधे बाबा, श्रीगोवर्धनपीठ, मथुरा, स्वामी जगदीश मुनी जी महाराज, स्वामी देवानन्द गिरि जी और स्वामी अशोक गिरि जी महाराज, हरिद्वार का मैं हृदय से अध्यात्म के क्षेत्र में विशेष मार्गदर्शन के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। इस कृति के पार्श्व में श्रद्धेय बिहारीलाल जी अग्रवाल 'श्री बाबा जी' कटक, उड़ीसा का मार्गदर्शन, समय-समय पर उनके द्वारा उद्धृत आध्यात्मिक दृष्टान्त एवं हिन्दू धर्म के प्रति उनके विशिष्ट चिन्तन को मैंने एक स्वरूप दिया। उनको मै हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ।

श्रद्धेय 1008 श्री शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती स्वामीगल महाराज जी कामकोटि, कांचीपुरम की मेरे प्रति अगाध ममता एवं एक सम्मेलन में भारी भीड़ के समक्ष अपने आसन पर मुझे बैठाकर और स्वयं एक चौकी पर बैठ तथा द्विभाषिए को हटा मेरे हिन्दी भाषण का तमिल में अनुवाद करके मेरे जैसे प्रभु के चरणों के रज के बराबर मूल्य रखने वाले व्यक्ति को आसमान की बुलन्दियों तक उठाया। श्रद्धेय 1008 श्री

श्री कनिष्ठ शंकराचार्य विजयेन्द्र सरस्वती जी महाराज, कामकोटि मठ, कांचीपुरम् का मैं इसलिए हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, क्योंकि उनके द्वारा सदैव उत्साहवर्धन एवं जीवनपर्यन्त स्नेह देने की प्रतिबद्धता मुझे रोमांचित करता है। परम पुजनीय दोनों शंकराचार्यों द्वारा मुझे निरन्तर हिन्दुत्व के मुद्दे पर सजग एवं गम्भीर अध्ययन के साथ अपने गहन अनुभव की अमूल्य धरोहर उपलब्ध करायी गयी। मैं सदैव उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उनका आभार ज्ञापित करता हूँ।

वात्सल्यमयी मां के आशीर्वाद, बडे भाइयों, बहनों तथा भाभियों के स्नेह तथा पत्नी की सहधर्मिता ने इस पुनीत कार्य को सम्पन्न करने के लिए सर्वदा प्रेरित किया। मेरे प्रिय भांजों, भतीजों एवं बच्चों ने भी एक सहायक के रूप में सहयोग देकर जीवन की अनेकानेक कमियों को दूर किया। मेरे मन में उन सभी के प्रति अगाध स्नेह है और उनके लिए ईश्वर भी सदैव स्नेहिल भाव रखें।

अन्त में मैं सर्वशक्तिमान, शक्तिस्रोत, विश्वरूप, विराट चेतना शक्ति, सृष्टि संचालनकर्ता, करुणामयी जगद्माता एवं परमपिता परमेश्वर रूप सत् सत्गुरू से जाने-अन्जाने हुई गलती, अपराध एवं पाप के लिए क्षमा माँगते हुए इस कृति को सम्पूर्ण संसार के उत्थान के लिए प्रस्तुत करता हूँ। मुझे विश्वास हैं कि यह पुस्तक हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार तथा द्वेष भाव से तर्क करने वाले महानुभावों के जिज्ञासा को शान्त करने के लिए अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी। हिन्दू धर्म के पुरोधाओं, विचारकों, साहित्यकारों और विद्वानों के प्रति लेखक सदैव आभारी रहेगा, जिनकी कृतियों एवं विचारों से वह लाभान्वित हुआ।

लेखक
**डॉ. विजय सोनकर शास्त्री**
सोनकर निवास
चॉदपुर, इन्डास्ट्रियल इस्टेट
वाराणसी (उ० प्र०)

# प्रस्तावना

हिन्दुस्थान प्राचीनतम मानव सभ्यता एवं संस्कृति का उद्‌भव स्थल है। मानव सभ्यता का तात्पर्य आदर्श जीवन शैली युक्त संस्कृति से है जो लोगों को समांज में एक साथ रहने एवं जीवन-निर्वाह का अवसर प्रदान करती है। सभ्यता का आधार सर्वदा संस्कृति ही है। संस्कृति के मिटते ही सभ्यता का स्वतः अन्त हो जाता है। दूसरी ओर संस्कृति का तात्पर्य जीवन जीने की समस्त धारणीय कलाओं, जीवन शैली, सामाजिक अंतःक्रियाओं एवं मानवीय हित पोषक गुणों के समुच्चय से है। इस दृष्टि से हिन्दू वैचारिक पूर्णतः प्राकृतिक एवं शाश्वत है। इसकी दार्शनिक संरचना में प्रकृति पर आधारित संस्कृति और उस संस्कृति पर आधारित सभ्यता का सर्वोत्तम आदर्श निहित है। भारत भूमि महामानव, विश्व मानव और वैश्विक संस्कृति के पुरोधाओं की जन्मस्थली और उनकी कर्मभूमि रही है। यहां के लोक जीवन में ऐसे व्यक्तियों का अवतरण होता रहा है जिन्होंने सतत् प्रवाहमान मानव संस्कृति के सृजन में अतुलनीय योगदान दिया है। प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त निरन्तरता तथा लयबद्ध गतिशीलता है। हिन्दू संस्कृति और लोक जीवन इसी सिद्धान्त की पोषक रही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत के आन्तरिक सम्बन्धों से प्रस्फुटित शक्ति से परिपूर्ण है। अत्याधुनिक गवेषणात्मक चिंतन में इसे दर्शन तथा विज्ञान जैसी अवधारणाओं में आबद्ध किया जाता है। तथ्यान्वेषकों की मान्यता है कि सम्पूर्ण जगत प्राकृतिक सिद्धान्तों पर निरन्तर गतिशील है जो पूर्णतः वैज्ञानिक है। विज्ञान की एक निश्चित सीमा के बाद प्रस्तुत होने वाली अनिश्चितता के अन्तर्द्वन्द में दर्शनज्ञान स्वतः उत्पन्न होता है। इसी प्रकार विज्ञान अनन्त दर्शनज्ञान के लघु प्रकोष्ठ से प्रारम्भ होता है और उसके सुनिश्चित अन्त के बाद पुनः दर्शनज्ञान की ही अनन्त सत्ता अपनी निरन्तरता में वापस लौट आती है। हिन्दुस्थान में इसी दर्शनज्ञान को प्राकृतिक संस्कृति पर आधारित मानव सभ्यता के प्रारम्भ से अध्यात्म ज्ञान के रूप में देखा गया है। इस प्रकार आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान का चिन्तन इस भूमि की विशेषता रही है।

भारत वर्ष एवं हिन्दुस्थान नाम से सम्बोधित होने वाले इस देश के इन नामों के संदर्भ में अनेकानेक प्राचीन कथाएं एवं विद्वानों के मान्य विचार हैं। किन्तु, किसी भी पर्यायवाची के संदर्भ में यह स्पष्ट सिद्धान्त है कि सभी नामों के अर्थ अथवा भावार्थ एक ही भाव बोध में प्रयुक्त हों। ऐसे में भारत वर्ष तथा हिन्दुस्थान नाम के भावबोध में साम्यता की प्रबल अपेक्षा की जाती है। इसलिए यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि क्या भारत एवं हिन्दू इन दोनों शब्दों के अर्थ, भावार्थ अथवा तात्पर्य एक ही हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में चिन्तन के विविध आयाम बनते हैं - ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरते हुए हिन्दू, हिन्दुत्व एवं हिन्दू जीवन पद्धति के साथ इन्हें अवधारित करने वाला हिन्दू धर्म है क्या? हिन्दू वैचारिकी क्या है? यह बात तो विदित है कि आज नब्बे प्रतिशत से ज्यादा हिन्दू धर्म के अनुयायी 'हिन्दू' होते हुए भी यह नहीं बता सकते कि 'हिन्दू' क्या है? हिन्दू का अर्थ, भावार्थ, परिभाषा, व्याख्या क्या है? हिन्दू तत्त्व क्या है? हिन्दू जीवन पद्धति क्या है? हिन्दू लोक जीवन में हिन्दू जीवन पद्धति का विराट कल्याणकारी रूप क्या है? हिन्दू धर्म क्या है? हिन्दुत्व पर आधारित संस्कृति क्या है? हिन्दू देश क्या है? हिन्दू राज क्या है? हिन्दू राष्ट्र क्या है? हिन्दू राष्ट्रवाद क्या है? हिन्दू राष्ट्र की धारणा क्यों? हिन्दू राष्ट्र का वैश्विक स्वरूप क्या है? हिन्दू वैश्विक वैचारिकी में मानव एवं मानव जीवन मूल्य क्या है? हिन्दू लोक जीवन क्या है?

आज संसार के समक्ष इस बात की चुनौती है कि मानव के लिए क्या-क्या उचित कृत्य हैं और क्या-क्या निषिद्ध कृत्य हैं। यानी धर्म क्या है और अधर्म क्या है। कौन-कौन सा कृत्य विधि (संविधान) एवं समाज द्वारा मान्य है और कौन-कौन सा कृत्य विधि एवं समाज द्वारा अमान्य है। उदाहरणार्थ-चोरी करना, झूठ बोलना, गाली देना, स्वयं की पुत्री से विवाह करना इत्यादि सम्पूर्ण संसार में निषिद्ध है। इस प्रकार के कुकृत्य को अनुचित ठहराते हुए इसे अधर्म माना गया है। संविधान में भी इसे अपराध घोषित किया गया है। इसी प्रकार दया करना, क्षमा करना, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, विद्या अर्जन करना, जीवों पर दया करना इत्यादि को विधि एवं समाज द्वारा

सुकृत्य अथवा धार्मिक कृत्य की मान्यता है। किन्तु अमेरिका में समलैंगिकता तथा समलैंगिक विवाह वहां विधि एवं समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होते हुए भी समस्त संसार में इसे अधर्म ही माना जाता है। इसी प्रकार हिंसा का रूप सम्पूर्ण समाज में व्याप्त होते हुए भी अहिंसा को सर्वत्र विधि एवं समाज की मान्यता देते हुए इसे धर्म माना जाता है। अहिंसापरमोधर्मः यानी अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। ऐसे विषय हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के चिन्तन का मुख्य अधिष्ठान है।

वर्तमान विश्व में व्यापक रूप से हिन्दू, हिन्दू जीवन पद्धति और हिन्दू धर्म के प्रति दुष्प्रचार हो रहा है। इतना ही नहीं, हिन्दू विरोधी शक्तियां विभिन्न छद्मरूपों में हिंदुओं के बीच शक्तिशाली रूप में स्थापित हो स्वयं हिन्दू संगठन को ही नष्ट कर रही हैं। भोगवाद पर आधारित ईसाइत या मुस्लिम सामाजिक कुव्यवस्था हजारों वर्षों से स्थापित 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की कल्याणकारी भावना एवं मर्यादित जीवन जीने की कला पर आधारित संस्कृति को तार-तार कर रही है। आज हमारे सामने मात्र आत्मरक्षा ही नहीं इन पैशाचिक संस्कृतियों से विश्वमानव समाज को कैसे बचाया जाय, यह भी चुनौती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिन्दू वैचारिकी हमारे चित्त में स्थापित तथा कर्म में प्रवाहित हो।

हिन्दू धर्म के अनेकों ग्रन्थों में वेद, संहिताएं, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद्, स्तोत्र एवं गृह्यसूत्र के साथ सैकड़ों स्मृति ग्रन्थ हैं। यह सब मंत्र द्रष्टा पुरुष और स्त्री ऋषियों द्वारा रचित हैं। महर्षि वाल्मीकि तथा महर्षि व्यास द्वारा रचित रामायण और श्रीमद्भागवत हिन्दू लोक जीवन के व्यवहारिक उदाहरण को प्रस्तुत करने वाले पात्रों पर आधारित हैं। महाभारत की घटना हजारों वर्ष पहले घटित है। यह विद्वानों ने स्वीकार भी किया है। विश्व का समस्त दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी एवं सिद्धान्त इन ग्रंथों में विद्यमान है। विश्व में आज जो ज्ञान एवं विज्ञान है, वह सब इन ग्रन्थों में पूर्व काल से ही प्रतिष्ठित है। महाभारत महाकाव्य में वर्णित- 'यदिहस्ति तदन्यत्र' अभिव्यक्ति अतिशयोक्ति न होगी कि जो इन ग्रन्थों में नहीं है, वह इस ब्रह्माण्ड में नहीं है। ऐसे में आज हमारे समक्ष यह एक यक्ष प्रश्न है कि हिन्दुत्व से सम्बन्धित विभिन्न

प्रश्नों का यथोचित उत्तर देने के लिए क्या हम तैयार हैं। हिन्दुत्व पर होने वाले प्रहार का हम प्रतिकार क्यों नहीं करते? जब भी कभी हिन्दू धर्म और उससे उत्पन्न जीवन पद्धति को संरक्षित करने का प्रयास किया जाता है तो विकृत मानसिकता के लोग हम पर अलोकतांत्रिक होने का आरोप लगा देते हैं। क्या हमें प्रकृति पोषक हिन्दू संस्कृति की निरन्तरता को बनाये रखने का सार्थक प्रयास नहीं करना चाहिए? यहाँ ऐसे ही कुछ प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया गया है। सभी प्रश्नों का यहाँ समाधान संभव नहीं है, किन्तु जिज्ञासुओं द्वारा आधार-जनित तथ्यों को ग्रहण करने के उपरान्त अनेकानेक प्रश्न स्वतः स्पष्ट हो जाएँगे।

□□□□□

अध्याय-1

# हिन्दू शब्द का उद्‌भव तथा उसकी प्राचीनता

हिन्दू शब्द के उद्‌भव तथा इस शब्द की प्राचीनता पर सदैव प्रश्न किया जाता है। प्रश्नकर्ता यह भली-भाँति जानते हैं कि सनातन धर्म को ही हिन्दू धर्म कहा गया है। कुछ लोग विषय का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण अज्ञानतावश किन्तु जान लेने की परमजिज्ञासा के साथ इस विषय पर चर्चा करते हैं। प्रायः ऐसे लोग भी देखे गए हैं जो जानबूझकर 'हिन्दू' शब्द पर एक सुनिश्चित मानसिकता एवं सुनिश्चित ध्येय के कारण इस विषय पर चर्चा प्रारम्भ करते हैं। वर्तमान समय में न केवल हिन्दुस्थान अपितु सम्पूर्ण संसार में एक सामान्य व्यक्ति स्वयं के जीवनयापन एवं समाजीकरण के प्रचण्ड मायाजाल में उलझा हुआ अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति में व्यस्त है। आज लोगों को पर्याप्त समय नहीं है कि इन महत्त्वपूर्ण विषयों पर गंभीरता से अध्ययन करें एवं तथाकथित दिग्भ्रमित नेताओं अथवा किसी लक्ष्य विशेष को पकड़कर उसकी वकालत करने वाले विद्वानों के बुने जाल को काट सकें।

प्रस्तुत अध्याय में 'हिन्दू' शब्द के उद्‌भव, प्राचीनता, तात्पर्य, भावार्थ, परिभाषा, 'हिन्दू' शब्द के उत्पत्ति के वैदिक स्रोत के साथ ही साथ 'हिन्दू' शब्द की संस्कृत भाषा के व्याकरण के आधार पर व्याख्या का प्रयास हुआ है। यहाँ अवगाहित तथ्य तथा हिन्दुत्व का प्रकृति आधारित भाव हिन्दू धर्म को पूर्णरूपेण मानवतापरक, समाज के स्वयंपोषण एवं विश्व-बन्धुत्व के भाव को सत्यापित करता है।

## 1.1 हिन्दू शब्द की प्राचीनता

हिन्दू शब्द एक प्राचीन शब्द है। 'हिन्दू' शब्द के साथ-साथ 'धर्म' स्वयं अत्यन्त प्राचीन है। धर्म शब्द के साथ सनातन शब्द जोड़ने से इसकी प्राचीनता और धर्म के सनातन यानी हजारों-हजार वर्ष प्राचीनतम होने की अनुभूति का आभास हो उठता है। 'सनातन' शब्द का अर्थ केवल प्राचीन नहीं अपितु सनातन का अर्थ सदातन है।

जो पहले था, आज भी है और जो भविष्य में भी रहने वाला है। वह सनातन यानी शाश्वत है।

कुछ विद्वान् हिन्दू शब्द को बहुत प्राचीन नहीं मानते हैं। किन्तु विद्वानों एवं विद्वत् पाठकों की उत्सुकता को ध्यान में रखकर हिन्दू शब्द की प्राचीनता से सम्बंधित कुछ प्रमाण देने का प्रयास किया गया है। यह शब्द कितना प्राचीन है, इसका अनुमान कुछ अति प्राचीन ग्रन्थों के दिए जा रहे संदर्भों से लगाया जा सकता है। प्रत्येक संदर्भ स्वयं में अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध एवं विश्वसनीय हैं।

**अरब, ईरान एवं मिश्र इत्यादि देशों के प्राचीन साहित्य में हिन्दू शब्द**

ईसाइयत के प्रवर्त्तक ईसा मसीह एवं इस्लाम के प्रवर्त्तक मुहम्मद साहब के जन्म के पहले अरब के अनेक देशों (ईरान, मिस्र इत्यादि) में महादेव, हिन्द, हिन्दू एवं हिद्व इत्यादि शब्द लोक साहित्य में प्रचलित थे। पैगम्बर मुहम्मद के जन्म के लगभग 2300 वर्ष पूर्व उक्त देशों के एक प्रसिद्ध कवि लबी विन अखतब बिन तुर्फा ने अपनी कविता की पंक्तियों में हिन्द देश एवं वेदों के संदर्भ में उल्लेख किया है[1]–

**अया मुबारकेल् अरज यू रौये नोहा मिलन् हिन्दे।**
**व अरादकल्लाहः मज्योनज्जेल् जिकरतुन्।।1।।**
**वहल् तजल्लीयतुन् एनाने सहबी अखअतुन् जिक।**
**वहाजे ही योनज्जेलुर्रसूल् मिलन् हिन्दतुन्।।2।।**

**अर्थः** हे पुण्यभूमि हिन्द! तू धन्य है; क्योंकि, भगवान ने स्वयं ज्ञान के लिए तेरा चयन किया है ।।1।। हिन्द के ऋषि मुनियों द्वारा भगवान के ज्ञान का प्रकाश चार वेद रूपी प्रकाशस्तंभों के जरिए समूचे विश्व को प्रकाशमान कर रहा है ।। 2।।

हिन्दू शब्द की प्राचीनता के संदर्भ में एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत है। पैगम्बर मुहम्मद साहब के चचाजान उम्र-बिन हश्शाम एक वरिष्ठ शायर थे। उन्होंने अपने अनेक शायरियों में हिन्दू, हिन्द एवं महादेव आदि संज्ञाओं को विशिष्टता के

1. अरब के प्रसिद्ध कवि लबी विन अखतब बिन तुर्फा, सेअरुअल अकूल, पृ. 157

साथ प्रयुक्त किया है। उम्र-बिन हश्शाम को 'अबुल हकीम' के उपनाम से सम्बोधित किया जाता रहा, जिसका अर्थ ज्ञान का पिता था, किन्तु उनके द्वारा इस्लाम न अपनाने के कारण उन्हें 'अबुल् जिहल' यानी अज्ञान का बाप कहा गया। उम्र-बिन हश्शाम द्वारा रचित निंम्नलिखित कविता का अवलोकन किया जा सकता है[2]:-

**कफ़ाविक जिकरामिन् अलूमिन् तब असेरू।**
**कलूबन् अमततूल् हवा एवं तजक्करू ॥1॥**
**वमत् जकेरीहा ऊउन् एललवद्-ए-दिलवरा।**
**वलुकयाने जात् अल्लाह हे यौम तब असेरू ॥2॥**
**व अहलोल्लाह अजह अरमीमन् महादेवओ।**
**मनाजिल् इलमुद्दिने मिनहम, वसंयत्तरू॥3॥**
**व सहवी केयाम फी मकामिल् हिन्दे यौमन्।**
**व यकूलन् लातहजन् फ इक्क तवज्जरू॥4॥**
**मअस्सयरे अखलाकुन् हसनन् कुल्लहुम्।**
**नजूमुन् अजाअत सुम्म गावुल् हिन्दू॥5॥**

**अर्थः** जिस आदमी ने सारा जन्म पाप में तथा अधर्म से बिताया है कामक्रोध में जीवन नष्ट किया है। (1) उसे पश्चात्तप होकर, आखिर में यदि वह अच्छे मार्ग पर आना चाहता है, तो क्या उसका भला हो सकेगा?.. होगा! (2) यदि वह एक बार भी मन से उस महादेव की पूजा करेगा, तो धर्म के मार्ग पर उसे उच्चतर पद अवश्य प्राप्त होगा। (3) हे प्रभो! मेरी पूरी जिंदगी के बदले में मुझे केवल एक दिन हिन्द में रहने का अवसर दो; क्योंकि वहां पहुंचने के पश्चात् आदमी जीवनमुक्त हो जाता है। (4) वहां (हिन्द) की यात्रा के कारण, सभी पावन कार्यों की सफलता मिलती है तथा (हिन्दू) आदर्श-गुरुओं का सत्संग भी प्राप्त होता है। (5)

मक्का में किसी हिन्दू मंदिर के होने से इन्कार तो किया जाता है, किन्तु कवियों, शायरों एवं सूफी संतों की कृतियों में हिन्दू धर्म, हिन्द देश, हिन्दू देवता बाबा महादेव, हिन्दू धर्मग्रन्थ वेद, हिन्दू ऋषियों-मनीषियों और हिन्दू राजा विक्रमादित्य का उल्लेख

2. उक्त पंक्तियों का संदर्भ दिल्ली स्थित बिड़ला मंदिर की गीता-वाटिका में संगमरमर की शिलाओं पर देखा जा सकता है।

अनावश्यक नहीं, अपितु कावा के विशाल मक्केश्वर महादेव मंदिर की वास्तविकता की तरफ सहज संकेत है।

मानव समाज में नारी का एक विशिष्ट स्थान है। पुरुष के वर्चस्वयुक्त अरब देश एवं इस्लाम मजहब में स्त्री का नाम हिन्द रखने का प्रचलन स्पष्ट देखा जा सकता है। पैगम्बर मुहम्मद की अनेको पत्नियों में सबसे प्रिय पत्नी का नाम 'हिन्द' था। लैला-मजनू कथा की नायिका लैला का वास्तविक नाम 'हिन्द' ही था। इसी प्रकार अमीर मुवाइयां की मां रईसुल अरब-अतवा की बेटी का नाम भी 'हिन्द' था।

ईरान के प्रसिद्ध बादशाह दारा (522 ई.पू.) का साम्राज्य सिन्धु नदी के किनारे तक फैला हुआ था। उस समय हिन्दुस्थान के हिन्दुओं की कला, सुख-समृद्धि तथा ज्ञान-विज्ञान की ख्याति संसार में चर्चित थी। ईरान के बादशाह दारा के शिलालेखों में हिन्दुओं के सुख-समृद्धि, कला-कौशल के साथ उन्नत संस्कृति एवं सभ्यता के प्रभाव का स्पष्ट वर्णन मिलता है। शिलालेखों से यह भी स्पष्ट होता है कि हिन्दू एवं हिन्द देश के प्रति उनका विशेष सम्मान भी था। यह अलग बात है कि दारा साम्राज्य के लगभग हजार वर्ष बाद इस्लाम मजहब की स्थापना एवं प्रचार के साथ विद्वेष, खूनी संघर्ष तथा लूट-पाट का क्रम प्रारम्भ हुआ। इस्लामानुयायियों ने हिन्दू धर्म एवं हिन्दुस्थान के गौरव को क्षति पहुँचाने का व्यापक प्रयास किया, किन्तु हिन्दुत्व एक भयानक तबाही के बाद आज भी गौरवशाली स्थिति में है।

इस प्रकार अरब देश, ईरान तथा मिश्र इत्यादि देशों में अवस्थित प्राचीन ग्रन्थों, चिन्तकों, कवियों एवं सूफी-सन्तों ने अत्यन्त सम्मान के साथ हिन्दुस्थान को हिन्द देश एवं यहाँ के निवासियों को हिन्दू कहा है। उनकी भावना हिन्दू या हिन्द शब्द प्रयोग करते समय पवित्र रहती थी। इतना ही नहीं हिन्द देश के देवता 'महादेव' का वर्णन करते हुए उस ईश्वरीय परमसत्ता में पूर्ण आस्था एवं समर्पण प्रतीत होता है। ईरान, मिस्र और अन्य अरब देशों में हिन्दू शब्द को वर्तमान भावबोध में ही प्राचीन काल से प्रयोग किया गया है।

## हिन्दू शब्द प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रंथों एवं अन्य प्राचीन साहित्यों के अनुसार

हिन्दू शब्द का प्रयोग हिन्दू धर्म ग्रंथों में भी प्राचीन काल से ही प्राप्त होता है। वास्तव में धर्म शब्द अपने आप में ही पूर्ण है किन्तु 'सनातन' तथा 'हिन्दू' ये दोनों शब्द धर्म शब्द के साथ विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं।[3] जिस प्रकार सनातन का अर्थ सत्य अथवा सदैव अथवा अनादि या प्राचीन भाव में लिया जाता है, उसी प्रकार हिन्दू शब्द को भी धर्म के गुण या गुणवत्ता के रूप में ही माना जाता है। हिन्दू शब्द का प्रयोग हिन्दू भाव से है, यानी धर्म का रूप या गुण हिन्दू है। तब हिन्दू एक गुणवाचक संज्ञा के रूप में व्यवहरित है। इसी गुणवाचक संज्ञा को हिन्दू धर्म ग्रन्थ, साहित्य तथा संस्कृति के व्यावहारिक रूप में कैसे प्रयुक्त किया जाता है, इसका कुछ संदर्भ सहित उदाहरण प्रस्तुत है :-

**हिंसया दूयते यश्च सदाचरण तत्पर।**
**वेद, गो, प्रतिमा सेवी स हिन्दूमुख वर्णभाक्॥**

**(बुद्ध स्मृति, ईसापूर्व 4थी सदी)**

**अर्थः-** हिंसा से दुखी होने वाला तथा सदाचार में तत्पर, गौमाता, वेद तथा देवताओं का उपासक ही हिन्दू है।

**हिमालयात् समारभ्य यावत् इन्दु सरोवरम्।**
**तद्देवनिर्मितं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते॥**

**(बार्हस्पत्य शास्त्र, इस्वी की 4थी सदी)**

**अर्थः-** हिमालय से आरंभ होकर हिन्दू महासागर तक फैले इस देवनिर्मित देश को हिन्दुस्थान कहते हैं।

**जानुस्थाने जैनु शब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च।**
**सप्त-हिन्दुर्यावनीच पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका॥**

**(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व अध्याय 536, इस्वी की 4थी सदी)**

**अर्थः-** यूनान आदि देशों में 'सप्त सिन्धु, इस शब्द में स्थित 'स'कार का लोप होकर, 'ह' कार ऐसा प्रयोग होता है; इसीलिए

3. सनातनस्य धर्म इति सनातन धर्मः, सनातनश्चासौ धर्मश्च, सनातनयति इति सनातनः। श्री भारतीतीर्थजी महाराज, सनातन धर्म का स्वरूप, धर्मशास्त्रांक, कल्याण, 1996,

उसका अपर रूप 'हप्त हिन्दु' प्रचलित हुआ है।

**कलिना बलिना नूनं धर्माकलिते कलौ।**
**यवनैर्घोरमाक्रान्ता हिन्दवो विन्ध्यमाविशन्॥**

(कीलिकापुराण, इस्वी की 5वीं सदी)

**अर्थः**- धर्महीन कलियुग में बलवान कलि तथा यवनों के (निरंतर) आक्रमणों के कारण संत्रस्त होकर हिन्दुओं ने विन्ध्य (प्रदेश) में प्रवेश किया।

**हिन्दुधर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः।**
**हीनं च दूषयत्येष हिन्दूरित्युच्यते प्रिये॥**

(मेरु तंत्र, इस्वी की 8वीं सदी)

**अर्थः**- हे प्रिये! हिन्दू धर्म का नाश करने वाले चक्रवर्ती उत्पन्न हो रहे हैं। जो हीनता का त्याग करता है, वही हिन्दू है।

**हीनस्ति तपसा पापान् दैहिकान् दुष्टमानसान्।**
**हेतिभिः शत्रुवर्गश्च स हिन्दुरभिधीयते॥**

(पारिजातक हरण नाटक, इस्वी की 11वीं सदी)

**अर्थः**- जो अपनी तपस्या से अपने दैहिक एवं मानसिक पापों का नाश करता है; तथा शत्रुओं का विनाश करता है; वही हिन्दू है।

**ॐकार मूलमंत्राढशः पुनर्जन्मदृढाशयः।**
**गोभक्तो भारतगुरू हिन्दुहिंषक दूषकः॥**

(माधव दिग्विजय, इस्वी की 14वीं सदी)

**अर्थः**- ॐकार ही जिसका मूल मंत्र है; जो पुनर्जन्म में विश्वास रखता है; जो गो-भक्त है; भारत देश से स्फूर्ति लेता है; और हिंसा का त्याग करता है; वही हिन्दू है।

प्राचीन हिन्दू धर्म-साहित्य पुराण, शास्त्र, स्मृतियों, संस्कृत नाटकों एवं आधुनिक साहित्य में हिन्दू शब्द का सर्वत्र उल्लेख प्राप्त होता है। हिन्दू शब्द के अर्थ के विषय में विभिन्न विद्वानों में मत-भिन्नता होते हुए भी प्रकारान्तर से भावार्थ एक ही है। उत्सुक एवं विद्वत्जनों के मन में तब यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि इस देश एवं संस्कृति में संस्कृत जैसी उत्कृष्ट तथा वैज्ञानिक भाषा के रहते हुए इस प्रकार के अनावश्यक भ्रम क्यों हैं?

## 1.2 हिन्दू शब्द का तात्पर्य

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा हिन्दू को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है–

"भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति से युक्त मानव जीवन तथा समाज की विभिन्न संस्थाओं की व्यावहारिक क्रियाओं में भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का प्रभावी होना ही मौलिक हिन्दू जीवन है। भौतिक और आध्यात्मिक अथवा लौकिक एवं परलौकिक मान्यताओं से युक्त लोक जीवन पर आधारित व्यवस्था हिन्दू व्यवस्था है।"

**आचार्य विनोबा भावे के अनुसार–**

**हिंसया दूयते चित्तं तेन हिन्दुरितीरितः।**

अर्थात् हिंसा से जिसका चित् दुखी हो, उसे हिन्दू कहा जायेगा।

**एक अन्य अहिंसा भाव से सम्बन्धित परिभाषा–**

**हिंसया दूयते यश्च सदाचरण तत्पर।**
**वेद, गो, प्रतिभा सेवी स हिन्दु मुख वर्णभाक॥**

अर्थात हिंसा से दुखी होने वाला, सदाचार में विश्वास रखने वाला, गौ, वेद एवं देव प्रतिभाओं को पूजने वाला हिंदू है।

**भू-सांस्कृतिक अवधारणा पर आधारित परिभाषा–**

**आसिन्धोः सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।**
**पितृ भूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दू रितिस्मृतः॥**

अर्थात् सिन्धु नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त की भारत भूमि जिनकी भूमि है, वही हिन्दू है।

**शब्द कल्पद्रुम कोष–**

**हीनं दूषयार्ति इति हिन्दूः।**

अर्थात हीन आचार को दूषित समझ परित्याग कर दे, वही हिन्दू है।

## 1.3 हिन्दू शब्द का भावार्थ

संस्कृत व्याकरण के आधार पर 'हिन्दू' दो शब्दों की संधि

है और सन्धि-विच्छेद के बाद दोनों शब्द 'हिं' और 'दू' के अक्षर विन्यास के रूप में स्पष्ट पहचाने जाते है। 'हिं' शब्द का अर्थ शक्ति होता है। यह एक बीजमंत्र है। बीजमंत्रों का अपना अलग प्राकृतिक नियमन होता है। इसलिए 'हिं' बीज मंत्र का प्रकृति में व्याप्त शक्ति के आवाहन तथा दर्शन के लिए प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार 'हं' बीज मंत्र शिव के आह्वान एवं दर्शन के लिए प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार 'हीं' भी शक्ति यानी देवी दुर्गा के आवाहन के लिए प्रयुक्त किया जाता है।[1] यानी 'हीं' का अर्थ 'शक्ति' हुआ और इसी प्रकार 'दु' शब्द संस्कृत व्याकरण के शब्द रूप के आधार पर 'दो प्रकार' से है। इसलिए हिन्दू शब्द का अर्थ आध्यात्मिक दर्शन के क्षेत्र में दो प्रकार की शक्ति से ही लिया जाता है। अब अगर ब्राह्माण्ड का चिन्तन ध्यानपूर्वक तथा गहराई के साथ किया जाए तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड में स्थित अनेक प्रकार की शक्तियां सिमट कर दो भाग में रह जाती हैं। एक शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति और दूसरी शक्ति को भौतिक शक्ति कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि -**''हिन्दू का भावार्थ दो प्रकार की शक्ति यानी आध्यात्मिक शक्ति और भौतिक शक्ति हैं। जब एक साथ यही शक्तियां सन्तुलित रूप में उपस्थित हो अथवा पाई जाएँ तो ऐसे विशिष्ट भाव को हिन्दू कहा जाता है।''**

## 1.4 हिन्दू शब्द का वैदिक स्रोत

'हिन्दू' शब्द की उत्पति का एक स्रोत वेद भी है। वेद में 'सिन्धु' नदी का नाम आता है। इतना ही नहीं 'सप्त सिधवः' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सात नदियों का एक समूह और उन नदियों का एक फैला हुआ विस्तृत क्षेत्रफल। यहाँ सिन्धु शब्द 'सिन्धु' नामक नदी के बोध में नहीं अपितु 'सिन्धवः' का प्रयोग सात नदियों के लिए बहुवचन का द्योतक है। सप्त सिन्धु (नदी) के समूह में गंगा, यमुना, सरस्वती, शतुद्र, मरूवृधा, वितस्ता, अर्जिकिया एवं सुषोमा नामक नदियों का उल्लेख है। इतना ही नहीं ये नदियां जिस प्रदेश में अवस्थित थीं उसी प्रदेश को 'सप्त सिधु' कहा जाता था। वेद में इसी 'सप्त सिन्धु' प्रदेश का स्वरूप प्रकट है।

वेदों के 'सिन्धु' शब्द से ही 'हिन्दु' शब्द की उत्पति के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। **प्रथम**, उच्चारण के आधार पर हम देखते है कि 'स' के स्थान पर 'ह' उच्चारण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। पारसियों के प्राचीन धर्म ग्रन्थ अवेस्ता में 'स' के लिए 'ह' का उच्चारण तो सामान्य रूप से ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार 'सुर' के स्थान पर 'हुर' और 'असुर' के स्थान पर 'अहुर' है। अवेस्ता में 'हप्त हिन्दू' शब्द का होना इस बात का प्रमाण है कि वेदों का 'सप्त सिन्धव' कालान्तर में अन्य भाषाओं इत्यादि के साहित्य में 'हप्त हिन्दुत्व:' के रूप में प्रचलित हुआ। **द्वितीय**, अथर्व वेद में वर्णित 'हरितो नरंह्य' (4.20.30) की व्याख्या करते हुए निघण्टु में स्पष्ट है कि 'सरितो हरितो भवति, सरस्वत्यो हरवत्य:'। इस व्याख्या के अनुसार भी वेदों में प्रयोग हुआ 'सप्त सिन्धव' शब्द 'हप्त हिन्दव:' के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हुआ। **तृतीय**, सामान्य बोलचाल की हिन्दी साहित्य के अनुसार भाषा में 'सप्ताह' शब्द 'हप्ता' शब्द के रूप में प्रचलित है। इस प्रकार वेदों का 'सिन्धव' शब्द 'हिन्दव' इत्यादि शब्दों में स्थापित होता गया। **चतुर्थ**, 'हमराही, हम सफर, हमदर्दी' शब्दों में सम की जगह हम का प्रयोग सिद्ध होता है। इन शब्दों का प्रयोग 'सम' यानी 'बराबर' के तात्पर्य में ही लिया जाता है। **पंचम**, गुजरात में 'सूरत' को 'हूरत' एवं 'सुपारी' को 'होपारी' कहने वाले आज भी पाये जाते हैं। इस आधार पर भी 'स' अक्षर को 'ह' अक्षर में परिवर्तित होने के उच्चारण सम्बन्धित यह उच्चारण प्रविधि भारतीय भाषाओं में प्रचलित है। **षष्ठ**, पूर्वोत्तर भारत में भी 'स' अक्षर को 'ह' अक्षर उच्चारित करने का प्रचलन है। इसीलिए 'असम' को वहां के क्षेत्रीय लोग 'अहोम' बोलते है। 'सम्पादक' शब्द को 'हम्पादक' एवं 'संघ' शब्द हो 'हंघ' उच्चारित किया जाता है। **सप्तम्**, अंग्रेजी भाषा में भी प्रचलित 'इन्डस' शब्द प्राचीन 'सिंध' और वर्तमान 'हिन्द' शब्द का ही द्योतक है। 'सिंधस, हिन्दस तथा इन्डस' शब्द के मात्राओं में अधिक अन्तर नही है। **अष्टम्**, आज हिन्दुओं का वेदों में पूर्ण विश्वास 'सप्त सिन्धव' शब्द को आत्मसात् कर 'हिन्दू' शब्द से चिन्हित होने एवं इस सप्त नदियों के साथ विस्तृत रूप से फैले विशाल क्षेत्र को हिन्दुस्थान नाम से विख्यात होना इस बात का द्योतक है कि वेद और हिन्दू तथा हिन्दुस्थान का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध है।

वास्तविकता यह है कि हिन्दू शब्द एक प्राचीन शब्द है और इस शब्द की उत्पति वेद से ही हुई है। जिस प्रकार हिन्दू, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू जीवन पद्धति पूर्ण रूपेण वैज्ञनिक एवं व्यवहार्य है उसी प्रकार भारतवर्ष अध्यात्म एवं ज्ञान-विज्ञान के चिन्तन के स्थान के रूप में मान्य है।[4] यहाँ हिन्दू शब्द न केवल आत्मसात करके बल्कि इस शब्द के तत्त्व एवं विशेषता को भी लोगों ने धारण किया है। हिन्दुत्व एवं हिंन्दू जीवन पद्धतिं तो हिन्दुस्थान में निवास करने वाले सम्पूर्ण मानव में परिलक्षित है। सभी सम्प्रदाय एवं पंथ के लोग आज हिन्दुस्थान में जाने-अन्जाने हिन्दू की सीमा में व्यवहार एवं परम्पराओं के अनुपालन में प्राय: लिप्त हैं। यह भी वेद के अलौकिक तत्त्व एवं वेद जनित व्यवस्था का प्रमाण है।

## 1.5 हिन्दू शब्द का संस्कृत व्याकरण के आधार पर व्याख्या

'हिन्दू' शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार दो शब्दों को मिलाकर बना है। संधि विच्छेद करने पर प्राप्त दो शब्द इस प्रकार हैं – 'हि' और 'दू' । 'हिं' शब्द बीजमंत्र है। जैसे शिव उपासना हेतु 'हं' बीजमंत्र है[5], उसी प्रकार शक्ति उपासना हेतु 'हिं' बीज मंत्र प्रयोग होता है। यानी 'हिं' का तात्पर्य शक्ति भाव से है। इसी प्रकार 'दु' शब्द संस्कृत व्याकरण के संख्यावाचक सर्वनाम प्रथमा का शब्द रूप है। यानी दू, दु, द्वः। द्विवचन 'दु' का अर्थ है दो प्रकार। अतः हिन्दू का अर्थ हुआ दो प्रकार की शक्ति। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में दो ही प्रकार की शक्तियां हैं। एक आध्यात्मिक शक्ति और दूसरी भौतिक शक्ति। इस प्रकार हिन्दू का अर्थ हुआ आध्यात्मिक और भौतिक शक्ति।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भी इसी संदर्भ तथा अर्थ में अपने भाव प्रकट किए हैं। इस तरह से हिन्दू शब्द का तात्पर्य आध्यात्मिक शक्ति एवं भौतिक शक्ति अथवा अध्यात्म एवं विज्ञान से है। इसे ऐसे भी प्रकट किया जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में दो ही प्रकार की शक्तियाँ हैं, आध्यात्मिक एवं भौतिक शक्ति और दोनों शक्तियाँ जब एक होती हैं तो उसे सर्वशक्तिमान यानी ईश्वर कहते

---

4. यजुर्वेद 27.12, ऋग्वेद 10.186, 7.103.7
5. हं का अर्थ शिव, शब्दकल्पद्रुमः, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

हैं।[6] जिस प्रकार ईश्वर सर्वत्र विस्तृण है अर्थात् विद्यमान, है उसी प्रकार हिन्दू भी सर्वत्र विस्तीर्ण है। ऐसे में हिन्दुस्थान केवल कश्मीर से कन्याकुमारी तथा कच्छ से नागालैंड नहीं, अपितु सम्पूर्ण संसार ही हिन्दुस्थान है। इस ब्रह्माण्ड का कण-कण हिन्दुमय है। हिन्दू मात्र देवी-देवताओं या कुछ रीति-रिवाज में नहीं बल्कि जीवन जीने के आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। हिन्दुत्व पूर्ण वैज्ञानिक और विज्ञान सम्मत है। इसी परिभाषा के आधार पर वसुधैवकुटुम्बकम्......सर्वे भवंन्तु सुखिनः .....विश्मेकम् नीडम्.... इत्यादि नीतिवाक्य प्रचलित हैं।

हिन्दू शब्द को प्राचीन नहीं माना जाता, किन्तु इस शब्द का प्राप्त प्राचीन इतिहास कुछ कम नहीं है। बुद्ध स्मृति, ईसापूर्व चौथी सदी में हिन्दू शब्द का उल्लेख मिलता है। बार्हस्पत्य शास्त्र इस्वी की 4थीं सदी, भविष्यपुराण - प्रति सर्ग अध्याय 5 इस्वी की 4थी सदी, कालिकापुराण इस्वी की 5वीं सदी, मेरुतंत्र इस्वी की 8वीं सदी, माधव दिग्विजय इस्वी की 14वीं सदी में भी रचित ग्रन्थों में हिन्दू शब्द का उल्लेख पाया जाता है।

## 1.6 हिन्दू का अर्थ

मानव समाज की सामाजिक संस्थाओं की अन्तःक्रियाओं के आधार पर मानव जीवन की निरन्तरता का गहन अवलोकन यदि किया जाए तो मानव समुदाय की निरन्तरता एवं गतिशीलता का आभास होता है। इस आभास में यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि आज का मानव समाज कुछ निश्चित सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप गतिशील है। उन्हीं सामाजिक व्यवस्थाओं को विभिन्न संस्कृतियों या जीवन पद्धति के आवरण में देखा जाता है। सिन्धु घाटी और सरस्वती सभ्यता, दजला-फरात की सभ्यता, मध्य एशिया के काला सागर तट की सभ्यता, सिथियन, यूनान, असीरियन, सुमेरियन, खाल्डियन, रोमन आदि संस्कृतियों की भाँति हिन्दू संस्कृति मानव समाज के सम्वहन हेतु अभिजात्य संस्कृति नहीं है।

हिन्दू संस्कृति पूर्णरूपेण प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों पर

---

6. बृहदारण्यक उपनिषद, 5.11

आधारित संस्कृति है।[7] यही कारण है कि संसार की प्राचीन सभी संस्कृतियाँ जहाँ लगभग समाप्त हो गईं किन्तु हिन्दू संस्कृति वहीं अपनी प्रकृति परक विशेषता के कारण भयानक छेड़छाड, नष्ट-भ्रष्ट करने के उद्देश्य से किए गए अनेकानेक भीषण आक्रमणों के बाद भी आज करोड़ों अनुयायियों के साथ गौरव तथा सम्मान के साथ अडिग, अमर एवं निरन्तर है। ऐसे में हिन्दू का अर्थ जान लेना संसार के समक्ष स्वाभाविक उत्सुकता माना जा सकता है। इसलिए संस्कृति के समग्र भाव में कहा जा सकता है कि –

**"हिन्दू का अर्थ आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान चिन्तन के आधार पर मानव, मानव समाज एवं प्रकृति की रक्षा तथा प्रकृति की निरन्तरता बनाए रखने की एक सामाजिक व्यवस्था है।"**

## 1.7 हिन्दू की परिभाषा

हिन्दू को परिभाषित करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि हिन्दू एक विशिष्ट जीवन दर्शन है जिसका आधार प्रकृति, विज्ञान और अध्यात्म ज्ञान है। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रतिपादित कुछ रीति-रिवाज या नियम-कानून नही अपितु प्रकृति के गहन अवलोकन एवं चिन्तन का लम्बे काल तक की प्रक्रिया का मानव कल्याण हेतु प्रस्तुतीकरण है। भारतीय मनीषा के संवाहक ऋषियों और मुनियों ने योग, आगम-निगम, षड्दर्शन, सिद्ध अवस्था, जप, ध्यान एवं तपस्या के माध्यम से प्रकृति तथा प्रकृति के अनुरूप मानव जीवन का तादात्म्य भाव ज्ञात कर लिया था। उन महापुरुषों ने अपने लम्बे काल के ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर हिन्दू ज्ञान रूपी जीवन दर्शन का अनुशीलन किया। ऐसी स्थिति में उक्त दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए हिन्दू की परिभाषा निम्नलिखित है –

**"मानव द्वारा व्यक्तिगत रूप से जप-तप, ध्यान, योग एवं आराधना से युक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वैचारिकी का पालन करते हुए आध्यात्मिक एवं प्रकृतिपरक**

---

7. यजुर्वेद 4.28

**वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित जीवन जीने का दर्शन ही हिन्दू है।"**

## 1.8 हिन्दू का विराट स्वरूप

हिन्दू शब्द में आध्यात्मिक एवं भौतिक शक्ति का अनन्त भाव होने से हिन्दू के विराट स्वरूप की कल्पना स्वाभाविक रूप से की जा सकती है। जिस प्रकार आध्यात्मिक शक्ति और भौतिक शक्ति अनन्त है, उसी प्रकार हिन्दू संस्कृति, हिन्दू ज्ञान-विज्ञान, हिन्दू जीवन पद्धति एवं हिन्दू लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष का अधार अध्यात्म एवं भौतिक चिन्तन होने से अनन्त एवं विराट है। हिन्दू का सम्बन्ध मनुष्य मात्र से नहीं अपितु ब्रह्माण्ड से है और ब्रह्माण्ड भी विराट एवं अनन्त है।

विराट ब्रह्माण्ड में प्रकृति एवं उसके स्वरूप की कल्पना हिन्दू चिन्तन में विस्तृत रूप से है। प्रकृति का मानव द्वारा संरक्षण के संदेश को हिन्दू संस्कृति में सर्वत्र देखा जा सकता है। सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति, वाङ्मय एवं वेदादि ग्रन्थों में प्रकृति के विराट स्वरूप एवं मानव के अन्तरंग सम्बन्धों का विवरण प्रायः प्राप्त है। वेदों में तो प्राकृतिक वर्षा एवं पर्याप्त खाद्यान्न को प्राप्त करने के लिए प्रकृति के विराट स्वरूप की पूजा, अर्चना एवं अनुष्ठान का उल्लेख बड़ी प्रमुखता से किया गया है।

हिन्दू लोक जीवन में हिन्दू जीवन पद्धति, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू सभ्यता की स्थापना का आधार हिन्दुत्व के मूल तत्त्व के साथ आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान है। विज्ञान की हिन्दू दृष्टि में जीव-जन्तु एवं मानव योनियों का चर्चा है। चौरासी लाख योनियों का विवरण हिन्दू दर्शन में प्राप्त है। इन सब पर सूर्य किरणों एवं ग्रह स्थिति का प्रभाव पड़ता है। चौरासी लाख योनियों में नौ लाख जलीय प्राणी, बीस लाख स्थावर, ग्यारह लाख क्रीमी, दस लाख तिर्यक (पक्षी), तीस लाख पशु तथा चार लाख मनुष्य योनियाँ हैं। इन योनीयों में वर्णाकृतिभेद इन्ही योनियों की संख्या एवं भिन्नता के कारण है। मनुष्य योनि में प्रत्येक चार लाख पर एक व्यक्ति समान होता है। मनुष्य योनियों की संख्या अन्यान्य योनियों से कम होने के कारण मानव समुदाय एवं संस्था के रूप में परिलक्षित है। इसीलिए मानव

समुदाय में एकता बनी हुई है और चार लाख संख्या स्वयं में बड़ी होने से भेद भी है। शेष योनियों में यह विषमता अधिक है।

ब्रह्माण्ड में हिन्दू जीवन पद्धति एवं हिन्दू लोक जीवन का सिद्धान्त मानव के समाजीकरण की दिशा में प्रथम माना जाता है। वैसे तो संसार में अनेकानेक जीवन पद्धति एवं संस्कृति प्राप्त है, किन्तु सबमें एकांगीभाव का बोध है, तथापि हिन्दू जीवन पद्धति एवं हिन्दू लोक जीवन में एक पूर्णता का स्वरूप है। इसीलिए हिन्दू सनातन सभ्यता के अन्तर्गत प्राप्त संस्कृति एवं हिन्दू लोक जीवन मानव प्रजाति की प्रथम संस्कृति एवं सभ्यता है। संसार के अनेकानेक जीवन जीने के सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि मानव प्रजाति का संस्थात्मक एवं लोक जीवन का विकसित स्वरूप हिन्दू चिन्तन में है।

सनातन धर्म एवं हिन्दू धर्म में कोई भेद नहीं है। सनातन तथा हिन्दू शब्द धर्म के साथ सदैव उसके सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त हैं। धर्म का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए स्थिति वाचक सर्वनाम रूपी सनातन तथा हिन्दू शब्द धर्म के साथ प्रयुक्त हुआ है।

हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू जीवन पद्धति सदैव प्रकृतिपरक एवं उसकी पूरक रही है। प्रकृति अव्यय भाव में है। प्रकृति के अव्यय भाव का तात्पर्य प्रकृति के अनन्त भाव से है। जैसे समुंद्र से लाख दो लाख गैलन जल निकालने से समुद्र पर कोई अन्तर नहीं पड़ता है। सूर्य किरण का किसी भी मात्रा में उपयोग करने पर सूर्य पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता है। यानी प्रकृति अव्यय भाव में है। इसी प्रकार प्रकृति के अव्यय भाव के सिद्धान्त पर आधारित हिन्दू दर्शन सर्वदा अव्यय एवं विराट स्वरूप में है। हिन्दू दर्शन में संसार की प्रत्येक संस्कृति को समाहित करने की पूर्ण क्षमता है। इसीलिए हिन्दू दर्शन के संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रकृति ज्ञान एवं मानव का विराट जीवन दर्शन ही हिन्दू है।



# अध्याय-2

# हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं जीवन पद्धति

हिन्दू धम की सामाजिक समरसता उसके शाश्वत सार्थकता में निहित है। सहिष्णुता, समन्वयवादिता, प्रकृतिजन्य मानवीय दृष्टिकोण, युक्ति संगत दार्शनिकता एवं सन्तुलित जीवन मूल्यों से युक्त हिन्दू धर्म सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक है। हिन्दू धर्म के सनातन सिद्धांतों में उसकी अमरता का रहस्य छिपा हुआ है। इसके सनातन सिद्धांतों की विशिष्टता का यदि अवलोकन किया जाय तो यही एकमात्र धर्म है जो सम्पूर्ण समाज को धारण करने में सक्षम है।

प्रस्तुत लोक जीवन में जीव-जगत की जो परिकल्पना आदि काल से चली आ रही है, वह उन गुणों से ओत-प्रोत है जिन्हें ब्रह्माण्ड के किसी भी भौतिक या आध्यात्मिक अध्याय में परीक्षण के लिए किया जा सकता है। हिन्दू धर्म की अवधारणा के तहत मानव पंचतत्त्वात्म शारीरिक संरचना, बुद्धि का योग तथा मानवीय मूल्यों से संयुक्त संस्कृति को अवधारित करता है। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दू का अर्थ, हिन्दू तत्त्व, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू जीवन पद्धति इत्यादि विषयों को शास्त्रों एवं दार्शनिक चिन्तन भावों से स्पष्ट किया गया है।

## 2.1 हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म का आधार शाश्वत वेद है। वैदिक समाज धर्म प्रधान था। उनका देवताओं की सत्ता, प्रभाव एवं उनकी व्यापकता में दृढ़ विश्वास था। उनकी विधा में यह जगत पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश के रूप में तीनों लोकों में विभक्त है। अन्यान्य ग्रहों का पूर्ण प्रभाव पृथ्वी पर है। इसी आधार पर पृथ्वी पर भी प्रकृति और प्राकृतिक नियमन परिलक्षित होता है। हिन्दू धर्म की प्राचीनता पर तो प्रश्न नहीं उठता, किन्तु 'हिन्दू' नाम पर आधुनिक विद्वानों की त्वरित

प्रतिक्रिया प्राप्त हो जाती है कि यह शब्द प्राचीन नहीं है। सन् एक में ईसा मसीह पैदा हुए तो ईसाइयत चली, लगभग सन् 675 में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ तो इस्लाम चलाया गया। ईसा के लगभग 500 वर्ष पहले बुद्ध तथा बुद्ध से लगभग 100 वर्ष पहले जैन महामुनि महावीर जी का जन्म हुआ। सनातन धर्म उसके पहले था। बुद्ध स्मृति जो ईसा से 400 वर्ष पहले लिखी गई थी, उसमें हिन्दू शब्द का उल्लेख 'हिन्दू' शब्द की प्राचीनता को स्थापित करतां है।

भारत वर्ष में धर्म के इतिहास को काल सीमा में आबद्ध करना अत्यन्त दुष्कर है। यह भी प्रश्न अनुचित है कि धर्म का निर्माण किसने किया। प्राकृतिक संस्कृति के निर्माण का कार्य क्या मानव के बस कीं बात है। ब्रह्माण्ड के सृजन के साथ ही प्रकृति और प्राकृतिक नियमन अस्तित्व में आये। यह सब ब्रह्म सत्ता के अधीन है। ऐसे में प्रकृति की क्रिया तथा प्रतिक्रिया ही स्वयं में सिद्धान्त बन मानव के समक्ष दृष्टिगोचर हुआ है। धर्म पृथ्वी पर स्वयंभू है। हिन्दू धर्म पूर्णतः प्रकृति मार्गी है। धर्म नाम भारतीय ऋषियों, मुनियों एवं देवताओं ने दिया है। धर्म का तात्पर्य धारण करने से है। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने प्रकृतिजन्य वेद में धारयति इति 'धर्मः' का उल्लेख किया है। वास्तव में अन्यान्य भाषाओं के अनुवाद को लेकर भयानक भूल होना प्रारम्भ हुआ। हिन्दू धर्म को अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके 'हिन्दू रिलीजन' कर दिया गया। स्मरण रहे की संज्ञा का अनुवाद किसी भाषा में नहीं होता। 'धर्म' शब्द संज्ञा है। 'धर्म' का अनुवाद किसी भी राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा में 'धर्म' ही होनां चाहिए।

ऋग्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। दयानन्द भाष्य के अनुसार धर्म शब्द का अर्थ 'वस्तु का स्वभाव' से किया गया है।[1] धर्म शब्द का उद्भव धृ धातु से है जिसका अर्थ है धारण करना-'धारयति इति धर्मः' यानी जिसके द्वारा संसार का धारण एवं रक्षण किया जाए। इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन के प्रथम सूत्र में महर्षि

1. ऋग्वेद, 1.22.28

कणाद ने धर्म की अत्यन्त स्पष्ट एवं तर्क पूर्ण व्याख्या की है। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धि स धर्मः। अतो धर्म जिज्ञासा' यानी जिससे अभ्युदय, श्रेय एवं सिद्धि प्राप्त हो वही धर्म है। दयानन्द भाष्य एवं महर्षि कणाद ने धर्म के भाव को क्रिया भाव में रखकर यह तो स्पष्ट कर दिया है कि समाज में रहकर कुछ विशिष्ट कार्य करने के फलस्वरूप ही धर्म का अनुपालन होगा। यानी धर्म मनुष्यं की वह धारण करने योग्य जीवन पद्धति है जिससे उसे लौकिक भोगों एंव मृत्यु के उपरान्त पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति होती है।

धर्म तथा अधर्म भाव व्याख्या भी एक सामान्य व्यक्ति के लिए सदैव भ्रमात्मक ही रही है, किन्तु इसे स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है कि विधि का विषय धर्म है और निषेध का विषय अधर्म है। जो नियम समाज द्वारा मान्य है उसके पालन को धर्म कहते हैं एवं जो समाज द्वारा निषिद्ध हो वह अधर्म है। उदाहरणार्थ- स्वयं की पुत्री से विवाह सर्वदा निषिद्ध है, इसलिए इस प्रकार का कार्य अधर्म है। किन्तु सत्य, अहिंसा, क्षमा, चोरी न करना, तपस्या, इन्द्रियों पर नियन्त्रण इत्यादि धर्म है। अमेरिका में समलैंगिक विवाह को धर्म माना जा सकता है क्या? भले ही इसे विधि एवं समाज द्वारा मान्यता प्राप्त है? ऐसे विषयों में धर्म एवं अधर्म का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इस अप्राकृतिक क्रिया को भले ही अमेरिका में विधि एवं समाज द्वारा मान्यता प्राप्त है, किन्तु यह अधर्म है और अप्राकृतिक है। इसे कभी भी मान्यता नहीं मिलनी चाहिए। शेष विश्व में इसका प्रचण्ड विरोध है।

धर्म का तात्पर्य 'धारयति इति धर्मः' यानी समाज के नियम और व्यवस्था को धारण कर उनका अनुपालन करना ही धर्म है। जिस प्रकार हमारे यहां प्रचलित है कि 'सड़क पर बायें चलो – यह हमारा धर्म है।' जबकि यह तो एक यातायात का नियम है। इसी प्रकार हिन्दू धर्म का अर्थ प्रकृति के नियमन के आधार पर जीवन जीना यानी आध्यात्मिक और भौतिक शक्तियों की सत्ता के अनुरूप अपने आचार-व्यवहार को प्रस्तुत करना है। 'हिन्दू धर्म' प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके दिनचर्या तथा ऋतुचर्या के अनुरूप

आचरण के संदर्भ बोध में अवस्थित है। सत्, ऋत् तथा ब्रह्म रूपी महत्त्वपूर्ण कारकों पर आधारित सम्पूर्ण रीति-रिवाज, परम्परा, पर्व, त्योहार, उत्सव और धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठान, दिनचर्या, ऋतुचर्या के साथ सत्यनिष्ठ व्यवहार एवं मर्यादित लोकाचार ही हिन्दू जीवन पद्धति है।[2] हिन्दू जीवन पद्धति की इस व्यापक अवधारणा के साथ सम्बद्ध होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों के सम्यक् कल्याणकारी रूप की ही हिन्दू धर्म अभिव्यक्ति है।

**संसार में मानव द्वारा हिन्दू तत्त्वों (दस तत्त्व- धौर्य, क्षमा, तप, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय, निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अहिंसा) को धारण करके उन तत्त्वों के भावानुरूप अपने व्यवहारों से उसे प्रदर्शित करना यानी हिन्दू जीवन पद्धति एवं हिन्दू तत्त्वों पद आधारित कर्म ही हिन्दू धर्म है।**

## 2.2 हिन्दू तत्त्व

हिन्दू शब्द के भावार्थ के बाद हिन्दू तत्त्व के निहितार्थ को समझना आसान है। मनुस्मृति हिन्दू धर्म का लक्षण इस प्रकार मिलता है

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।**[3]

अर्थात् - धृति (धैर्य), क्षमा, दम (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता) इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध (अहिंसा) इस प्रकार ये दस कारक हिन्दू धर्म के लक्षण हैं। यही दसों कारक ही हिन्दुत्व के तत्त्व हैं। इन दसों कारकों के युक्तिसंगत आचरण का मानव व्यवहार में अनुपालन की अपेक्षा ही हिन्दुत्व की मर्यादा है। सच तो यह है कि उक्त दस तत्त्वों में एक या दो तत्त्व के पालन से मानव सन्त की श्रेणी को प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ महात्मा गांधी ने हिन्दुत्व के मात्र दो तत्त्व सत्य तथा

---

2. अथर्ववेद 12.1.26, 12.1.42
3. मनुस्मृति 6/92

अहिंसा को आत्मसात किया तो परिणामस्वरूप विश्व समुदाय उनके पीछे चला। हिन्दुत्व के दसों तत्त्वों को धारण करने वाला व्यक्ति निःसंदेह भगवान के रूप में स्थापित होता है। यही हिंदू दर्शन में नर से नारायण बनने की प्रक्रिया अथवा सिद्धान्त है।[4] ये दसों तत्त्व साधना और तपस्या के आधार पर ही मानव प्राप्त कर सकता है।

हिन्दुत्व के इन्हीं दसों तत्त्वों का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ से आबद्ध हिन्दू संस्कृति में दिनचर्या तथा ऋतुचर्या के अनुरूप चारों पुरुषार्थों को किया जाता है।[5] हिन्दुत्व के दसों तत्त्वों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभ्यास में लाया जाता है। ऐसे में हिन्दू जीवन पद्धति स्वतः पूर्ण वैज्ञानिक और व्यवहारिक स्वरूप में सजीव हो उठती है।

## 2.3 हिन्दू संस्कृति

संस्कृति का तात्पर्य समाज विशेष की उस जीवन पद्धति से है जिसे लोक व्यवहार में समाज के संचालन के लिए उसके सदस्यों द्वारा अवधारित किया जाता है। इस दृष्टि से संस्कृति मूलतः जीवन पद्धति का समुच्चय है। इसलिए हिंदू जीवन पद्धति में निहित आचार-व्यवहार, मर्यादित आचरण, प्रकृति का संरक्षण, दृश्य एवं अदृश्य सत्ता के प्रति सम्मान इत्यादि हिन्दू संस्कृति के मूल तत्त्व हैं।

हिन्दू संस्कृति का आधार प्रकृति है।[6] जैसे-वस्त्र संस्कृति में ऋतु तथा मौसम के अनुरूपं वस्त्र संस्कृति का निर्धारण होता है। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति के प्रत्येक आयाम में ऋतु, मौसम, जलवायु तथा वातावरण की प्रभावी भूमिका है। प्रकृति ही हिन्दू संस्कृति के प्रत्येक आयाम का आधार है। यानी प्रकृति ही संस्कृति (नेचर इज हिन्दू कल्चर) है।

---

4. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.3, विष्णु पुराण 3.6, विष्णु धर्म 1.74.33 श्री विष्णुधर्मोत्तरपुराण अ. 255 पृ. 281.284
5. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ 470–523 सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन, कृ. 9.73.1, सुगा कृतस्य पन्थाः कृ. 8.3.13
6. तत्र तत्र हि दृश्यन्ते.... प्रकृतिभ्य परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।। महाभारत, भीष्मपर्व, 5.11–12

हिन्दू संस्कृति के सनातन और सार्वभौमिक होने के कारण यह संसार के समस्त लोगों के लिए व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में हिन्दू संस्कृति का आधार हिन्दू जीवन पद्धति है जो प्रकृति प्रदत्त है और जो न केवल प्रत्येक व्यक्ति के लिए, प्रत्येक समुदाय के लिए या प्रत्येक देश के लिए उपयुक्त है, बल्कि यह कालातीत है और सर्वदा कल्याणकारी है।[7] यह कभी पुराना या निष्प्रयोज्य नहीं हो सकती। स्मरण रहे हजारों लाखों वर्ष पहले हमारे ऋषियों ने इस ज्ञान को ज्ञात कर इसे संसार के समस्त मानव कल्याणार्थ संप्रेषित किया है।

**हिन्दू संस्कृति का तात्पर्य और प्रकृति के नियमों पर आधारित क्रिया, प्रक्रिया या प्रतिक्रिया के कारण मानव के स्वभाव तथा मानसिक प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण है। प्रकृति का स्वरूप प्रकृति के सिद्धान्त (आधुनिक विज्ञान) पर आधारित है, इसलिए हिन्दू संस्कृति मानव जीवन में प्रकृति के अनुरूप अस्तित्व रक्षा एवं समाज की स्वतः गतिशीलता और निरन्तरता का प्रत्यक्ष प्रारूप है।**

## 2.4 हिन्दू जीवन पद्धति

हिन्दू जीवन पद्धति का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि यह जीवन पद्धति प्रकृतिजन्य विधाओं का समग्र है। हिन्दू की व्याख्या करते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भी आध्यात्मिक एवं भौतिक शक्ति को स्पष्ट किया है। इस प्रकार 'हिन्दू' स्वयं में दो प्रकार की शक्तियों का प्रकट्य है और इसकी क्रियात्मकता अथवा गतिशील व्यवस्था को निर्धारित करने वाली पद्धति ही हिन्दू जीवन पद्धति है। हिन्दू जीवन पद्धति कुछ रीतिरिवाज अथवा पूजा-पाठ की पद्धति ही नहीं अपितु प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाकर जीवन जीने का सिद्धांत है।[8] हिन्दू तत्त्व ज्ञान का एक विशेष उदाहरण आयुर्वेद

---

7. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ.426, न भेंस्तेनो जनपदे न कादर्यो न मध्यपः। न नानाहिताग्निर्विद्वान न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

है। आयुर्वेद का संबन्ध केवल चिकित्सा से नहीं बल्कि मनुष्य की दिनचर्या, ऋतुचर्या के अनुरूप आहार (खाद्यान्न) एवं व्यवहार (प्राकृतिक नियमन के अनुरूप क्रियाकलाप) का निरूपण है।

हिन्दू जीवन पद्धति के व्यावहारिक और वैज्ञानिक विवेचन के आधार पर तीन कारक तत्त्वों की ओर आकृष्ट होता है। सत्, ऋत् और ब्रह्म के रूपों में ये तीनों कारक जाने जाते हैं। सत् का तात्पर्य सत्य यानी प्रकृति से है। जो दिख रहा है अथवा आभास हो रहा है, वह सब सत्य है अथवा प्रकृति है।[9] इसी प्रकार ऋत का तात्पर्य ऐसे स्पष्ट होता है कि प्रकृति का आधार प्राकृतिक नियमन है और नियम के बिना प्रकृति की कल्पना अपूर्ण है। यानी यह प्राकृतिक नियमन ही ऋत् कहलाता है। कृत् आदिसत्ता का स्वसिद्ध सिद्धान्त है।[10] इस तरह सत् और ऋत् यानी प्रकृति एवं प्राकृतिक नियमन को जो शक्ति संचालित करती है, उसे हम ऊर्जा कहते हैं। ऊर्जा के ही आधार पर प्रकृति अपने नियमानुसार क्रिया करती है। इसी प्राकृतिक ऊर्जा को दर्शन की अभिव्यक्ति में ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म आदिसत्ता का संकेताक्षर है।[11] अध्यात्म तथा विज्ञान की भाषा अलग-अलग है। अध्यात्म में सत्, ऋत् तथा ब्रह्म और विज्ञान की भाषा में प्रकृति, प्राकृतिक नियमन और ऊर्जा (नेचर, ला ऑफ नेचर एण्ड इनर्जी) कहा जाता है। प्राचीन काल में हमारे ऋषियों ने प्रकृति के इस रहस्य को ज्ञात ही नहीं किया था; बल्कि सत्, ऋत् और ब्रह्म का ब्रह्माण्ड के कण-कण में अनुभूति तथा दर्शन कर उसी के अनुरूप जीवन जीना भी प्रारम्भ कर दिया था। अध्यात्म जगत का ब्रह्म और भौतिक अथवा विज्ञान जगत का अणु (एटम) अनन्त सत्ता का ही एक रूप है। इसलिए प्रकृति, प्राकृतिक नियमन और ऊर्जा अनन्त है। इस प्रकार यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि हिन्दू जीवन पद्धति पूर्ण विज्ञान सम्मत एवं व्यवहारिक है। ऐसे में हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों,

---

8. शर्मा, डा. मुंशीराम, वैदिक संस्कृति और सदाचार, पृ. 332–334 वेद कथांक, कल्याण, 1999
9. सत्यं सत्सुं सदा धर्मः.......... सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम्।। महाभारत, शान्तिपर्व, 162.4.5
10. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1998.
11. धर्म शास्त्रांक, पृ. 106.

भेद-भाव, छूत-अछूत का कोई तात्पर्य नहीं है। मनुस्मृति के प्रारम्भ में ही उल्लेख है कि जो तथ्य वेद सम्मत न हो उसका आचरण नहीं होना चाहिए। वेद तो स्वयं में पूर्ण एवं विकसित विज्ञान है। हिन्दू जीवन पद्धति पर उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश के द्वारा हुई टिप्पणी कि 'हिन्दू एक जीवन पद्धति है।'[12] यह पूर्ण रूपेण प्रमाणित है। आज सम्पूर्ण जगत जाने-अनजाने आधुनिक विज्ञान को मानकर आधे हिन्दू जीवन पद्धति का संवाहक बन बैठा है। अगर शेष विश्व अध्यात्म ज्ञान को समझ ले और उसे भी मानने लगे तो हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण संसार ने पूर्णतः हिन्दू जीवन पद्धति को अपना लिया है।

## 2.5 हिन्दू जीवन-पद्धति में प्रकृतिजन्य विधाओं का समग्र

हिन्दू जीवन पद्धति का आधार प्रकृति है। इस पद्धति के प्रत्येक आयाम में ऋतु, मौसम, जलवायु तथा वातावरण की प्रभावी भूमिका होती है। प्रकृति ही हिन्दू जीवन पद्धति के प्रत्येक आयाम का आधार है। प्रकृति सनातन और सार्वभौम है, अतएव हिन्दू जीवन पद्धति भी सनातन एवं सार्वभौम है। हिन्दू जीवन पद्धति प्रकृति-प्रदत्त होने से न केवल प्रत्येक व्यक्ति एवं किसी विशेष देश के लिए अपितु सम्पूर्ण संसार के लिए उपयुक्त, सर्वदा कल्याणकारी और कालातीत है। हिन्दू जीवन पद्धति की आधार भूमि हिन्दू संस्कृति है जो पूर्णतः प्रकृतिमार्गी है। हिन्दू संस्कृति का तात्पर्य और प्रकृति के नियमों पर आधारित क्रिया, प्रक्रिया या प्रतिक्रिया के कारण मानव स्वभाव तथा मानसिक प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण है। प्रकृति का स्वरूप प्रकृति के सिद्धान्त पर आधारित है, इसलिए ये हिन्दू संस्कृति मानव जीवन में प्रकृति के अनुरूप जीवन जीकर अस्तित्व-रक्षा एवं समाज के स्वतः गतिशीलता और निरन्तरता को बनाये रखने की एक रचना है।

संस्कृति का तात्पर्य जीवन जीने की समस्त धारणीय कलाओं, जीवन शैली, सामाजिक अन्तःक्रियाओं एवं मानवीय हित पोषक गुणों

---

12. न्यायमूर्ति के.वेंकटस्वामी तथा अन्य की टिप्पणी, 11 दिसम्बर 1995. उच्चतम न्यायालय

के समुच्चय से है। इस दृष्टि से हिन्दू जीवन पद्धति पूर्णतः प्राकृतिक एवं शाश्वत है। प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त निरन्तरता तथा लयबद्ध गतिशीलता है। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू जीवन पद्धति इसी सिद्धान्त की पोषक रही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ ही भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत के आन्तरिक सम्बन्धों से प्रस्फुटित शक्ति से परिपूर्ण है। अत्याधुनिक गवेषणात्मक चिन्तन में इसे दर्शन तथा विज्ञान जैसी अवधारणाओं में आबद्ध किया जाता है। तथ्यान्वेषकों की मान्यता है कि सम्पूर्ण जगत प्राकृतिक सिद्धान्तों पर निरन्तर गतिशील है जो पूर्णतः वैज्ञानिक है।

हिन्दू जीवन पद्धति कुछ रीति-रिवाज अथवा पूजा-पाठ की पद्धति ही नहीं अपितु प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाकर जीवन जीने का सिद्धान्त है। मनुष्य की दिनचर्या, ऋतुचर्या के अनुरूप आहार (खाद्यान्न) एवं व्यवहार (प्राकृतिक नियमन के अनुरूप क्रिया-क्लाप) का निरूपण, इत्यादि पूर्णतः प्रकृतिमार्गी है। यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि अन्य मानव समूहों ने हिन्दुओं की भांति प्रकृति के शाश्वत गुणों को अधिक सजगता से अंगीकार नहीं किया है, इसलिए ही हिन्दू जीवन पद्धति में जहां प्रकृतिजन्य विशेषताएं पाई जाती हैं, अन्य समूहों की जीवन पद्धति में प्रकृति के साथ बहुत कम सामंजस्य पाया जाता है। जिसके फलस्वरूप उनके प्राकृतिक आपदाओं का शिकार अधिक होना पड़ता है। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि हिन्दू जीवन पद्धति प्रकृतिजन्य विधाओं का समग्र है।

## 2.6 प्रकृतिजन्य हिन्दू जीवन-पद्धति में जातिगत भेदभाव अप्रासंगिक

हिन्दू जीवन-पद्धति प्रकृतिमार्गी है। प्रकृति पंचतत्त्वों से बनी है और मानव शरीर भी उन्हीं पांच तत्त्वों से निर्मित है। इतना ही नहीं, पंचतत्त्वों की ही प्रकृति मानव के चरित्र में भी है। उदाहरणार्थ- जिस प्रकार एक लम्बे-चौड़े व्यक्ति में क्रमशः आकाश तत्त्व, जल तत्त्व, पृथ्वी तत्त्व, वायु तत्त्व एवं अग्नि तत्त्व होता है उसी प्रकार एक छोटे-दुबले (कृषकाय) व्यक्ति में भी क्रमशः आकाश तत्त्व, जल

तत्त्व, पृथ्वी तत्त्व, वायु तत्त्व एवं अग्नि तत्त्व होता है। इन्हीं तत्त्वों की गुणात्मक प्रभावशीलता के आधार पर व्यक्ति का व्यक्तित्त्व परिलक्षित होता है। प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञान क्रोध, मद, लोभ, मोह, क्षमता, कुशलता, विद्वता आदि इन्हीं पंच तत्त्वों की आनुपातिक सशक्तता की स्थिति का द्योतक है। पंचतत्त्वों की समन्वयात्मक स्थिति में साधारण परिवर्तन भी व्यक्ति की प्रकृति अथवा उसके समग्र व्यक्तित्त्व पर असाधारण प्रभाव डालती है। प्रकृति का यह प्रभाव व्यक्ति को जाति, वर्ग, वर्ण अथवा ऐसे ही अन्यान्य टुकड़ों में बांटने अथवा एक दूसरे से भेदभाव रखने की प्रवृत्ति पर नहीं पड़ता है। अतएव प्रकृति के परिवेश में जातिगत भेदभाव पूर्णतः वर्जित है।

प्रकृतिपरक हिन्दू जीवन-पद्धति में जातिगत भेदभाव इस आधार पर भी अप्रासंगिक है कि प्राचीन वैदिक युग में समाज में जिन चार वर्णों की अवधारणा थी, उसमें भी किसी तरह का भेदभाव नहीं किया गया था। सभी सम्मिलित रूप से लोक जीवन में अंग के रूप में सरस भाव में एक-दूसरे से मिलजुलकर करते थे। सभी वर्ण साथ-साथ रहते थे और सबको सवर्ण कहा जाता था एवं वर्ण सम्बोधन सबके लिए आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण था। जिसके आधार पर सभी एक-दूसरे से स्नेह, सहानुभूति, दया, करुणा और सौहार्द्रपूर्ण सहिष्णुभाव रखते थे। उनकी जीवन पद्धति पूर्णतः प्रकृतिमार्गी अथवा एक ही जैसी थी। वर्णगत् भेदभाव का कोई भी लक्षण उनमें नहीं था।

प्रकृतिपरक प्राचीन हिन्दू जीवन पद्धति का अनुपालन करने वाले सभी वर्ण के लोग प्रकृति के रहस्य की जानकारी रखते थे। आध्यात्मिक उत्कर्ष में साथ-साथ लगे होते थे। डा. अम्बेडकर भी यह मानते हैं कि शूद्र भी उसी शाखा से है जिसकी मुख्य शाखा क्षत्रिय जाति के रूप में विकसित हुई है। प्राचीन हिन्दू जीवन पद्धति में शूद्र तिरस्कृत नहीं थे। शूद्र वर्ण के रैक्व (गाड़ीवान) ने जनश्रुति को वेद पढ़ाया था। दासीपुत्रों के वंशज कावषेय लोग यज्ञों के आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन करते थे। शूद्र राजा सुदास राजर्षि विश्वामित्र के संरक्षक थे। अश्वमेघ यज्ञ करने वाले राजा सुदास का राज्याभिषेक ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने किया था।

## 2.7 'हिन्दू एक जीवन पद्धति है'- उच्चतम न्यायालय

माननीय उच्चतम न्यायालय हिन्दुस्थान की सर्वोच्च संस्था है। कार्यपालिका से भी ऊपर प्रतिष्ठित न्यायपालिका की सर्वग्राहय एवं सर्वमान्य इकाई होने का इसे गौरव प्राप्त है। हिन्दू जीवन पद्धति के बारे में उच्चतम न्यायलय ने जो टिप्पणी दी है, उसे इस देश के समस्त निवासियों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। हिन्दुत्व को परिभाषित करते हुए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसे एक जीवन पद्धति के रूप में अंगीकार करने का निर्देश दिया है।[13] न्यायालय की ओर से विचार व्यक्त करते हुए विद्वान न्यायधीशों ने कहा कि "धर्म या हिन्दू धर्म सामाजिक सुरक्षा और मानवता के उत्थान के लिए किए गए कार्यों का समन्वय करता है। उन सभी प्रयासों का इसमें समावेश है जो कि उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति में तथा मानव मात्र की प्रगति में सहायक होते हैं। यही धर्म है और यही हिन्दू धर्म है।" इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दुत्व एक संकुचित अवधारणा नहीं है। हिन्दुत्व को अवधारित करने वाला हिन्दू धर्म केवल विश्वासों और सिद्धान्तों का समुच्चय नहीं है। भारत सरकार के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री मोहम्मद करीम भाई छागला और सरहद गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान ने अपने को हिन्दू कहलाने में गौर्वान्वित महसूस किया। अतएव हिन्दुस्थान में निवास करने वाले हिन्दुस्थानी मुसलमान और हिन्दुस्थानी ईसाइयों द्वारा 'हिन्दू' के स्थान पर 'भारतीय' शब्द का प्रयोग करना माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश की अवज्ञा करना है।

हिन्दू जीवन पद्धति प्रकृतिपरक होने से ही विधिसम्मत मानी गई है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसका आन्तरिक एवं बाह्य परीक्षण किया और पाया कि वास्तव में इस पद्धति में जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर लेने की पूरी क्षमता विद्यमान है। हिन्दू जीवन पद्धति को अन्य संस्कृतियों की जीवन-पद्धति के साथ रखकर प्रत्येक प्रकार

---

13. 11 दिसम्बर 1995, उच्चतम न्यायालय की टिप्पणी, न्यायधीश सर्वश्री जे.एस. वर्मा, ए.एन.पी. सिंह एवं के. वेंकटस्वामी

से उसकी उत्कृष्टता का परीक्षण भी किया गया है। धार्मिक आधार पर परीक्षण करने पर यह पाया गया कि अन्य मतों एवं पंथों में जहां कट्टरपंथ और रूढ़िग्रस्थ अंधी आस्था का बोलबाला है, वहां पर हिन्दू धर्म में सर्वधर्म सम्भाव की सहिष्णुता पाई जाती है। हिन्दू जीवन पद्धति अपनी सर्वधर्म ग्राह्यता के कारण अन्य जीवन पद्धतियों से उत्तम है।

हिन्दू जीवन पद्धति में सरलता, स्वच्छता तथा पवित्रता पाई जाती है और लोग प्रायः फलाहारी, दुग्धाहारी, शाकाहारी, निरामिष जीवन जीते हैं, जबकि अन्य जीवन पद्धतियों में मांस एवं मदिरा (शराब) का खुलकर प्रयोग होता है। हिन्दू जीवन पद्धति में अर्थ और काम को धर्मसमन्वित किया गया है और मोक्ष के लिए धर्म-कर्म (परोपकार, अहिंसा, सत्याचरण आदि) को चुना गया है, जबकि अन्य जीवन पद्धतियों में इसके प्रतिकूल भावना पाई जाती है। हिन्दू शासन-प्रशासन की भावना प्रजाहित को सर्वोपरि मानती है, अन्य में शासन-सत्ता के संचालकों की सुख-सुविधा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन सभी आधारों पर सभी दृष्टियों से समीक्षा करने के बाद ही मा. सर्वोच्च न्यायालय ने हिन्दू जीवन पद्धति को सर्वोत्तम घोषित किया होगा। इस प्रकार के विचार की घोषणा करते हुए उच्चतम न्यायालय यह भाव भी प्रकट किया कि इसमें सम्भवतः किसी भी देश अथवा राज्य अथवा मानव समाज अथवा मानव जीवन पद्धति को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

## 2.8 हिन्दुत्व के पुनरुत्थान का प्रयास

10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिन्दुओं को अपने गौरवशाली अतीत की महानता का बोध होना शुरू हुआ और विस्मृत राष्ट्रभाव का पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त के आधार पर सार्वभौम हिन्दुत्व का प्रचार किया। आधुनिक भारत के अन्तर्राष्ट्रीय शंकराचार्य के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया जा सकता है। उनके प्रयासों से हिन्दू धर्म का न केवल उद्धार हुआ, अपितु हिन्दू समाज को उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित भी किया। ईश्वरचन्द्र

विद्यासागर, राजनारायण बोस, नभगोपाल मित्रा, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, योगी अरविन्द, डा. केशव बलिराम हेडगेवार जैसे हिन्दू-हित चिंतकों ने विश्व के समक्ष यह संदेश दिया कि हिन्दुस्थान में राष्ट्रीय एकता का आधार हिन्दू धर्म है और स्वयं हिन्दू एक धर्म प्रधान एवं प्रकृति के सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित जीवन पद्धति है।

आधुनिक संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हिन्दू-हित चिंतक कौन है? अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कौन-कौन हिन्दू हित चिंतक हुए हैं और उनके प्रयासों की प्राथमिकताएं क्या रही हैं? 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में घटित घटनाक्रमों से इन प्रश्नों का यदि उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि पश्चिमी देशों में जीवन के लक्ष्य का सदैव अभाव रहा है। भौतिक सुख-समृद्धि ही जीवन का मानक बन गया था। इसलिए पश्चिमी देश संवेदनाहीन हो गए थे। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद जैसी वैचारिकी इस भौतिकवादी पृष्ठभूमि की उपज रही है। स्वामी विवेकानन्द जैसे हिन्दू चिंतकों का पश्चिमी देशों में हिन्दुत्व के आदर्शों को प्रस्थापित कर उन्हें अंधकार से अलग करने का प्रयास भी किया गया था। लेकिन भौतिकता की अंधी दौड़ ने अंततः नाजीवादी, फांसीवाद एवं साम्यवाद जैसे विचारों को जन्म देकर पश्चिमी देशों को महायुद्धों की विनाशलीला में झोंक दिया था। इस संदर्भ में हिन्दू आदर्शों का यदि अनुपालन किया जाता तो सम्भवतः मानवीय विनाश के उन दृश्यों को रोका जा सकता था जो विश्व मानव की छाती पर एक भीषण घटित दुर्घटना के चोट के चिह्न रूप में विद्यमान है। स्वामी विवेकानन्द ने जीवन जीने का लक्ष्य एवं मानव संस्कृति के मूल रहस्यों को पश्चिमी समाज के समक्ष उद्घाटित किया था।

स्वामी विवेकानन्द के प्रयासों से पश्चिमी समाज में हिन्दुत्व के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ था और लोग हिन्दू संस्कृति के मूल रहस्यों को जानने के लिए आकर्षित हुए। स्वामी विवेकान्द को हिन्दू राष्ट्रीयता का विश्व में प्रथम उद्घोषक कहा जा सकता

है। उन्होंने विश्व के समक्ष भारत की मूल्यवान आध्यात्मिक धरोहर को प्रतिष्ठित किया तथा हिन्दू धर्म के मूल रहस्यों से विश्व को अवगत कराया।

राष्ट्रीय संदर्भ में स्वामी रामतीर्थ, महर्षि दयानन्द, डा. केशव बलिराम हेडगेवार, महात्मा गांधी, डा. अम्बेडकर, मा.स. गोलवरकर, पं. दीनदयाल उपाध्याय, दत्तोपंत ढेंगडी जैसे चिंतकों ने हिन्दुओं को चिन्तन की एक नयी शैली एवं विधा से सुसज्जित कर हिन्दुत्व के पुनरुत्थान का सार्थक प्रयास किया। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिदृश्य में कई ऐसे संगठन प्रभाव में आये जिन्होंने हिन्दू धर्म की सनातन मर्यादा को प्रस्थापित करने का प्रयास किया। अमेरिका जैसे विकसित भौतिकवादी देश में हिन्दुत्व के प्रति आकर्षण सन् 1960 के दशक में तथा उसके बाद निरन्तर बना हुआ है। स्वामी प्रभुपाद, महर्षि महेश योगी, आचार्य रजनीश आदि ने हिन्दू दर्शन के कुछ रहस्यों को विश्व के समक्ष प्रकट कर भौतिक जगत को आश्चर्य में डाल दिया है।

हिन्दू चिंतकों के विचारों का यदि मूल्यांकन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने विश्व समुदाय में हिन्दुत्व के प्रति फैले भ्रम को न केवल दूर करने का प्रयास किया, अपितु हिन्दुस्थान में सनातन संस्कृति के प्रति जो वैषम्यतापूर्ण विचारधाराएं बलवती हो रही थीं उन्हें भी प्रतिबन्धित करने का प्रयास किया। इन विचारकों ने सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए उन समस्त कुरीतियों को दूर करने का आवाहन किया, जिनके कारण हिन्दू समाज तथाकथित सभ्य समाज के समक्ष आलोचना का पात्र बना हुआ था। इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारत के वर्तमान हिन्दू-हित चिंतकों का यह दायित्व होना चाहिए कि वे हिन्दुत्व के मानवीय एवं कल्याणकारी मूल्यों को स्थापित करने के लिए निरंतर प्रयास कर और इस दिशा में आने वाली बाधाओं को निर्मूल करते रहें।

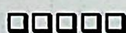
पूर्व वैदिक लोक जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त तथ्य यह इंगित करते हैं कि सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संरचना में प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार समान थे। राजसत्ता के प्रारम्भ होने के

पूर्व भूमि पर कुटुम्ब का स्वामित्व ही प्रभावी था। ग्राम नदियों के किनारे, विरल जंगलों से घिरे हुए तथा कृषि भूमि की उर्वरता के आधार पर बसे हुए थे। ग्रामों की संरचना कुल अथवा वंश द्वारा निर्धारित होती थी। सामान्यतः पितृवंशीय परिवार ही अस्तित्व में थे। उर्वरा भूमि की उपलब्धता एवं प्रकृतिपरक जीवनयापन करने वाला हिन्दू समाज शान्तिप्रिय एवं धर्मानुरागी प्रकृति का था।

वैदिक लोकजीवन का स्वरूप अपेक्षाकृत सरल था। समाज में सम्पत्ति, स्त्री, सुख जैसी अवधारणाएं लोकजीवन का अभिन्न अंग स्वीकर कर ली गई थीं। एक ही पिता के चार पुत्रों का चार वर्णों में होने का भी संकेत प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक काल में सत्ता संघर्ष की स्थितियां धीरे–धीरे जटिल हो रही थीं। नगर अस्तित्व में आने लगे थे। पत्थरों के साथ–साथ लोहे के सुदृढ़ किले भी अस्तित्व में थे। काम्पिल (पांचालों की राजधानी), आसन्दीवन्त (कुरु राजधानी), तथा कौशाम्बी नगरों का उल्लेख प्रधानता से मिलता है जो तत्कालीन प्रमुख राज्यों की राजधानी थे। ग्रामीण एवं नगरीय जीवन सुख–समृद्धि से परिपूर्ण था।

वैदिक कालीन हिन्दू समाज सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित था। कृषि तथा पशुपालन आजीविका का प्रमुख आधार था। पृथु ही प्रथम राजा थे जिन्होंने पथरीली भूमि को जोतकर कृषि योग्य समतल बनाया था और इसलिए उनका पृथ्वी नामकरण हुआ। खेत के लिए उर्वर या क्षेत्र शब्द प्रयोग में आया है जिसका स्वामी व्यक्ति अथवा उसका कुटुम्ब होता था। बढ़ई, कुम्हार, रथकार, बुनकर, निषाद आदि का उल्लेख यह इंगित करता है कि कृषि के अतिरिक्त अन्य आवश्यक व्यवसाय भी प्रचलन में थे। बाजार, स्थल एवं समुद्री व्यापार का भी उल्लेख प्राप्त होता है। व्यापार हेतु गाय के अतिरिक्त स्वर्ण एवं चांदी की मुद्राएं प्रचलन में थीं। प्रत्येक व्यक्ति समान अधिकारों से युक्त था। व्यावसायिक विविधता से समाज में उसके वैयक्तित्व अधिकार निष्प्रभावी थे।[2]

जैन एवं बौद्ध काल में हिन्दू धर्म का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हुआ। बौद्ध धर्म के माध्यम से हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक रहस्य अन्य देशों के निवासियों द्वारा व्यवहृत किए जाने लगे। गुप्त एवं मौर्य वंश में भी सद्भावना का चित्रण प्राप्त होता है। मुगलकाल एवं ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अन्तर्गत हिन्दू लोक जीवन पूर्णतः विखंडित हो गया। हिन्दू धर्म के मूल रहस्यों से अनभिज्ञ आक्रांताओं ने न केवल वैयक्तिक अधिकारों का हनन किया अपितु हिन्दू धर्म के मूल ग्रंथों को भी नष्ट कर दिया। 1000 वर्षों तक सनातन संस्कृति विधर्मियों के प्रहार को झेलती हुई लगभग मृतप्राय बना दी गई थी। अब आवश्यकता है कि मूल्य परक हिन्दू जीवन पद्धति जिससे न केवल मानव अपितु प्रकृति एवं ज़ीव-जन्तु जगत का भी उत्थान सम्भव है, उसे पुनः प्रतिष्ठित किया जाए।



# अध्याय-3

## हिन्दू ज्ञान का चिन्तन

हिन्दुस्थान में भौतिक शक्ति और आध्यात्मिक शक्ति को ज्ञानियों ने आत्मसात कर लिया था। मानव जीवन के इतिहास के विकास के उषाकाल से लेकर विकसित मानवीय संस्कृति के आज तक के पड़ाव तक जीवन पद्धति एवं जीवन जीने की कला का ज्ञान बोध तो हिन्दुस्थान ने ही सम्पूर्ण संसार को कराया है। हिन्दुस्थान के इस योगदान को नकारने वाले भी प्रकारान्तर से वहीं पहुंच रहे हैं जहां वे सीधे पहुंच सकते थे। कल तक वर्चस्व की लड़ाई को ज्ञान तथा शक्ति के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले विदेशी विद्वान् आज विज्ञान के समक्ष असहाय होकर हिन्दू ज्ञान के योगदान को नकारने की स्थिति में नहीं हैं। आधुनिक विज्ञान में मानव समाज के विविध आयामों का अध्ययन करता हुआ 'समाज विज्ञान' अथवा 'दर्शन शास्त्र' हिन्दू मनीषियों के द्वारा प्रस्तुत उन्हीं प्राचीन ज्ञान पर आधारित है। ऐसे में हिन्दू ज्ञान चिन्तन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मानवोपयोगी हो उठता है।

यही कारण है कि हिन्दू ज्ञान मानव कल्याणार्थ माना जाता है, जबकि आज का विज्ञान विराट विध्वंक रूप में मानवीय अस्तित्व के लिए चुनौती बना हुआ है। इस अध्याय में हिन्दू ज्ञान एवं उनकी विशिष्टताओं का सुस्पष्ट रूप में उल्लेख किया गया है जो पूर्णरूपेण वर्तमान वैज्ञानिक अवधारणाओं का आधार है।

### 3.1- हिन्दू ज्ञान का स्वरूप

हिन्दू धर्म में ज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान चिन्तन का आधार साधना, तपस्या और आध्यात्मिक विषयों का चिन्तन ही मुख्य है। साधना तथा तपस्या से दोनों शक्ति आन्तरिक (आत्मा) एवं बाह्य (शरीर) शक्ति को विकसित किया जाता है।[1] आध्यात्मिक विषयों का तात्पर्य उस दर्शन चिन्तन से है जो ब्रह्माण्ड के स्थूल

1. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय.....नवानि देही, श्रीमद्भागवतगीता 2/22

स्वरूप, ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म स्वरूप, प्राकृति एवं प्राकृतिक नियमन, जीव-जन्तु, मनुष्य, आत्मा एवं परमात्मा के उन पक्षों का प्रकाशिंत एवं अवगाहित करता है जो भौतिक चिन्तन एवं विज्ञान से परे है।

हिन्दू लोक जीवन में ज्ञान-विज्ञान विषय पर सनातन काल से अत्यन्त गहन अध्ययन हुआ है। ज्ञान की प्रारम्भिक स्थिति को दो रूपों में विभक्त किया गया। इन दोनों रूपों का अध्यात्म ज्ञान एवं भौतिक ज्ञान के नाम से परिचय कराया गया। हिन्दू धर्म में अध्यात्म ज्ञान एवं भौतिक ज्ञान दोनों को समरूप में देखा गया। जहां अध्यात्म ज्ञान व्यवहार में मूर्त रूप धारण करता है, उसे भौतिक ज्ञान कहते हैं। वर्तमान समय में यही भौतिक ज्ञान आधुनिक विज्ञान के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार जहां विज्ञान सीमित हो जाता है एवं आध्यात्मिक ज्ञान का चिन्तन पुनः प्रारम्भ हो जाता है, उसे अध्यात्म ज्ञान कहा जाता है। इसलिए दोनों प्रकार के ज्ञान का सुस्पष्ट रूप हिन्दू ज्ञान-विज्ञान चिन्तन की दिशा में व्याप्त है।

## 3.2 हिन्दू आध्यात्मिक ज्ञान का स्वरूप

ज्ञान के क्षेत्र में वर्चस्व की जिज्ञासा के अभिप्राय से आध्यात्मिक शक्ति और अध्यात्म ज्ञान को मनीषियों ने भारत के लिए सुरक्षित रखा। इसके दो प्रमुख कारण थे। प्रथम तो यह कि भौतिक ज्ञान स्थूल ज्ञान है और आध्यात्मिक ज्ञान सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्या है। भौतिक ज्ञान की सरलता एवं आध्यात्मिक ज्ञान की दुरूहता को देखते हुए आध्यात्मिक ज्ञान को यहाँ अधिक महत्त्व दिया गया। इसका द्वितीय कारण यह रहा है कि भौतिक ज्ञान प्रकृति के परोक्ष प्रत्यक्षीकरण से संबन्धित है और आध्यात्मिक ज्ञान पृथ्वी, जीव, ब्रह्माण्ड, आत्मा तथा परमात्मा जैसे अति विशिष्ट विषयों का स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, कारण, महाकारण एवं विज्ञान (आधुनिक विज्ञान नहीं) जैसी स्थितियों को ध्यान में रखकर शास्त्रीय अध्ययन करता है।[2]

---

2. अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विधि में पराम्।, जीवभूतां महा वाहो ययेदं धार्यते जगत्।।, एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारम।, अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।,—श्रीमद्भागवतगीता

भारतभूमि की विशिष्टता को इसलिए नकारा नहीं जा सकता क्योंकि, आज भी इस हिन्दू भूमि पर मानव के रहने हेतु उत्तम जलवायु, संसाधन, रत्नगर्भा भूमि, वनस्पतियाँ, रसायन, खनिज इत्यादि प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। यही कारण है कि यहां लोगों ने अध्यात्म ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया। सत् चित आनन्द एवं सर्वोच्च सत्ता के आयाम को यहां के ऋषियों ने अपने लिए एक सुरक्षित विषय रखा। आज भी भारतीय विद्वान् आध्यात्मिक विषय के अध्ययन को अपने पूर्वजों की थाती समझते हैं।

## 3.3 हिन्दू चिन्तन में भौतिक ज्ञान

प्राचीन हिन्दू भौतिक ज्ञान का उल्लेख अनेक स्मृतियों एवं पौराणिक ग्रन्थों के साथ वेदों में विस्तृत रूप से पाया जाता है। हिन्दुस्थान में हिन्दू ज्ञान के अन्तर्गत आध्यात्मिक ज्ञान को प्रश्रय देने का यह अर्थ नहीं है कि यह देश भौतिक ज्ञान में कहीं पीछे हो गया। आधुनिक विज्ञान का आधार अंकगणित, अणु, काल गणना (Times and Space), वैमानिक शास्त्र, सिद्ध कृषि विज्ञान, आयुर्वेद, शल्य चिकित्सा इत्यादि सभी विषय शेष विश्व को भारत की देन हैं। आज हिन्दुस्थान को आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में पीछे रह जाने का कारण कई हजार साल से हो रहे आक्रमण और लूट-पाट की घटनाएं हैं। शक, हूण, फारसी, अरबी, पुर्तगाली, मुसलमान, मुगल, ईसाई और अंग्रेजों ने इस देश को जी भर कर लूटा है। मुसलमानों ने भारतीय ज्ञान को नष्ट करने के उद्देश्य से नालन्दा विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय को आग लगा दी। यह ग्रन्थालय छह महीने तक जलता रहा। इसके बाद अवशेष के रूप में बचे हुए ग्रन्थों को वे लोग अनेक ऊटों पर बोरों में भरकर उठा ले गए। बाद में उन्हें यूरोप के व्यापारियों को कौड़ियों के दाम बेच दिया। आज यूरोप एवं अमेरिका के वैज्ञानिक विकास में उन्हीं हस्तलिखित ग्रन्थों का व्यापक योगदान है।

ज्ञान तथा महाविद्याओं के रहस्य पर आधारित हिन्दू भौतिक ज्ञान एक व्यक्ति के पूर्ण विकास (आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक) के लिए पर्याप्त है। ज्ञान-विज्ञान, आगम-निगम, दर्शन, योग, आयुर्वेद, सिद्ध चिकित्सा पद्धति, सिद्ध संगीत, शास्त्रीय संगीत, वास्तु शिल्प,

चित्रकला, मूर्तिकला, ज्योतिष, सिद्ध कृषि पद्धति इत्यादि मूल-विद्याओं का आधार अध्यात्म एवं महाविद्याओं से प्रायोजित है।[3] इन समस्त मूल विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत में पूर्ण छूट है। इसके आधार पर ज्ञानी, तत्त्व ज्ञानी, अध्यात्मद्रष्टा, ऋषि, महर्षि, तन्त्र-मन्त्र के पुरोधा, योगी, साधक, उपासक, साधु एवं सन्त बन जाने की किसी भी व्यक्ति को पूर्ण रूपेण स्वतंत्रता है।

हिन्दू धर्म का स्वर्णिम काल था वैदिक काल। वैदिक काल में हिन्दू धर्म पराकाष्ठा पर था। ज्ञान-विज्ञान का पूर्ण व्यवहार्य स्वरूप था। वैदिक काल में आध्यात्मिक उत्सर्ग के साथ वैज्ञानिक उत्कर्ष था। विज्ञान के वर्तमान स्वरूप से भी श्रेष्ठ स्वरूप था। आज के विज्ञान का विकास भारतीय ज्ञान को सत्यापित (वैरीफाई) करने के अलावा कुछ नहीं है। आधुनिक वायुयान के वैदिक युग के वैमानिकी शास्त्र, पुष्पक विमान एवं पौराणिक कथाओं में उल्लिखित अन्यान्य देवताओं द्वारा प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के विमानों को सत्यापित करता है। परखनली में बच्चा न पैदा हुआ होता तो ऐतरेय ऋषि चमड़े के पात्र में अथवा कौरव घड़े में पैदा हुए, यह कैसे सिद्ध होता।[4] ग्रह नक्षत्रों की नापी गई दूरियां दसों हजार साल पुराने ज्योतिष की पुस्तकों में वर्णित दूरियों एवं उनकी गति को सत्यापित करती हैं। वर्ण संकर प्रविधि द्वारा पशु, पक्षी एवं वनस्पतियों की प्रजाति सम्वर्धन पद्धति यदि न विकसित हुई होती तो बाल्मीकि कृत रामायण के बाल काण्ड के छठवें सर्ग में वर्णित वर्ण संकर जातियों के हाथी, घोड़ों एवं अन्यान्य पशुओं की प्रजाति सम्वर्धन की कथा एक कल्पना ही मानी जाती।[5] हिन्दू ज्ञान एवं मान्यताएं जो प्रयोगशाला में न सिद्ध हों, उन्हें मानने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू पीपल के पेड़ की पूजा करते हैं, इसका तात्पर्य उसे सुरक्षित करना है, क्योंकि इस ब्रह्माण्ड में पीपल एक मात्र ऐसा वृक्ष है जो रात-दिन यानी अधिकतम आक्सीजन देता है। नदी, पर्वत, आकाश, पृथ्वी इत्यादि की पूजा का तात्पर्य है इन्हें सुरक्षित रखना। आज पर्यावरण

3. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ.445–469
4. अत्रि, भारद्वाज, विधर्तता, अगस्त (पुलस्त्य), लोपामुद्रा पुरुष एवं महिला ऋषियों के संदर्भ। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 165 सूक्त से 191 सूक्त तक, ऐतरेय आरण्यक 1.2.2
5. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण बालकाण्ड, षष्ठ सर्ग श्लोक 24,25,26

की सुरक्षा के लिए हम चिन्तित हैं। हिन्दू तत्त्वज्ञान के आधार पर इस प्रकृति में स्थित जल, वायु, आकाश, मृदा एवं ऊष्मा के पंच तत्त्वों के संरक्षण के सिद्धान्त को मान लिया गया होता तो आज पर्यावरण की समस्या का प्रश्न ही नहीं होता। 'पृथ्वी खतरे में है।'—ऐसा भयानक भावयुक्त वाक्य हमें सुनने को न मिलता। प्रकृतिपरक हिन्दू संस्कृति को व्यवहारिक रूप से यदि अपनाया गया होता तो शायद आज हम इस समस्या से मुक्त होते। सम्पूर्ण हिन्दू ज्ञान एवं मान्यताओं का आधार विज्ञान और वैज्ञानिक चिन्तन के अलावा कुछ नहीं है।

## 3.4 हिन्दू ज्ञान का आधार विज्ञान

हिन्दू लोक जीवन में ज्ञान प्राप्ति की पूर्ण स्वतंत्रता थी। हिन्दू जीवन पद्धति तो पूर्ण वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक है। हजारों वर्ष पहले भी हिन्दुस्थान में ज्ञान के क्षेत्र में कोई नियंत्रण नहीं था। पश्चिम देशों में तो मान्यताओं की वास्तविकता प्रकट कर देने पर विद्वानों को मृत्युरूपी उपहार दिया जाता था। किन्तु भारत वर्ष में ऐसे व्यक्तियों को महात्मा, महर्षि एवं विद्वान् की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता रहा। क्लौडियल रॉलेमी ने पश्चिम के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के विचारों को स्थापित करते हुए कहा था कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पृथ्वी केन्द्रित है। सभी ग्रह नक्षत्रादि पृथ्वी की परिक्रमा करते है। टॉलेमी के इस हास्यास्पद सिद्धांत का कोपरनिकस ने खण्डन किया। उसके ग्रन्थ के छपने के पहले ही उसका देहान्त हो गया था। फिर भी उसकी पुस्तक को प्रतिबन्धित किया गया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियों ने दूरबीन की सहायता से यह सिद्ध कर दिया कि सूर्य केन्द्रित ब्रह्माण्ड है तो उसे धर्म विरुद्ध कार्य माना गया। इतना ही नहीं चर्च द्वारा उससे क्षमा मंगवाकर भविष्य में इस प्रकार धर्म विरुद्ध कार्य न करने की चेतावनी दी गई। किन्तु हिन्दुस्थान में विद्वानों एवं चिन्तकों के साथ ऐसे निन्दनीय व्यवहार नहीं हुए।

हिन्दुस्थान में हजारों वर्ष पूर्व भी अन्धश्रद्धा अथवा ग्रन्थ को ही अन्तिम प्रमाण की नहीं अपितु तर्क एवं प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा सत्यापन की मान्यता थी। हिन्दू ऋषियों ने आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान के संदर्भ में अनेकों स्थानों पर उल्लेख करते हुए यही कहा है कि प्रतिपादित सिद्धांतों को स्वयं के लाखों प्रयोग कर जो सिद्ध किया

है उसे संसार के कल्याणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दू ज्ञान का आधार विज्ञान होने के कारण इसका निरीक्षण, परीक्षण एवं प्रयोग पूर्णरूपेण सम्भव है एवं इन्हें बड़ी सरलता से प्रयोगशाला में सिद्ध किया जा सकता है। हिन्दू ज्ञान-विज्ञान पूर्ण व्यवहारिक, सर्वग्राह्य एवं कल्याणकारी है। किसी भी प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित पदार्थ या स्वरूप का हेतु या प्रयोजन जानने के संदर्भ में महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में सोलह चरण की प्रकृया का प्रतिपादन किया है जिसमें प्रमेय, प्रमाण, संशय, समाधान, प्रतिज्ञा (लक्ष्य) मुख्य है। हिन्दू जीवन पद्धति में सत्, ऋत एवं ब्रह्म का उल्लेख अध्यात्म का स्वरूप है किन्तु ठीक यही तत्त्व एवं तथ्य भौतिक ज्ञान के क्षेत्र में प्रकृति, प्राकृतिक नियमन एवं ऊर्जा के रूप में पहचाना जाता है।

## 3.5 हिन्दू ज्ञान का आधारः तर्क और प्रयोग

हिन्दू लोक जीवन में ज्ञान-विज्ञान एवं प्रकृति के रहस्य से सम्बन्धित अनेकानेक पक्षों पर आधारित क्रिया-कलाप तथा रीति-रिवाज सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त था। विज्ञान का चिन्तन ऋषि, महर्षि, विद्वान एवं जिज्ञासुओं के अलावा सामान्यजन की पहुंच में था। हिन्दुत्व का तात्पर्य आध्यात्मिक और भौतिक ज्ञान से सिद्ध किया जाता था। पश्चिम जगत का विज्ञान 450 वर्ष पूर्व माना जाता है। कोपरनिकस, गैलीलियो, क्लौडियल रॉलेमी, टाईको ब्रूनो एवं जोनकेप्लर के पहले अरस्तू को ही वैज्ञानिक, चिन्तक, दार्शनिक एवं सभी विषयों का ज्ञाता माना जाता था। घोड़े के मुंह में कितने दांत होते हैं, इसके लिए भी अरस्तू के विचार एवं संदर्भों को ही अधिकृत मान्यता थी, जबकि घोड़े के मुंह को खोलकर कोई भी व्यक्ति उसके दांतों को गिन सकता था। यदि कोई इस प्रकार का प्रयोग या तर्क करता था तो उसे अरस्तू विरोधी घोषित करके उसे राज्य के तरु से दण्डित किया जाता था। कभी-कभी ऐसे व्यक्तियों को मृत्युदण्ड तक दिया गया। 1571 में जन्में जोन केप्लर ने खगोल शास्त्र के अन्तर्गत ग्रहों की स्थिति, उनकी गति तथा उनके मानचित्र तैयार करने का विद्वत्तापूर्ण कार्य किया, किन्तु बदले में कैथोलिक इसाईयों ने शास्त्र विरुद्ध कहकर चर्च के दुर्भावना एवं विवेकहीन निर्णय के कारण उसपर प्राणघातक हमला भी किया। इसी प्रकार

कोपरनिकस द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत कि सूर्य स्थिर है, पृथ्वी उसके चारों ओर चक्कर लगाती है। इस सिद्धांत के समर्थन में 1546 मे जन्मे डेनमार्क के खगोलवेत्ता टाईको ब्रूनो के वैचारिक दृढ़ता के कारण क्रोधित पोप एवं पादरियों ने उसे आठ वर्ष तक कैद रखा। बाद में सिद्धांतों से समझौता एवं क्षमा न मांगने के कारण उसे ज़िंदा जलाकर मार डाला गया था।

हिन्दुस्थान जिसका एक नाम 'भारतवर्ष' भी है। भारत वर्ष का शाब्दिक अर्थ 'भा' यानी 'ज्ञान' तथा 'रत' यानी 'लगा हुआ' एवं 'वर्ष' यानी 'स्थान' से है। कुल मिलाकर भारतवर्ष का भावार्थ 'ज्ञान की खोज में लगा हुआ स्थान' होता है। हिन्दुस्थान में ज्ञान-विज्ञान चिन्तन की पूरी छूट थी।[6] अध्यात्म के गूढ़ ज्ञान एवं भौतिक विज्ञान का प्रायोगिक स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के लिए पूर्णरूपेण उपलब्ध था।

आध्यात्मिक ज्ञान को तर्कों द्वारा एवं भौतिक ज्ञान को प्रयोगों द्वारा सिद्ध किए जाने का प्रचलन था। आज संसार में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संवैधानिक स्वरूप दिया गया किन्तु विदेशी आक्रान्ताओं के आगमन एवं उनके शासन के पहले हिन्दुस्थान में ज्ञान प्राप्त करने, उसके बांटने एवं किसी भी प्रकार के तर्क एवं प्रयोगों पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।

हिन्दू ज्ञान परम्परा में दर्शन यानी अध्यात्म जिसे 'तर्क' से सिद्ध किया जाता है। अध्यात्म ज्ञान एक चिन्तन की क्रमिक धारा है। चिन्तन की क्रमिक धारा निर्बाध रूप से तब तक चलता है जब तक तर्क सकारात्मक स्वरूप में हो। नकारात्मक स्वरूप पर आधारित तर्क फिर तर्क न होकर कुतर्क माना जाता है। तर्क सकारात्मक एवं कुतर्क नकारात्मक भाव पक्ष को दर्शाता है। अध्यात्म चिन्तन सदैव सकारात्मक पक्षों को किर्क दृष्टि से उद्घाटित करके उन रहस्यों को सार्वजनिक करता है जिसे विज्ञान के प्रयोगों की सीमा से बाहर मान लिया गया होता है। आध्यात्मिक ज्ञान मानव के आन्तरिक एवं बाह्य शारीरिक शक्तियों के विकास तथा उसी शुद्धता पर निर्भर करता है। बाह्य शारीरिक शक्ति एवं आंतरिक शारीरिक शक्ति को खान-पान, आचार-व्यवहार, साधना, तपस्या, ध्यान एवं योगादि के सन्तुलित एवं

6. 'भा' का अर्थ 'ज्ञान', शब्दकल्पद्रुमः, राजाराधाकान्त देव, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

आनुपातिक क्रियाओं से विकसित किया जाता है। प्रायः हिन्दू आध्यात्मिक विभूतियां जो अध्यात्म ज्ञान का लोक जीवन में निरूपण किया करते थे, वे प्रत्येक दृष्टि से शुद्ध एवं विकसित थे। उनके द्वारा अध्यात्म ज्ञान का चिन्तन पूर्णतः तर्कयुक्त एवं प्रमाणित था। अध्यात्म ज्ञान का तर्कयुक्त चिन्तन हिन्दू लोक जीवन के मानवीय पक्षों पर भी करुणा, दया एवं सम्वेदनायुक्त विशिष्ट दृष्टि से विचार किया है।

हिन्दू ज्ञान परम्परा में भौगिक ज्ञान का आधार केवल प्रयोग ही नहीं अपितु तर्क भी रहा है। प्रथम दृष्ट्या भौतिक ज्ञान यानी आधुनिक विज्ञान को तर्क से तत्पश्चात् प्रयोगों से प्रमाणित किया जाता है। अनेकानेक उपकरण और क्रिया, प्रतिक्रिया एवं प्रक्रिया के रूप में प्रयोगों द्वारा भौतिक ज्ञान को सिद्ध वाले अनेकों विद्वान् हुए उनका भी मूल चिन्तन का आधार अध्यात्म ही रहता था। अध्यात्म के तर्क से प्रारम्भ करके भौतिक ज्ञान के प्रयोगों के उपरान्त पुनः आगे अध्यात्म का तर्क ही प्रारम्भ हो जाता है। अनन्त आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनन्त भौतिक ज्ञान होने के पश्चात् फिर भी दोनों ज्ञान में सन्तुलन था। आध्यात्मिक ज्ञान चिन्तन से प्रारम्भ होकर भौतिक ज्ञान पुनः आध्यात्मिक ज्ञान को ही प्राप्त था। दोनों अनन्त था किन्तु अनन्त भौतिक ज्ञान का प्रारम्भ अनन्त अध्यात्म से था एवं अनन्त भौतिक ज्ञान के सीमा के बाद भी अनन्त आध्यात्मिक ज्ञान था। श्रीमद्‌भगवत में भगवान श्री कृष्ण ने कहा था कि जो व्यक्त है, वह भी मैं हूं जो अव्यक्त है वह, भी मैं हूं यानी 'जो है वह भी मैं हूं जो नहीं है वह भी मैं हूं।' इसलिए अध्यात्म का तर्क एवं भौतिक ज्ञान का प्रयोग दोनों ही अनन्त होते हुए भी प्रत्येक मानव के लिए असीमित एवं सीमित है। प्रकृति की करुणा एवं दया ही मानव जीवन की परम उपलब्धि है। गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि–

भूमिरापोऽनलो वायुः रवं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।

–श्रीमदभगवत गीता 7/4–5

(अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित हमारी, परा यानी जड़

प्रकृति है। और जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है, वह हमारी चेतन प्रकृति है।)

### 3.6 हिन्दू दृष्टि में विज्ञान

हिन्दू लोक जीवन में प्रचलित अनेकानेक प्रविधि एवं सिद्धान्त भौतिक ज्ञान चिन्तन के ही सीमान्तर्गत है, किन्तु उसका मूलभूत आधार अध्यात्म है। हिन्दू प्राचीन धर्म ग्रन्थों में वर्णित घटनाएं एवं उदाहरणों के माध्यम से इसे संज्ञान में लिया जा सकता है। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण, महाभारत, रामायण इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में भी कुछ वैज्ञानिक घटनाओं का उल्लेख प्राप्त है। अत्रि ऋषि चमड़े के पात्र में, कौरव घड़े में तथा ऋषि श्रृंग मादा हिरण के गर्भ से उत्पन्न हुए। महाभारत के युद्ध में अनेकानेक अस्त्र-शस्त्र एवं भयानक विनाशकारी युद्धक उपकरणों का प्रयोग, संजय द्वारा सम्पूर्ण महाभारत युद्ध का आंखों देखी वृतान्त बताना, रामायण कथा के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड में भगवान श्री रामचन्द्र के पिता दशरथ के राज्य में राजाश्रय से उत्तम प्रकार की कृषि एवं वर्णसंकर प्रजाति के हाथी एवं घोड़ों का उल्लेख, ज्योतिष की पुस्तकों में वर्णित ग्रहों एवं नक्षत्रों की वर्णित दूरियां, उपमन्यु की नष्ट हुई ज्योति अश्विनी कुमार द्वारा पुनः ठीक किया जाना, त्रिपुरासुर के भूतल, नभ एवं जल पर निर्मित तीन नगर, पौलुमी नगरवासी (आकाशस्थ) असुरों से अर्जुन का प्रचण्ड युद्ध, देवी देवताओं के निजी विमान, अन्तरिक्षयान एवं पुष्पक विमान, दिव्यास्त्रों इत्यादि का वर्णन हिन्दुस्थान में विज्ञान की पराकाष्ठा माना जा सकता है।

महर्षि कणाद द्वारा रचित दर्शन के अनुसार-

**दृष्टानां दृष्ट प्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय।**

**-वैशेषिक दर्शन**

(अर्थात् प्रत्यक्ष देखे हुए और अन्यों को दिखाने के उद्देश्य से अथवा व्यक्तिगत रूप से गहन ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से किए गए प्रयोगों से अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त होता है।)

इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में अवस्थित कण-कण और उनके प्रयोजन के ज्ञान हेतु महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन की रचना किया है। न्याय दर्शन में उल्लेखित सोलह चरण में प्रमेय, प्रमाण, संशय, समाधान,

परिकल्पना एवं लक्ष्य इत्यादि द्वारा सत्य तक पहुंचने की प्रक्रिया का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद् भगवतगीता में यह उल्लेख है कि–

**ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।**
**यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।**

–श्रीमद्भगवतगीता 7/2

(अर्थात् मैं (भगवान श्री कृष्ण) तेरे लिए इस विज्ञान सहित तत्त्व ज्ञान को सम्पूर्णतया कहूंगा, जिसको जानकर संसार में फिर कुछ जानने योग्य शेष नहीं रह जायेगा।)

इसी प्रकार महर्षि कणाद ने ज्ञान–विज्ञान के संदर्भ में उल्लेख करते हुए कहा कि पृथ्वी, जल, ताप, वायु, आकाश, दिक, काल, मन, बुद्धि और आत्मा इत्यादि को ज्ञात करनी चाहिए। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रकृति, जीव–जन्तु तथा जड़–चेतन सभी का अध्ययन होता है। हिन्दू लोक जीवन तथा हिन्दू जीवन पद्धति में अवस्थित ज्ञान–विज्ञान का उद्देश्य मानवीय उत्सुकता एवं समाजीकरण के क्षेत्र में मानव जीवन को सरल एवं सरस बनाना ही मुख्य था। आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान का उद्देश्य जगत के अन्तिम कारण की खोज है। अन्तिम सत्य की खोज में कल्पना एवं वास्तविकता का सहारा लेकर उन तत्त्वों का अन्वेषण करना जिनसे निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचा जा सके।

हिन्दुस्थान में विज्ञान एवं अध्यात्म यानी दर्शन को एक विशेष दृष्टि से देखा जाता है। पश्चिम देशों की भोगवादी संस्कृति में आधुनिक विज्ञान को जीवन की वास्तविकता ज्ञात करने का अन्तिम प्रमाण मानकर व्यवहार किया जाता है। विज्ञान को ही सत्य माना जाता है। विज्ञान को सत्यपरक स्थापित करने के लिए अध्यात्म ज्ञान अथवा दर्शन शास्त्र को मात्र कल्पना के अलावा कुछ भी स्वीकार नहीं किया जाता है। किन्तु सत्य तो इस मान्यता से परे ही है। विज्ञान को सत्य एवं अध्यात्म को कल्पना मानने वाले पश्चिमी जगत के समक्ष हिन्दू ज्ञान–विज्ञान की यह चुनौती तो शेष विश्व को स्वीकार करनी होगी कि जिस आधुनिक विज्ञान को हम सत्य मानते हैं वह पूर्णरूपेण कल्पना पर आधारित है और जिस अध्यात्म ज्ञान को हम कल्पना मान रहे हैं, वही जगत का अन्तिम सत्य है।

विज्ञान के सिद्धान्तों के साथ उन तथ्यों पर दृष्टिपात करने से जो आधुनिक-विज्ञान का आधार तत्त्व है, उनकी वास्तविकता उजागर होती है। आधुनिक विज्ञान का आधार तो मानक है। 'काल-गणना' विशुद्ध हिन्दू चिन्तन की देन है। काल यानी समय एवं गणना यानी माप के तत्त्व बोध का अन्तिम कारण एवं अन्तिम इकाई का चिन्तन काल-गणना के अन्तर्गत विश्लेषित होता है। काल-गणना अध्यात्म ज्ञान के आधार पर तर्क से एवं भौतिक ज्ञान के आधार पर प्रयोगों से स्पष्ट किया जाता है। काल का मापन सिद्धान्त उन मानकों पर है जिसे चिन्तकों ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर उसे व्यवहार में उपयोग किया है। जैसे साठ सेकेन्ड का एक मिनट एवं साठ मिनट का एक घन्टा मान लिया गया। नब्बे सेकेन्ड का एक मिनट क्यों नहीं है? सौ मिनट का एक घन्टा क्यों नहीं? इसलिए नहीं है; क्योंकि विद्वानों ने जैसा माना उसे वैसे ही हमारे मानव समाज ने स्वीकृति भी प्रदान कर दिया था। इसी प्रकार तरल, ठोस एवं गैस के मापन के लिए भी मानक तैयार हुए। यानी सबकुछ, कल्पना किया गया, माना गया है। और यह अतिशयोक्ति नहीं होगा कि सम्पूर्ण विज्ञान मानक पर यानी कल्पना पर आधारित है।

हिन्दू लोक जीवन में विज्ञान चिन्तन की दृष्टि अध्यात्म के ही अधिष्ठान पर आधारित है। अध्यात्म ज्ञान का तर्क सिद्धान्त भौतिक ज्ञान के प्रयोग का प्राथमिक स्वरूप है। हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू जीवन पद्धति का आध्यात्मिक एवं भौतिक पक्ष विज्ञान अथवा आधुनिक विज्ञान का पूरक है। श्रीमद्भगवत गीता के सातवें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने विज्ञान विषय पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए इसके ज्ञाताओं के संदर्भ में भी उल्लेख किया है।

**मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।**
**यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।**

– श्रीमद्भगवत गीता, 7/3

(अर्थात् हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वालों में भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्व से यानी यथार्थ रूप से जान पाता है।)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववदेषु शब्दः खे पौरुष नृषु॥
– श्रीमद्भगवत गीता, 7/8

(अर्थात् मैं जल में रस है, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूं, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूं, आकाश में शब्द एवं पुरुषों में पुरुषत्व हूं।)

## 3.7 हिन्दू लोक जीवन में विज्ञान

हिन्दू लोक जीवन में विज्ञान अत्यन्त उन्नत स्वरूप में था। तरह तरह के वैज्ञानिक प्रयोग विद्वानों एवं ऋषियों में प्रचलित था। प्रायः यज्ञ, हवन एवं अनुष्ठान इत्यादि वृहदरूप के प्रयोगों के उल्लेख प्राप्त है। अनुष्ठानिक यज्ञादि से मेघ एवं वर्षा का आवाहन तो सामान्य था। वातावरण को परिष्कृत एवं रोगों के कीटाणुओं से पूर्णरूपेण मुक्त रखने के लिए राज्यपोषित यज्ञादि का प्रयोजन होता था। उत्तम खेती के लिए सिद्ध कृषि पद्धति का व्यवहार था जो पूर्ण विज्ञान सम्मत भी रहा। आयुर्वेद का तो आज तीव्र गति से पुनर्वापसी संसार के समझ एक वास्तविक उदाहरण है। हिन्दू कल्याणकारी ज्ञान-विज्ञान का पुनरागमन सुनिश्चित है।

विश्वस्तर के अनेक आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने वैज्ञानिक आविष्कार का मूलाधार हिन्दू ज्ञान के उन्हीं प्राचीन स्वरूप एवं सिद्धान्तों को मानते हैं। कुछ भारतीय वैज्ञानिकों ने तो स्पष्ट रूप से अपने कार्यों को नाम तक दे दिया है। उदाहरणार्थ–फ्रुल्लत चन्द राय द्वारा 'हिन्दू केमेस्ट्री' राव साहब बझे द्वारा प्रतिपादित 'हिन्दी शिल्प शास्त्र', ब्रजेन्द्रनाथ सील द्वारा 'दी पाजिटिव साईन्स आफ एनशीयेन्ट हिन्दूज' और धर्मपाल जी द्वारा 'इन्डियन साईन्स एन्ड टेक्नॉलजी इन दी एटीन्थ सेन्चुरी' इत्यादि ग्रन्थों ने हिन्दू ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी को विश्व के समक्ष पुनः प्रस्तुत किया। एम.पी. राव-बंगलोर ने विमान शास्त्र तथा पी.जी. डोगरे-वाराणसी ने अंशबोधिनी शास्त्र में वर्णित तथ्यों पर विशेष कार्य किया है। विज्ञान भारती, मुम्बई एवं पाथेय कण, जयपुर भी हिन्दू ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में प्राथमिक स्तर पर प्रयासरत है।

हिन्दू संस्कृति और हिन्दू जीवन पद्धति के आधार पर हिन्दुस्थान में विज्ञान विषय एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अवगाहित किया गया। लोक जीवन में विद्युत शास्त्र, यन्त्र एवं तकनीकी विज्ञान, रयासन शास्त्र, धातु शास्त्र, गणित शास्त्र, काल-गणना शास्त्र, नौका शास्त्र, विमान शास्त्र, खगोल शास्त्र, कृषि शास्त्र, वस्त्र उद्योग, आयुर्वेद, वनष्पति शास्त्र आदि विषय प्राचीन काल में अपनी पराकाष्ठा पर थे। आज का आधुनिक विज्ञान इन्हीं विषयों के प्रतिपादित सिद्धान्तों पर आज भी पूर्णरूपेण निर्भर है।

**नानाविधानां वस्तूनां यंत्राणां कल्प संपदा**
**धातूनां साधनानां च वास्तुनां शिल्प संज्ञितम्।**
**कृषिर्जलं खनिश्चेति धातुखण्डं त्रिधाभिधम्।।**
**नौका-रथाग्नियानानाम्, कृतिसाधनमुच्यते।**
**वेश्म, प्राकार, नगररचना वास्तु संज्ञितम्।।**

–भृगु संहिता

(अर्थात् कृषि, जल, खनिज, नौका, रथ, अग्नियान, नगर रचना, वास्तु, यन्त्र, वेश्म इत्यादि दस शास्त्र, वत्तीस विधाएँ एवं चौसठ प्रकार की कलाओं का उल्लेख भृगु ऋषि द्वारा रचित संहिता में प्राप्त है।) कुछ शास्त्रों का वर्णन यहां किया जा रहा है।

### विद्युत विज्ञान

विद्युत विज्ञान का ज्ञान हिन्दू लोक जीवन के विविध क्षेत्रों में देखा गया। प्राचीन ऋषियों में ऋषि अगस्त जो एक सुव्यवस्थित आश्रम एवं कुल परम्परा स्थापित किए थे, उनके द्वारा रचित संहिता में विद्युत के संदर्भ में श्लोक पाये गए है।

**संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम्।**
**छादयेच्छिखिग्रीवेन चाद्रोभिः काष्ठयासुभि।।**
**दस्तालोष्टो निधातव्यः पारदाच्छादिदस्ततः।**
**संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुण संज्ञितम्।।**

–अगस्त्य सूत्र

(अर्थात् एक मिटटी का पात्र लेकर उसमें ताम्बें की परटी का तथा शिखिग्रीवा डालें। बीच में गीली लकड़ी का बुरादा लगाएँ। उसके ऊपर पारा तथा दस्त लोष्ट पानी जिंक डालें। फिर दोनों तारों

को मिलाएंगे तो उससे मित्रावरुण शक्ति संज्ञान में आएगी।)

**अनेन जल भंगोस्ति प्राणो दानेषु वायुषु।**
**एवं शतानां कुंभानां संयोग कार्यकृत्स्मृतः।।**

–अगस्त्य सूत्र

(अर्थात् सौ कुम्भों की शक्ति का पानी पर प्रयोग करेंगे तो पानी अपने रूप को बदल कर प्राण वायु पानी आक्सीजन तथा उदान वायु पानी हाईड्रोजन में परिवर्तित हो जाएगा। उदान वायु को वायु प्रतिबन्धक वस्त्र में रोका जाये तो वह विमान विद्या में काम आएगा।)

**यन्त्र विज्ञान**

महर्षि कणाद के वैशेषिक शास्त्र में कर्म शब्द का सुस्पष्ट अर्थ आधुनिक भौतिक विज्ञान का Motion है। उन्होंने उत्क्षेपण (Upward Motion), अवक्षेपण (Downward Motion), आकुण्ठन (Motion due to tensile stress), प्रसारण (Shearing Motion), गमन (General type of Motion) का वर्णन किया है। साथ ही डवजपवद के कारण का भी उल्लेख किया है कि नोदन (दबाव) के कारण, प्रयत्न के कारण, गुरूत्व के कारण और द्रवत्व के कारण Motion होता है।

**'वेगो पञ्चसु द्रव्येसु निमित्त विशेषापेक्षात् कर्मणो जायते नियतदिक क्रिया प्रबन्ध हेतुः स्पर्शवद द्रव्य संयोग विशेष विरोधी क्वचित् कारण गुण पूर्व क्रमेणोत्पद्यते।**

–प्रशस्तपाद भाष्य

(अर्थात् वेग या मोशन पांच द्रव्यों जैसे ठोस, तरल एवं गैस पर आधारित विशेष क्रिया के कारण उत्पन्न होता है तथा नियमित दिशा में क्रिया होने के कारण संयोग विशेष से नष्ट होता है अथवा उत्पन्न होता है।)

**स्थितिस्थापत संस्कारः क्षितः क्वचिच्चतुर्ष्वपि।**
**अतीन्द्रियोसौ विज्ञेयः क्वचित् स्पेन्देअपि कारणम्।।**

–किरणावली

(अर्थात् ठोस या द्रव्य या अन्य प्रकार के द्रव्यों में उत्पन्न अदृश्य बल ही स्पंदन पानी Vibration का कारण होता है।)

तिर्यगूर्ध्वमधः पृष्ठे पुरतः पार्श्वयोरपि।
गमनं सरणं पात इति भेदाः क्रियोद्भवाः॥

–समरांगण

(अर्थात् तिर्यक् Slanting, उर्ध्व upwards, अध: downwards, पृष्ठे backwards, पुरत: forwards तथा पाश्वयो: sideways इत्यादि गति आने जाने तथा विविध क्रियाओं के सम्पादन में सलग्न होती है।)

महिर्ष कणाद का वैशेषिक शास्त्र, उदयन की किरणावली, सूर्य सिद्धान्त, समरांगण सूत्रधार, मन्त्रार्णव इत्यादि ग्रन्थों में यानीत्रकी विज्ञान का वृहद् वर्णन प्राप्त है।

## विमान शास्त्र

हिन्दू लोक जीवन एवं हिन्दू संस्कृति की निरन्तरता एवं गतिशीलता के पार्श्व में ऋषियों-मुनियों द्वारा अवगाहित अनेकानेक शास्त्र, धर्मग्रन्थ एवं उनके अन्दर प्रतिपादित विषय वस्तु है। विमान तथा अन्तरिक्ष यान के बारे में कई ग्रन्थों में उल्लेख है। ऋग्वेद में ऋभुओं द्वारा तीन पहियों का रथ प्रयोग किया जाता रहा जो अन्तरिक्ष में उड़ता था। त्रिपुरासुर यानी तीन असुर भाइयों ने अन्तरिक्ष में तीन ऐसे अजेय नगरों का निर्माण किया था जो जल, थल एवं नभ तीनों में विचरण कर सकता था। रामायण में ख्यातिप्राप्त पुष्पक विमान का वर्णन है। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण, जरासंध इत्यादि के विमानों का उदाहरण है। और श्रीमद्भागवत कथा में कर्दम ऋषि द्वारा अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए उसे उन्होंने विमान से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड घुमाया। आधुनिक विमान के निर्माण के बाद अब वे कहानियां कल्पित नहीं अपितु स्वाभाविक बन गई है।

महर्षि भारद्वाज ने 'यन्त्र सर्वस्व' वैमानिक शास्त्र नामक अध्याय लिखा था। महर्षि भारद्वाज के पूर्व नारायण कृत विमान चन्द्रिका, शौनक कृत-व्योम यान तंत्र, गर्ग कृत-यन्त्र कल्प, वाचस्पति कृत-यान विन्दु, चक्रायणीकृत-खेटयान प्रदीपिका एवं धुण्डीनाथ कृत-व्योमयानार्क प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों में भी विमान शास्त्र के संदर्भ में विस्तृत विवरण एवं सिद्धान्त हैं। महर्षि भारद्वाज ने तो न केवल वैमानिक शास्त्र का सिद्धान्त अपितु विमान की परिभाषा, विमान का चालक (Pilot),

आकाश मार्ग, वैमानिक कपड़े, विमान के पुर्जे, विमान की ऊर्जा, यन्त्र तथा विमान निर्माण हेतु विशेष धातु इत्यादि विषयों का विस्तृत उल्लेख किया है। विमान चालक विमान के बत्तीस रहस्यों को जानता था, जैसे– कृतक, गूढ़, अपरोक्ष, संकोचा, विस्तृता, सर्पागमन, परशब्द ग्राहक, रूपाकर्षण, दिक्प्रदर्शन, स्तब्धक, कर्षण इत्यादि। वैमानिक शास्त्र में परिवेष क्रिया यंत्र का उल्लेख विमान के स्वचालित विमान यंत्र (Auto Pilot System) से है।

## गणित शास्त्र

हिन्दू ज्ञान विज्ञान में गणित एक पूर्णरूपेण विकसित शास्त्र के रूप में सनातन काल से है। वैदिक काल में गणित के विद्वान् आज भी बड़ी-से-बड़ी संख्या का गुणा अथवा भाग बिना कागज कलम के ऐसे बतला देते हैं, जैसे कम्प्यूटर अपने स्क्रीन पर प्रदर्शित करता है। वैदिक गणित के माध्यम से व्यक्ति की निजी मानसिक क्षमता का भी विकास था। नौ अंक एवं शून्य के संयोग से अनन्त गणना करने की सामर्थ्य हिन्दुस्थान ने विश्व को दिया है। संसार ने माना है कि प्राचीन हिन्दुओं की बुद्धि बड़ी पैनी थी तथा शेष विश्व उनसे बहुत पीछे था। संस्कृत का एकं हिन्दी में एक हुआ, अरबी एवं ग्रीक में वन हुआ। ऐसे ही शून्य अरबी में सिफर तथा ग्रीक में जफिर एवं अंग्रेजी में जीरों हो गया। इस प्रकार हिन्दुस्थान का गणित आज संसार पर आच्छादित है।

हिन्दू लोक जीवन के सनातन काल में एक से दस, सौ, कोटि, अयुत, नियुत, कंकर, विवर, क्षोम्य, निवाह, उत्संग, बहुल, नागबल, तितिलम्ब, व्यवस्थान, प्रज्ञप्ति, हेतुशील, करहू, हेतु विन्द्रीय, समाप्तलम्भ, गणनागति, निखद्य, मुद्राबाल, सर्वबाल, विषमज्ञ गति, सर्वज्ञ, विभंतगमा और तल्लक्षणा तक का अंक स्वरूप है। तल्लक्षणा का तात्पर्य एक के साथ तिरपन शून्य ($10^{53}$) हुआ।

वैदिक गणित के उसी कड़ी को आगे बढाते हुए आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, श्रीधर इत्यादि अनेक गणितज्ञों ने आधुनिक विज्ञान की नींव तैयार किया। भास्कराचार्य ने 1150ई. में सिद्धान्त शिरोमणि नामक ग्रंथ लिखा। सिद्धान्त शिरोमणि में लीलावती, बीज गणित, गोलाध्याय एवं ग्रह गणित नामक चार अध्याय थे। इसी ग्रन्थ में

संकलन (जोड़ना) व्यवकलन (घटाना), गुणन (गुणा करना), भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल निकालना इत्यादि गणितीय प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित तथा त्रिकोणमिति (कैल्कुलस) इत्यादि हजारों-लाखों वर्ष पूर्व वैदिक गणित के अंग-उपांग थे।

## अंतरिक्ष एवं काल गणना

हिन्दुस्थान में अन्तरिक्ष एवं काल (Time and Space) गणना का विषय सनातन काल से ही ऋषियों एवं मुनियों ने विकसित कर रखा था। काल गणना का चिन्तन एवं साक्षात्कार हिन्दू ज्ञान (आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान) के दोनों पक्षों का सम्मिलित स्वरूप है। वेदों में पृथ्वी, जीव-जन्तु एवं प्रकृति की उत्पत्ति सम्बन्धित अनेकानेक सिद्धान्त प्राप्त है। ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पति के संदर्भ में स्पष्ट वर्णन है कि तब न सत् था न असत् था, न परमाणु था न अवकाश था, तो उस समय क्या था? तब न मृत्यु थी न अमरत्व था, न दिन था न रात थी। उस समय स्पंदन शक्ति युक्त एवं एक तत्त्व था।[7]

सृष्टि की उत्पत्ति तथा काल की उत्पत्ति साथ-साथ मानते हुए ऋषियों एवं मुनियों ने इसे ब्रह्माण्ड के एक मूर्त एवं एक अमूर्त रूप से प्रकट किया। सृष्टि रचना मूर्त है एवं काल अमूर्त है। हिन्दू चिन्तन के अनुसार काल अध्यात्म ज्ञान का एवं सृष्टि भौतिक विज्ञान का स्वरूप है। दोनों सदैव चलायमान है। सृष्टि संरचना में उत्पत्ति एवं विनाश जिस प्रकार दोनों साथ चलते हैं उसी प्रकार सृष्टि संरचना एवं काल यानी समय दोनों साथ-साथ उत्पन्न हुए एवं साथ-साथ चल रहे है। एक तरह से देखा जाए तो काल ही उत्पन्न कर रहा है एवं काल ही कालकलवित भी कर रहा है। इसलिए सृष्टि में संसार एवं उसके स्वरूप को मापने के लिए काल गणना का सिद्धान्त बना। इसी प्रकार सृष्टि संरचना में प्रयुक्त समय यानी काल की गणना का सिद्धान्त प्रकाश में आया है। इसी को सनातन हिन्दू ज्ञान में काल और अन्तरिक्ष गणना (Calculation of Time and Space) कहा गया।

7. नासदासीन्तोसदासीत 8.7.17.1, ऋग्वेद-संहिता, सुप्त 129, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवाद पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, चोखंबा प्रकाशन, पृ. 529.

हिन्दू लोक जीवन में हमारे चिन्तकों तथा मनिषियों ने हजारों वर्ष पूर्व काल एवं अन्तरिक्ष की गणना के लिए लघु एवं महत्तम माप को पूर्णरूपेण वैज्ञानिक आधार दिया था। आज भी उनकी तार्किकता एवं वैज्ञानिकता को चुनौती नहीं दिया जा सका। समय को समय के लिए बनी ईकाइयों से एवं अन्तरिक्ष यानी पृथ्वी के उपर अनन्त अन्तरिक्ष में सृष्टि (विविध रूपों जैसे ठोस, द्रव्य एवं गैस के रूप में विद्यमान प्रकृति या मानव द्वारा निर्मित) के मापन की ईकाइयों का सर्व प्रथम चिन्तन हिन्दुस्थान में ही हुआ। निर्मेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त एवं दिन-रात का उल्लेख महाभारत के मोक्षपर्व में हुआ है। शुक मुनि ने काल गणना परमाणु, अणु, त्रसरेणु, त्रुटि, वेध, लव, क्षण, काष्ठा, लघु, नाड़िका, मुहूर्त, दिन-रात, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष का मापन दिया है। इसके आगे भी कलियुग (432000 वर्ष), दो कलियुग बराबर एक द्वापर युग, तीन कलियुग बराबर एक त्रेता युग, चार कलियुग बराबर एक सतयुग तथा चारों युगों की एक चतुर्युगी एवं एकहत्तर चतुर्युगी बराबर एक मन्वंतर और चौदह मन्वंतर तथा 15 सतयुग का एक कल्प होता है। एक कल्प यानी ब्रह्मा का एक दिन और उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। यह गणना इसके भी आगे है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष की भी गणना का मापन सिद्धान्त प्राचीन काल से ही हिन्दुस्थान में अवगाहित है।

## अन्यान्य शास्त्र

हिन्दू लोक जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में विज्ञान की विविध शाखाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। खगोल विज्ञान, स्थापत्य शास्त्र, वनस्पति एवं रसायन शास्त्र, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद, प्राणी एवं चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र इत्यादि हिन्दू ज्ञान की विविध शाखाएँ पूर्णरूपेण स्थापित एवं मान्यता प्राप्त विधाएँ थीं। स्मरण रहे कि शिक्षा एवं विद्या में हिन्दू मान्यता के अनुसार व्यापक अन्तर होता है। शिक्षा से व्यक्ति विशेष को लाभ होता है। उसकी प्रतिबद्धता एवं उत्तरदायित्व 'स्व' केन्द्रित अथवा नौकरी कर रहा होता है तो उसके 'स्वामी' के प्रति रहता है। किन्तु विद्या प्राप्ति के उपरान्त व्यक्ति की प्रतिबद्धता एवं उत्तरदायित्व 'स्व' या 'किसी व्यक्ति' विशेष के स्थान पर 'लोक जीवन' से होता है। केवल मानव समाज के लिए नहीं अपितु प्रकृति एवं जीव-जन्तुओं के प्रति भी होता है। यह मौलिक अन्तर

हजारों वर्ष पूर्व हिन्दू मनीषियों ने स्थापित किया था जो सम्पूर्ण लोक जीवन के लिए एक मानक था। प्रत्येक मनुष्य इसका पालन अवश्य करता था।

खगोल शास्त्र में ब्रह्माण्ड के रहस्यों के साथ प्रकाश की गति, गुरूत्वाकर्षण, पृथ्वी गोल है, पृथ्वी घूमती है, सूर्योदय-सूर्यास्त, ग्रहण, विभिन्न ग्रहों की दूरी एवं ब्रह्माण्ड का विस्तार इत्यादि विषय आते हैं। सनातन काल से ही हिन्दू लोक जीवन में ग्रह-नक्षत्रों इत्यादि का पृथ्वी पर प्रभाव का ज्ञान था।

## 3.8 हिन्दू ज्ञान की उपादेयता

हिन्दू ज्ञान चिन्तन की धारा आधुनिक विश्व के समक्ष एक चुनौतीपूर्ण भूमिका में है। हिन्दू लोक जीवन का रूप आधुनिक समाज, हिन्दू आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था का रूप पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, हिन्दू सांस्कृतिक जीवन का रूप भोगवादी एवं बाजारवादी संस्कृति और कल्याणकारी ज्ञान विज्ञान के चिन्तन का रूप विनाशकारी आधुनिक विज्ञान ने ले लिया है। हिन्दू ज्ञान तथा विज्ञान दोनों का आधार अध्यात्म एवं भौतिक दर्शन है। हिन्दुस्थान में मानव जीवन से सम्बन्धित विविध विषयों के मूल तत्त्व के रूप में अध्यात्म एवं भौतिक ज्ञान रूप दोनों शक्तियां एक साथ क्रियाशील रहती हैं। हजारों-हजार वर्ष के सनातन चिन्तन के बाद ऋषियों द्वारा प्रतिपादित हिन्दू ज्ञान का चार-पांच शताब्दियों में बड़ी तीव्रगति से ह्रास हुआ है। इसके पार्श्व में हिन्दुस्थान पर गत लगभग 1300 वर्षों से लगातार आक्रमण, विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा शासन एवं अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्थान को उपनिवेश बनाकर यहां भारी लूटपाट, शोषण एवं दोहन ही मुख्य रूप से रहा है। इन्हीं कारणों से हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू जीवन पद्धति तथा हिन्दू लोक जीवन के औचित्य पर प्रश्न उठ रहा है। किन्तु यह सब भ्रम है। जहाँ हिन्दुत्व के प्रति, दुर्भावना, षड्यन्त्र एवं हिन्दुस्थान में अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई तथा मुस्लिम संगठनों के अनेक समूहों ने योजनाबद्ध रूप से हिन्दुओं को क्षति पहुंचाने का प्रयास किया एवं लगातार कर रहे हैं, वहां ऐसे प्रश्न औचित्यहीन हैं। बल्कि ऐसे में हिन्दुत्व की यही अग्नि-परीक्षा है।

वर्तमान समय में आध्यात्मिक चिन्तन का स्थान अति–भौतिकवादी, भोगवादी, उपभोक्ता एवं बाज़ारवादी संस्कृति ने ले लिया है। सामाजिक सम्बन्धों का मूल्य बड़ी तीव्रगति से गिरा है। नैतिक सम्बन्धों को अनैतिकता के आवरण में लपेटकर उसे ही सामाजिक स्वीकृति दे देने के लिए हर सम्भव प्रयास हो रहा है। सामाजिक स्वरूप, राजनीति, अर्थव्यवस्था अथवा विज्ञान इत्यादि का आधार जिस प्रकार हिन्दुस्थान में अध्यात्म होता था जिससे इन सब विषयों की दिशा सर्वथा कल्याणकारी ही रहती थी, वैसे ही मानव के उच्छृंखल स्वभाव के नियन्त्रण हेतु अध्यात्म भाव अति आवश्यक है। सर्वविदित एवं विश्व प्रमाणित है कि अध्यात्म ज्ञान तो भारत ही विश्व को अवगत करायेगा।

विज्ञान, मानव जीवन को उत्तम बनाने हेतु अवगाहित हुआ है न कि मानव विज्ञान के आधार पर उच्छृंखल बनकर अपने ही आस्तित्व के लिए चुनौती बन जाय। आज व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर सामाजिक मयार्दाएँ नष्ट भ्रष्ट हो रही हैं। संसार भर में लगभग शत–प्रतिशत पति–पत्नी के सम्बन्ध, भाई–भाई के सम्बन्ध, मित्र–मित्र के सम्बन्ध कड़वाहट भर चुके हैं। अधिकांश लोग भोग विलास के लिए कानून एवं कानून द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के तहत सामाजिक मानदण्ड को चकनाचूर कर रहे हैं। हिन्दू संस्कृति एवं लोक जीवन के अनुसार व्यक्तिगत स्वतंत्रता सामाजिक मर्यादाओं के मूल्य पर नहीं प्रदान की जा सकती है। पति–पत्नी के शयन कक्ष एवं पारिवारिक बैठक कक्ष का अन्तर सामान्य व्यक्ति को तो होनी ही चाहिए। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर सार्वजनिक स्थान पर नग्नता, सम्बन्धों की विकृतता एवं कानून को हास्यास्पद एवं असहाय बना देना यह मानव समाज के लिए उचित नहीं है। हिन्दू संस्कृति एवं लोक जीवन में स्थापित ज्ञान व्यक्ति की अनावश्यक उच्छृंखलता पर रोक का सदैव संकेत करती है।

ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण, रसायनिक पदार्थ युक्त खाद्यान्न, अत्यन्त खतरनाक बीमारियाँ तथा एटामिक शस्त्रों ने पृथ्वी के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। इन खतरों के पीछे आधुनिक विज्ञान का विध्वन्सक स्वरूप है। आज विज्ञान मात्र मानव के हित को दृष्टि में

रखकर विकसित किया जा रहा है। विज्ञान के विकास से प्रकृति, जीव-जन्तु तथा पृथ्वी असुरक्षित होती जा रही है। जब प्रकृति एवं पृथ्वी ही नहीं बचेगी तो मानव के विकास का औचित्य ही क्या रहेगा? हिन्दू ज्ञान-विज्ञान में अध्यात्म को अभिन्न मानकर प्रकृति एवं पृथ्वी के संरक्षण का पूर्णरूपेण ध्यान रखा जाता रहा है। इसलिए यह उचित समय है, जब हिन्दू ज्ञान के आध्यात्मिक पक्ष को प्रत्येक क्षेत्र में आत्मसात करके विज्ञान के अभिशाप को कल्याणकारी रूप दिया जा सकता है।

हिन्दू लोक जीवन का प्रत्येक पक्ष जिस प्रकार मानव कल्याणार्थ होते हुए प्रकृतिपरक एवं प्रकृति संरक्षण के भावना पर आधारित है, उसी प्रकार आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को प्रकृतिपरक बनाने से ही विज्ञान का स्वरूप मानव के लिए वरदान युक्त बन सकेगा।

मानव जीवन एक विशिष्ट जीवन है। इस विशिष्ट जीवन को उद्देश्यपरक एवं सफल कैसे बनाया जाए, इसका चिन्तन हिन्दू ज्ञान में विस्तृत रूप से किया गया है। विशेषतः अर्थववेद जो सभी वेदों का सार है, उसमें मानव एवं मानव जीवन के संदर्भ में आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान पर आधारित पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है। बुद्धि, ज्ञानार्जन, समाजीकरण, विवाह, सन्तान प्राप्ति, रोग से उपचार, स्वास्थ्य, आयु वृद्धि तथा सम्पत्ति इत्यादि समस्त सांसारिक क्रियाओं की आध्यात्म पर आधारित वैज्ञानिक प्रयोगों का वर्णन अथर्ववेद में है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के चतुःपुरुषार्थ के सिद्धान्त का ज्ञान मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

आज संसार में अनेक संस्कृतियां एवं जीवन पद्धति विकसित हुई है। विभिन्न पंथ के दिशा निर्देश ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं किन्तु एकमात्र हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रकृति, पृथ्वी एवं मानव अस्तित्व की रक्षा का उल्लेख प्राप्त होता है। हिन्दू ज्ञान में विज्ञान के यथोचित प्रयोगों के अनेकानेक उदाहरणों का विस्तृत वर्णन महाभारत एवं पुराणों में है। जिस प्रकार एटम बम का प्रयोग जापान की निरीह एवं निर्दोष जनता पर किया गया, हिन्दू ज्ञान विज्ञान एवं संस्कृति में ऐसा निर्देश तो दिया ही नहीं जा सकता। अस्त्र शस्त्र का प्रयोग हिन्दुस्थान में सर्वदा अधर्म के नाश करने एवं धर्म की स्थापना हेतु प्रयुक्त होता रहा है।

हिन्दू चिन्तन में वसुधैवकुटुम्बकम् एवं सर्वे भवन्तु सुखिनः के भाव सर्वथा दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार का भाव रखना भी आधुनिक समाज में विश्व के लिए हितकर है। पूर्वकालीन साम्राज्य वर्चस्व का स्थान आज आर्थिक वर्चस्व ने ले लिया है। प्रत्येक देश अपने-अपने हित पोषण एवं अपने देश की जनता के लिए सुख-सुविधा उपलब्ध कराने तथा संसार को एक वृहद् बाजार बनाकर उसमें सब कुछ बेच देने की होड़ में है। आज लोग अपने आपको बेच देना चाहते हैं। नारी को बाजार की वस्तु बनाकर प्रस्तुत किया जा चुका है। हिन्दू संस्कृति में स्पष्ट वर्णित है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।' इतना ही नहीं हिन्दुस्थान में इस पृथ्वी को एक परिवार मानकर एवं उस पर निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के हित को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण ज्ञान एवं विज्ञान का प्रतिपादन हुआ है।



# अध्याय-4

## हिन्दू लोक जीवन का समाजशास्त्रीय दर्शन

हिन्दू संस्कृति वैदिक काल में अपनी पूर्णता प्राप्त कर शीर्ष पर थी। प्रकृति प्रधान जीवन्न के रहस्यों को लोक जीवन में व्यवहृतकर इससे मानव समाज की निरन्तरता एवं गतिशीलता बनाए रखने का रहस्य ज्ञात कर लिया था। ज्ञान के विविध आयाम न केवल परीक्षित थे, अपितु स्वयं में भी पूर्ण थे। इस निधि को संरक्षित करने और लोक जीवन में समाहित कर व्यवहारिक मूल्यों को अधुनातन बनाए रखने की प्रेरणात्मक अभिवृत्तियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी अनुगम्य थी।

वैदिक वांग्मय का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में हिन्दू लोक जीवन का वंशानुगत विभाजन नहीं था। और तत्कालीन सामाजिक संरचना में वर्तमान जातियों का अस्तित्व भी नहीं था। ऋग्वेद के अन्तर्गत वर्ण का उल्लेख प्राप्त है, किन्तु उस पर आधारित किसी वर्ण व्यवस्था का उल्लेख नहीं है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि कोई वर्ण विशेष किसी दूसरे वर्ण से श्रेष्ठ अथवा निम्न था।[1] हिन्दुस्थान की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक सम्बन्धों को अविच्छिन्न रखने वाले तत्त्वों से परिपूर्ण सामाजिक विषमता के विरुद्ध लोक जीवन में अनेकानेक सामाजिक समरसता के अध्याय थे। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दू लोक जीवन पर आधारित समाजीकरण, हिन्दू सामाजिक संस्थाएं, रीति-रिवाज, परम्पराओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन के साथ हिन्दू वैश्विक वैचारिकी में मानव की विशिष्ट भूमिका का उल्लेख है।

### 4.1 हिन्दू धर्म में लोक जीवन

हिन्दू धर्म में समाज की अवधारणा की जगह लोक जीवन का सिद्धान्त था। 'समाज' शब्द पश्चिमी जगत की देन है जिसका तात्पर्य तो केवल मानवीय सामाजिक संस्थाओं का समुच्चय है। हिन्दू

1. ऋग्वेद, पुरुषसूक्त 10.7.90

लोक जीवन में न केवल मानव अपितु जीव-जन्तु, पेड़-पौधे एवं सम्पूर्ण प्रकृति होती है। हिन्दू लोक जीवन बिना गाय एवं खेत-खलिहान के अपूर्ण लगता है। पश्चिमी समाज की आधुनिकतावादी मान्यताओं ने स्वयं को केवल मानव और उसके कल्याण तक सीमित कर लिया है। उनके द्वारा प्रकृति के शोषण के पीछे यही सिद्धान्त कार्यरत है।

हमारे लोक जीवन में प्रकृति आधारित संस्कृति, सम्पदा, पंचतत्त्व (जल, थल, पावक, गगन एवं समीर) के साथ ब्रह्माण्ड में स्थित अन्य ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा निहारिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।[2] बौद्धिक सम्पदा संरक्षण कानून के तहत चर्चा होती है कि भारत के प्राकृतिक और बौद्धिक सम्पदाओं को लूटा जा रहा है। देश में अन्याय विषय वस्तुओं एवं सिद्धान्तों को पेटेंट कराने की चर्चा भी चलती है। अमेरिका, जर्मनी तथा अन्य देशों ने अनेक भारतीय वस्तुओं का पेटेंट करवाया है। हिन्दू मानस में स्थापित भारतीय परंपरा एवं सम्बन्धों में जहां वसुधैवकुटुम्बकम् की सांस्कृतिक भावना हो वहां इस लूट-पाट का क्या अर्थ है। किन्तु पश्चिमी देशों की इस प्रकार की लूट पर मात्र इतनी टिप्पणी की जा सकती है कि भारतीय ज्ञान, विज्ञान या वस्तुओं की लूट के समय पश्चिमी देश इतना ख्याल रखें कि हमारी वस्तुएं केवल 'उत्पाद' नहीं हैं, बल्कि हमारे लोक जीवन में सभी वस्तुओं की सामाजिक भूमिका और महत्त्व स्थापित है।[3] उदाहरणार्थ हल्दी लिया गया, किन्तु हल्दी की सांस्कृतिक भूमिका को छोड़ दिया गया। अगर शेष विश्व ने हल्दी की सांस्कृतिक भूमिका को अपनाया होता तो रातों-रात विवाह सम्बन्धों के विच्छेद (डाईवोर्स) में कमी आती, क्योंकि भारत में हल्दी बिना विवाह की रस्म अधूरी होती है। हल्दी विवाह-सूत्र को मजबूत करते हुए स्वस्थ लोक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करती है। हल्दी लगवाने के साथ ही वर-वधू विवाह जैसे पवित्र बंधन में बंधने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं। इसी प्रकार नीम, तुलसी इत्यादि की भीं अपनी अलग सांस्कृतिक भूमिका है, जो हिन्दू लोक जीवन के अभिन्न हैं।

2. निरुक्त 7.1.4, ऋग्वेद 3.33.3 ऐतरेय ब्राह्म 7.33
3. 'ऋतपा ऋतेजाः.....।' ऋग्वेद 7.20.6, 2.2.26, 3.53.4, अथर्वद 20.9.1

## 4.2 हिन्दू लोक जीवन का तात्पर्य एवं सिद्धान्त

सामाजिक जीवन का अर्थ है 'मानव समूह अथवा मानव का वह आचार-व्यवहार जो वह समाज में रहकर अपने तथा अन्य दूसरों के लिए प्रक्रिया में लाता है।' हिन्दू लोक जीवन का तात्पर्य इससे व्यापक अर्थों में है। इसका अभिप्राय है मनुष्य का वह सद्व्यवहार एवं सदाचरण जो उसके संवर्ग के साथ ही प्रकृति में सांस ले रहे अन्य प्राणियों के लिए भी मांगलिक हो। मनुष्य की जीवन शैली जब केवल मानव समाज के प्रति हितकर हो तो उसे सामाजिक जीवन कहते हैं और जब उसकी जीवन शैली मानव समाज के साथ ही साथ पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आदि सभी के लिए सहिष्णु होती हो तो उसे लोक जीवन कहते हैं।

हिन्दू लोक जीवन की एक परिभाषा यह भी है कि- 'इस जीवन शैली में मानव के साथ-साथ प्रकृति, अन्यान्य जीव-जन्तु तथा वनस्पतियों एवं पेड़-पौधों का भी समिश्रित अन्तर्क्रियाएं गतिशील होती हैं।' यह हिन्दू लोक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। हिन्दू जीवन-शैली पूर्णतः प्रकृतिपरक और प्रकृति द्वारा नियोजित होती है, अतएव हिन्दू लोक जीवन का अभिप्राय प्रकृतिपरक नियोजित जीवन है। प्रकृति का स्वरूप कुछ विशिष्टताओं से युक्त होता है। प्रकृति में स्वतः परिवर्तन भी होते रहते हैं। परिवर्तन की दिशाएं दो होती हैं- अनुकूल और प्रतिकूल। अनुकूल परिवर्तन लोक जीवन के लिए हितकर होता है, जबकि प्रतिकूल परवर्तन होने पर लोक जीवन का विनाश हो जाता है। लोक जीवन का विनाश किसी अन्य अवस्था को न प्राप्त होकर सीधे प्रकृति में समाहित हो जाता है। हिन्दू लोक जीवन को इसीलिए प्रकृतिपरक कहा गया है।

हिन्दू लोक जीवन का एक अर्थ यह भी है कि वह प्रकृति के समाजीकरण अथवा प्रकृतिकरण का परिणाम है। प्रकृति का समाजीकरण उसकी सानुकूलन की अवस्था का प्रतीक है। मानव समाज का जब प्रकृति के समाजीकरण की तरह अवसादन होता है, वह हिन्दू लोक जीवन बन जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के समाजीकरण द्वारा हिन्दू लोक जीवन का निर्माण होता है।

हिन्दू लोक जीवन विश्व के किसी भी जीवन शैली से भिन्न है। इसमें प्राकृतिक क्रियाओं से जीवन जीने की कला का विकास किया

है। पाश्चात्य समाज परिस्थितियों का दास हो सकता है, परन्तु हिन्दू लोक जीवन अथवा हिन्दू समाज कभी परिस्थितियों के सामने घुटने नहीं टेका, बल्कि वह प्रकृति के साथ अनुकूलन अवश्य प्राप्त कर लेता है। प्रकृति जिस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न करती है, हिन्दू लोक जीवन अपनी क्रियाओं को उसी के अनुकूल बना लिया करता है ताकि उसमें अप्राकृतिक दोष उत्पन्न न हो सकें। हिन्दू लोक जीवन यदि सामाजिक जीवन अथवा मानव समाज से सम्बन्धित ही जीवन होता तो प्रकृति को उपेक्षित करके भी जीवन्त रह सकता था, परन्तु वह सीधे प्रकृति से जुड़ा हुआ होने से अपने को तभी तक शाश्वत रख सकता है, जब तक कि प्रकृति होगी। स्पष्ट है कि पाश्चात्य समाज के समाप्त हो जाने पर भी हिन्दू लोक जीवन निरन्तर गतिशील रहेगा। इसे इन शब्दों में भी व्यक्त कर सकते हैं– 'समाज रहे या न रहे, हिन्दू लोक जीवन शाश्वत रहेगा।'

हिन्दू लोक जीवन का सिद्धान्त पूर्णतः प्रकृति पर आधारित है। हिन्दू लोक जीवन ने प्राकृतिक क्रियाओं से अपने जीवन जीने की कला का विकास किया है। प्रकृति के अन्तर्गत विभिन्न तत्त्वों का निर्माण, विकास एवं क्षरण की प्रवृत्ति होती है। हिन्दू लोक जीवन में ठीक इसी तरह की प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। प्राकृतिक क्रियाओं में एक तारतम्यता और युक्तिसंगतता निहित होती है। हिन्दू लोक जीवन में भी यह प्रयास किया जाता है कि कार्य-कारण की कारकता में तारतम्यता बनी रहे और विवेक भी युक्तिसंगत विधि से उत्तम-अनुत्तम की पहचान करके आचार-व्यवहारों का सम्पादन होने दे। 'विवेक गया तो व्यवहार गया और जब व्यवहार गया तो हिन्दू लोक जीवन भी चला गया'– ऐसा उचित ही माना जाता है।

हिन्दू लोक जीवन के सिद्धान्त में वैज्ञानिक कारकता एवं कार्य की वैचारिकी पाई जाती है। अतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार से प्रकृति की कोई क्रिया अकारण नहीं होती है, उसी प्रकार से हिन्दू लोक जीवन की विभिन्न क्रिया एवं प्रतिक्रिया भी अकारण नहीं है। यहां जीवन का एक निश्चित उद्देश्य है। हिन्दू लोक जीवन की प्रत्येक क्रिया की पृष्ठभूमि प्रकृति द्वारा स्वयं तैयार की जाती है और उस क्रिया के प्रतिफल से जो कुछ भी घटित होता है, वह आगामी क्रिया की पृष्ठभूमि का सृजन करता है। पृष्ठभूमि की ऐसी

सृजनता का तारतम्य किसी अन्य जीवन-शैली में नहीं मिल सकता है।

हिन्दू लोक जीवन का सिद्धान्त समाजीकरण से भी सम्बोधित किया जा सकता है। समाजीकरण की प्रकृति के अनुसार मनुष्य अपने को समाज में रहने की योग्यता प्राप्त करता है। समाजीकरण भी समाज से ही होता है। अतएव जैसा समाज होता है, उसी के अनुसार मनुष्य का समाजीकरण भी होता है। पश्चिमी समाज के बारे में उल्लेख किया जा चुका है कि उसमें मनुष्य के अतिरिक्त किसी अन्य जीव-जन्तुओं अथवा प्राणियों के विषय में किसी तरह के सहिष्णुभाव नहीं होते हैं, इसीलिए वहां का समाजीकरण भी भिन्न प्रकार का होता है। हिन्दू लोक जीवन का समाजीकरण प्रकृतिपरक समाज के साथ होता है इसीलिए उसमें करुणा, मैत्री, दया, सहिष्णुता, परोपकार आदि का अधिकाधिक भाव देखा जा सकता है। प्रकृति के इन्हीं सिद्धान्तों को आधार बनाकर हिन्दू लोक जीवन का प्रतिपादन हुआ है।

## 4.3 हिन्दू लोक जीवन में समाजीकरण एवं सामाजिक संस्थाएं

हिन्दू जीवन पद्धति के आधारभूत तथ्यों की व्याख्या से यह स्पष्ट है कि यह जीवन पद्धति पूर्णतया प्रकृतिपरक और प्रकृति द्वारा ही नियोजित है। मानव विकास के विभिन्न सिद्धान्तों के अवलोकन से यह भी स्पष्ट है कि विकास के क्रम में मानव ने प्राकृतिक क्रियाओं से अपने जीवन जीने की कला का विकास किया है। प्रकृति के अन्तर्गत विभिन्न तत्त्वों का निर्माण, विकास एवं क्षरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। उनकी क्रियाओं में एक तारतम्यता और युक्तिसंगतता निहित होती है। प्रकृति की कोई भी क्रिया अकारण नहीं होती है। प्रत्येक क्रिया की पृष्ठभूमि प्रकृति द्वारा स्वयं तैयार की जाती है और उस क्रिया के प्रतिफल में जो कुछ भी घटित होता है, वह आगामी क्रिया की पृष्ठभूमि का सृजन करता है। इसी प्रकार मानव समूह का विकास हुआ। भारत वर्ष में ऋषियों ने प्रकृति के इन्हीं सिद्धान्तों को आधार बनाकर लोक जीवन का प्रतिपादन किया जो यहां के मानव के समाजीकरण का स्वरूप है।

इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है कि अन्य मानव समूहों की अपेक्षा हिन्दुओं ने प्रकृति के शाश्वत गुणों को अधिक सजगता से जांचा-परखा और उन्हें अपनी सामाजिक क्रिया का आधार बना एक विशिष्ट जीवन शैली का विकास किया। यही जीवन शैली कालान्तर में हिन्दू जीवन पद्धति के रूप में व्यवहृत है। इसी जीवन शैली के समाजीकरण के क्रम में हिन्दू सामाजिक संस्थाओं ने अपना स्वरूप धारण किया। हिन्दू सामाजिक संस्थाओं में परिवार, सामाजिक सम्बन्ध, लोक जीवन, कुल धर्म, राष्ट्र धर्म इत्यादि व्युत्पत्ति के साथ हिन्दुत्व रूपी संस्कृति के एक छतरी के नीचे अवस्थित हो निरन्तर प्रवाहमान हैं। स्मरण रहे कि हिन्दू सामाजिक संस्थाओं का आधार प्रकृति, प्रकृतिपरक विशिष्टता और प्रकृति के गुण-धर्म पर आधारित वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय चिन्तन है।[4]

हिन्दू समाजीकरण एवं सामाजिक संस्थाओं की पृष्ठभूमि में हिन्दू सामाजिक संरचना, हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विविध उपादान, लोक जीवन, व्यवहार दर्शन, लोक जीवन की समाजिक मर्यादाएं और उनकी आवश्यकता हिन्दू सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरण, सामाजिक परिवर्तन की धाराएं, सामाजिक समरसता का व्यवहारिक दर्शन, समाज की शाश्वत निरन्तरता इत्यादि का आधार प्रकृति तथा प्रकृतिजन्य सिद्धान्त हैं। हिन्दुत्व के सामाजिक अभिकरण को उक्त परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त कर मानव सुख-समृद्धि एवं शन्ति से रहकर समाज तथा स्वयं के अस्तित्व की रक्षा कर सकता है।

## 4.4 हिन्दू लोक जीवन एवं मानव समाज

मानव समाज की अवधारणा मुख्यतः पश्चिमी समाज की परिभाषा से सम्बन्धित है। पाश्चात्य समाज-दर्शन केवल मनुष्यों का ही अध्ययन करता है और समाज का अर्थ भी केवल मानव समाज से ही लगाता है। परन्तु हिन्दू समाज-दर्शन की वैचारिकी बहुत व्यापक अर्थों में अपनी अवधारणा को अभिव्यक्त करती है। हिन्दू लोक जीवन सदैव पशु समाज, पक्षी समाज, जीवन समाज, जड़वत

4. शर्मा, रघुनन्दन प्रसाद, स्मृतियों में भारतीय जीवन पद्धति, सांस्कृतिक गौरव संस्थान, नई दिल्ली, 2002.

समाज आदि से अपने को संयुक्त रखता है। जीवों पर दया करनी चाहिए, यह हिन्दू लोक जीवन का कथन है। वृक्षों को काटने से प्राकृतिक असन्तुलन उत्पन्न होगा और परिणामस्वरूप मानव एवं लोक जीवन खतरों में पड़ सकता है, यह हिन्दू लोक जीवन का उद्बोधन है।

समाज की हिन्दू वैचारिकी में सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की कामना विद्यमान है। उसमें अपेक्षा है कि मनुष्य, मनुष्य की सभी दिशाओं से रक्षा करे–'पुमान् पुमांसम् परिपातु विश्वतः।' मानव समाज की सामाजिक संस्थाओं की अन्तःक्रियाओं के अधिकार पर मानव जीवन की निरन्तरता का गहन अवलोकन यदि किया जाए तो मानव समुदाय की निरन्तरता एवं गतिशीलता का आभास होता है। इस आभास में यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि आज का मानव समाज कुछ निश्चित सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप गतिशील है। उन्हीं सामाजिक व्यवस्थाओं को विभिन्न संस्कृतियों या जीवन पद्धति के आवरण में देखा जाता है।

मानव समाज सम्पूर्ण मानव का प्रतिनिधित्व करने के बाद भी हिन्दू लोक जीवन की तुलना में लघुस्वरूप ही माना जायेगा, क्योंकि हिन्दू लोक जीवन पूर्णतः प्रकृतिमय है जिसमें सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति समान रूप में संवेदनाएं उत्पन्न हुआ करती हैं। वैदिक काल में समाज अथवा मानव समाज का बोध हिन्दू लोक जीवन के रूप में ही मान्य था। 'वेदाध्ययन यह इंगित करता है कि वैदिक लोक जीवन मानव, जीव-जन्तु (पशु, पक्षी एवं सभी प्रकार के जीव) और प्रकृति (पेड़-पौधे एवं सभी प्रकार के चर-अचर) की समायोजित व्यवस्था थी एवं सम्पूर्ण जीव जगत चौरासी लाख योनियों में विभक्त था।[5]

मानव समाज और हिन्दू लोक जीवन में कालचक्र की आधारिता पर बहुत बड़ा अन्तर यह हो सकता है कि हिन्दू लोक जीवन वेदकालीन मानव समाज की ओर संकेत करता है, जबकि मानव समाज आधुनिक मानव समाज का परिचायक है। आज का मानव समाज पूर्वकालिक लोक जीवन से बहुत परिवर्तित पाया जाता है।

---

5. ऋग्वेद 3.33.3, ऐतरेय ब्राह्मण 7.33

वैदिक लोक जीवन सरल होने के कारण सत्ता एवं शक्ति के प्रति अंधानुकरण की प्रवृत्ति से मुक्त था; जबकि वर्तमान मानव समाज में यह दुर्गुण पाया जाता है। धर्म प्रधान जीवन होने के कारण समरस एवं सन्तुलित लोक जीवन तत्कालीन मानव समाज का प्रधान गुण था। तत्कालीन सामाजिक नियम एवं नियंत्रण धर्म पर आधारित थे और उनको अनिवार्यतः स्वीकृति प्राप्त थी। समाज के प्रत्येक आचार-व्यवहार उन नियमों से पूर्णतः नियंत्रित थे। सामाजिक नियमों का उल्लंघन धर्म का उल्लंघन था। आज का मानव समाज सामाजिक नियमों का उल्लंघन इसलिए कर जाता है कि उसने धार्मिक आचार संहिता में अपनी संलग्नता एवं अपना विश्वास कम कर लिया अथवा उससे बहुत दूर चला गया है। धार्मिक एवं अध्यात्मिक चिन्तन पर आधारित भावनाओं पर यह प्रदूषण क्रमशः हिन्दुस्थान एवं अन्य देशों में भी फैलने लगा है जिसे रोकने के लिए हिन्दू जीवन-पद्धति पर आधारित हिन्दू लोक जीवन का सर्वत्र प्रसार आवश्यक है।

वर्तमान मानव समाज से प्राचीन हिन्दू लोक जीवन बहुत आगे था। वह भौतिक उन्नति एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष से युक्त था। लोक जीवन की व्यवस्था को बनाये रखने के लिए भारतीय ऋषियों-महर्षियों के दिशा-निर्देश निरन्तर प्राप्त होते थे। हिन्दुओं में लोक जीवन की परम्परा पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनुगम्य थी।[6] लोक जीवन का वंशानुगत विभाजन न था। उसमें अनुकूलन की विशेषता विद्यमान थी। लोक जीवन का आधार प्रकृति थी। वैदिक काल में सृजित लोक जीवन के मूल्यों और दिन-प्रतिदिन के जीवन में प्रयुक्त होने वाली अवधारणाओं में निहित अर्थबोध का दर्शन आधुनिक विश्व की किसी अन्य संस्कृति में परिलक्षित नहीं होता है, यही हिन्दू लोक जीवन की विशेषता है। हिन्दू लोक जीवन का उत्तर अथवा विकल्प आज शेष विश्व के लोगों के पास नहीं है। तत्कालीन मानव में भी वैचारिकी एवं व्यवहारिक विषमताएं थीं, लेकिन धर्महीन कटुता नहीं थी। मानव मात्र एवं प्रकृति के कल्याण के प्रति समाज सजग रहता था।

हिन्दू लोक जीवन में वर्ण-व्यवस्था अथवा जाति-व्यवस्था का अस्तित्व नहीं था। वर्ण का नाम व्यवसाय विशेष में लगे लोगों के

6. यजुर्वेद, 4.28

पहचान हेतु प्रकाश में आया जो कालान्तर में जातियों के भेदभाव बोध में प्रयुक्त होती चली गई। वर्ण-धर्म की व्युत्पत्ति उत्तरवैदिक काल में हुई और उस काल में कुछ वर्णों के उदय होने का कारण मानव की बढ़ती संख्या एवं समाज में आजीविका एवं व्यवसाय ही मुख्य था। उच्च-निम्न अथवा इस प्रकार के चिन्तन का कोई भाव नहीं था। धीरे-धीरे यज्ञों में वर्ण से बहिष्कृत धर्म स्खलित लोगों के साथ भेदभाव किया जाने लगा, फिर भी लोक जीवन सुव्यवस्थित और सुसंगठित बना हुआ था और उसकी निरन्तरता को बनाये रखने की आकांक्षाएं बलवती थीं। यहां तक कि वैदिक ऋचाओं में महिलाओं की सृजनात्मक शक्ति को समादृत एवं सम्मानित किया जाता था।

हिन्दू लोक जीवन की एक अन्य विशेषता यह थी कि वह वेदों से अनुप्राणित था। वैदिक पद्धति पर ही लोक जीवन के नियम-नियामक निर्मित किए गए थे। इसलिए वेदों का अध्ययन, श्रवण, ज्ञान, अनुगमन इत्यादि व्यक्ति के सहज कर्म के रूप में स्वीकृत था[7] तथा वेदाध्ययन न करने वाले की निन्दा की जाती थी।[8] वैदिक नियमों का पालन करने वाले सभी लोगों को ब्राह्मण का सम्बोधन प्राप्त था। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में लकड़ी काटने वाला ब्राह्मण, पशुपालन करने वाला ब्राह्मण, कृषि कार्य करने वाला ब्राह्मण, बलि करने वाला ब्राह्मण इत्यादि का उल्लेख मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि वेद काल में मानव को ब्राह्मण शब्द से ही संम्बोधित किया जाता था। ऋग्वेद में बलि देने वाले ब्राम्हण का 'खट्टिक' सम्बोधन प्राप्त था।[9] वर्तमान समय में मंदिरों में बलि का कार्य स्वयं पुजारी द्वारा सम्पन्न किया जाता है। आज हिन्दुस्थान में खटिक एक अनुसूचित जातियों में आने वाली मांस, फलों एवं कृषि कार्य में संलग्न जाति है। जो प्रायः सम्पूर्ण देश में पाई जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक व्यवस्था के जटिल होने के कारण प्रकार्यात्मक आधारों पर लोगों का वर्गीकरण किया गया था, जिससे उत्तर वैदिक काल में वर्ण का प्रादुर्भाव हुआ। जातियां उस समय तक नहीं थी। वैदिक काल में

---

7. ऋग्वेद 1.90.6, 1.89.2, 5.51.15, 9.73.1
8. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, 14.7.
9. शब्दकल्पद्रुम, राजाराधाकान्तदेव, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

लोक जीवन जाति-पाति तथा ऊँच-निम्न की भावना से परे था। केवल सनातन जीवन पद्धति के तत्त्वों को आत्मसात करके जीवन जीने एवं सनातन धर्म का पालन करने वाला ही धार्मिक कहलाता था।

## 4.5 हिन्दू रीति-रिवाज एवं परम्परा का स्वरूप तथा अभिव्यक्ति

हिन्दुत्व की आधारभूत मान्यताओं एवं परम्पराओं का आधार ऋग्वेद के 'एक सद्, विप्राः बहुधा वदन्ति' तथा 'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः।' स्मृतिवाक्य है। अर्थात् सत्य एक है, किन्तु विद्वान् उसका वर्णन अनेक प्रकार से करते हैं एवं सभी दिशाओं से श्रेष्ठ विचार हमारे सामने आये। इन स्मृतिवाक्यों का संदर्भ हिन्दू सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों के निर्धारण एवं उनकी स्थापना की भूमिका में स्पष्ट देखा जा सकता है। हिन्दू धर्म की परम्परा, रीति-रिवाज एवं उत्सवादि हिन्दू लोक जीवन में अनेकानेक वर्षों की जाँच-परख एवं उसके अभ्यास के परिणामस्वरूप लोक कल्याण एवं समाज के अनुपालन के लिए प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ हिन्दुस्थान के छः लाख ग्रामों में अभी न्याय देने हेतु जो पंचायत बैठती है, उसमें 'पंच परमेश्वर' की परम्परा को श्रद्धा तथा विश्वास के साथ स्वीकार किया जाता है। यह सभी पंथ एवं समुदाय के लोगों में मान्य है।

हिन्दू के दस तत्त्वों को सामान्य परम्परा एवं रीति-रिवाज के रूप में समाज के मध्य मान्यता प्राप्त हुई, जिसमें धृति (धैर्य), क्षमा, दम (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इंद्रियों को वश में करना), ज्ञान, विद्या, सत्य और अक्रोध (अहिंसा) जैसे तत्त्वों को लोक जीवन की परम्पराओं का आधार माना गया।[10] इतना ही नहीं इन्हीं तत्त्वों के आधार पर रीति-रिवाज, त्योहार, पर्व, उत्सव एवं धार्मिक तथा आध्यात्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं। हिन्दू जीवन पद्धति पूर्ण वैज्ञानिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक जीवन पद्धति है। इसलिए उक्त तत्त्वों का वैज्ञानिक निरूपण आसानी से स्पष्ट देखा जा सकता है।

10. मनुस्मृति 6/92

## हिन्दू परम्पराएं

हिन्दू चिन्तन में परम्परा से तात्पर्य उन मान्यताओं से है जो सार्वभौमिक हों और जो लोक जीवन को दिशा देने में विधि के रूप में व्यवहृत हों। परम्पराएं पारिवारिक जीवन के साथ-साथ लोक जीवन को संतुलित रखने का अभिकरण रही हैं। बड़ों का आदर करना, नारी का सम्मान एवं रक्षा करना, बच्चों को स्नेह, वृद्धों की देख-रेख, अतिथि देवों भव, असहाय एवं अन्याय पीड़ित को न्याय, दान देने की परम्परा, शिक्षकों को सम्मान, पर्व, त्योहार तथा उत्सव को मिलकर मनाना, पड़ोसी धर्म का निर्वाह करना, पराजित को जीवनदान, असहायों को अभयदान आदि-आदि हमारी परम्पराओं के कुछ प्रमुख उपांग हैं। इन परम्पराओं का उद्देश्य ही है कि मानव एक साथ रहकर आपस में भाईचारा स्थापित करते हुए, एक-दूसरे के स्वाभिमान एवं सम्मान की रक्षा करते हुए ही एक आदर्श तथा समरस समाज की स्थापना करें।

परम्पराओं का हिन्दू समाज में कठोरता से पालन किया जाता है। ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं जिनमें परम्पराओं का पालन लोगों ने अपने हितों को त्यागकर किया हैं ताकि इसकी मर्यादा सुरक्षित रहे एवं अन्य लोगों को भी परम्पराओं का निर्वाह करने के लिए स्व के भावना का त्यागकर समाज हित का कार्य करने की प्रेरणा मिले। भीड़ वाले स्थान पर या बस इत्यादि में वृद्ध पुरुष या स्त्री अथवा किसी भी आयु की महिला को तत्काल स्थान देने की परम्परा समाज सम्वहन की प्रक्रिया का एक अंग है। हिन्दू समाज की विशेषता में हिन्दू परम्पराओं का व्यापक योगदान है। हिन्दू धर्म आधारित परम्पराओं को पालन करने वाला व्यक्ति समाज में श्रद्धा एवं सम्मान का पात्र होता है।

## हिन्दू रीति-रिवाज

हिन्दू लोक जीवन में रीति-रिवाज विभिन्न स्थलों पर प्रकृति की विविधता के अनुरूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। वस्त्रों की प्रकृति, उसके धारण करने के नियम, आहार-विहार, सामाजिक शिष्टाचार की प्रविधि, धार्मिक कृत्यों की प्रविधि और दिन प्रतिदिन के जीवन

की सामान्य मान्यताएं ही रीति-रिवाज के कुछ प्रमुख उपादान हैं। हिन्दू जीवन शैली में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन रीति-रिवाजों का अनुसरण वंशानुक्रम और लोक जीवन की मर्यादाओं के अनुपालन में स्वतः करने के लिए तत्पर रहते हैं। यही हमारी प्रकृति जन्य हिन्दू संस्कृति की मूल विशेषता है।

हिन्दू रीति-रिवाजों की चिन्तन प्रक्रिया में यह बात स्पष्ट होती है कि इस प्रकार की रीति-रिवाजों की शैली पाश्चात्य जगत में विकसित नहीं हुई है जिसका मूल कारण उसकी भौतिकवादी सोच रही है।[11] वस्तुतः यूरोपीय और अन्य पाश्चात्य जगत का समाज विगत कुछ सौ वर्षों के ही विकास का प्रतिफल है, जबकि हिन्दू जीवन पद्धति पूर्णतः प्राकृतिक एवं अति प्राचीनतम है जिसके समय का निर्धारण भी अभी आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञान नहीं किया जा सका है।

## हिन्दू पर्व

हिन्दू लोक जीवन में पर्व का कारक खगोलीय घटनाओं पर आधारित है। ब्रह्माण्ड में अवस्थित अनेकानेक ग्रहों और उनकी स्थिति का पृथ्वी के ऊपर होने वाले प्रभाव, उन ग्रहों की स्थिति में परिवर्तन, चन्द्र ग्रहण, सूर्यग्रहण, संक्रान्ति, खग्रास इत्यादि को ध्यान में रखकर उनकी शान्ति तथा प्रभाव निवारण हेतु उनकी अर्चना एवं अभ्यर्थना से है।[12] खगोलीय एवं ज्योतिष की गणनाओं के आधार पर ग्रहों इत्यादि की घटनाओं एवं उनके कारणों को आसानी से जाना जाता है। हिन्दू लोक जीवन में ऐसी घटनाओं को सामूहिक रूप से पूजा पाठ एवं हर्षोल्लास के साथ पवित्रता और धार्मिक भाव से अभिव्यक्त किया जाता है। पर्व का कारण खगोलीय कारण ही होता है। उदाहरणार्थ मकर संक्रान्ति पर्व प्रति वर्ष चौदह जनवरी को ब्रह्माण्ड में सूर्य की विशेष स्थिति में आने पर लौकिक जीवन को प्रकृति की परिवर्तित क्रियाओं के अनुक्रम में व्यवस्थित करने के रूप

11. Runcimen, W.G. class, status and power? In social stratification by J.A. Jackson. pp 25-61
12. Isaacs, H.R., Idols of the tribe, Harper & Row, Newyark, 1975.

में मान्यता है। इस पर्व को संक्रान्ति, पोंगल, खिचड़ी इत्यादि नामों से विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न ढंग से उल्लास के साथ मनाया जाता है। इसी प्रकार सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, महाशिवरात्रि, शरद पूर्णिमा, गुरु पूर्णिमा, गणेश चौथ, वर्ष प्रतिपदा इत्यादि पर्वों की मान्यता हिन्दू लोक जीवन में स्थापित है।

## हिन्दू त्योहार

हिन्दू लोक जीवन में पौराणिक घटनाओं की विशिष्ट महत्ता रही है। त्योहारों के प्रति हिन्दुओं का लगाव यह इंगित करता है कि प्रकृति प्रधान गुणों को वे किस प्रकार पौराणिक घटनाओं से सम्बद्ध कर अपने जीवन को व्यवस्थित करते हैं। उदाहरणार्थ दीपावली का त्योहार मनाने के पीछे चौदह वर्ष के वनवास के उपरान्त भगवान श्रीराम के गृह वापसी की प्रसन्नता के रूप में दीपों को प्रज्वलित कर हर्षोल्लास व्यक्त करते हुए अयोध्यावासियों द्वारा मनाया गई कथा है। इस प्रकार हम स्पष्ट देख सकते हैं कि इस घटना की निरन्तरता में आज भी प्रतिवर्ष हिन्दू समाज एक निश्चित तिथि पर दीपावली का त्योहार मनाता है। उसी प्रकार भगवान श्रीराम द्वारा रावण वध किए जाने पर विजय दिवस के रूप में दशहरा तिथि को त्योहार के रूप में मनाया जाता है। इस प्रकार हिन्दू समाज में ऐसे कई त्योहार हैं जो जीवन के मूलभूत एवं सार्वभौमिक गुणों को जीवन्त बनाए रखने के लिए पौराणिक कथाओं की विशिष्ट तिथि अथवा घटनाओं को स्मृति के रूप में मनाते हैं, जैसे– होली, कृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, कजरी, रक्षाबन्धन इत्यादि।

## हिन्दू उत्सव

हिन्दू जीवन दर्शन में उत्सव मनाना व्यक्ति के अपने निजी जीवन की, खुशियों एवं प्रसन्नताओं की अभिव्यक्ति है। जन्मोत्सव, तिलकोत्सव, विवाहोत्सव इत्यादि को प्रत्येक हिन्दू अपनी क्षमता के अनुरूप खर्च इत्यादि करके उत्सव के रूप में मनाते हैं। आज व्यक्ति अपने जन्म तिथि को जन्मोत्सव, विवाह की तिथि को विवाह की वर्षगांठ, नौकरी पाने की खुशी या प्रोन्नति की खुशी को उत्सव के

रूप में मनाता है। आज आर्थिक रूप से सम्पन्न प्रत्येक व्यक्ति पुत्रादि की प्राप्ति पर उत्सव के साथ अपनी खुशियां, प्रदर्शित करना चाहता है। किन्तु हिन्दू जीवन जीने की पद्धति के अनुसार सादगी के साथ ईश्वर के स्मरण एवं पूजादि कार्यों के साथ ही अपनी प्रसन्नता में आस-पास-पड़ोस एवं रिश्ते-नातेदारों के साथ परम्परा तथा रीति-रिवाज के अनुसार खान-पान करना यही उत्सव का स्वरूप है। जीवन के विभिन्न अवसरों पर उत्पन्न होने वाली प्रसन्नताओं की अभिव्यक्ति सामान्यतः उत्सव के रूप में दिखलाई देती है। आधुनिक समाज में राष्ट्रीय प्रघटना के अवसर को भी उत्सव के रूप में मनाए जाते हैं। इनमें आज हिन्दुस्थान में 15 अगस्त, स्वतन्त्रता दिवस और 26 जनवरी, गणतन्त्र दिवस के रूप में प्रमुख राष्ट्रीय उत्सव हैं।

### हिन्दू धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठान

हिन्दू लोक जीवन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठानों की एक लम्बी श्रृंखला पाई जाती है। वैदिक और पौराणिक मान्यताओं के दार्शनिक भावपक्ष को उद्बोधित करने वाली विभिन्न धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन हिन्दुओं द्वारा किया जाता है, जैसे-नवरात्रि की पूजा, काली पूजा, गणेश पूजा, शिवरात्रि अनुष्ठान, रूद्र महायज्ञ, दस महाविद्याओं का अलग-अलग अनुष्ठान, शतचण्डी, लक्षचण्डी एवं कोटिचण्डी यज्ञ, महामृत्युन्जय अनुष्ठान, सत्यनारायण कथा आदि व्यक्तिहित, लोकहित एवं राष्ट्रहित के लिए किए जाने वाले अनेकानेक यज्ञ, धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठान हैं।

### 4.6 हिन्दू संस्कृति में सामाजिक समरसता

हिन्दू धर्म का आधार चार वेद है। वेद की कुल 1131 शाखाएं हैं।[13] सम्पूर्ण वेद भेद-भाव और वर्तमान कुरीतियों से रहित हैं। वेद में 'जातिवाद' ही नहीं, बल्कि 'जाति' शब्द नहीं है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के सातवें अनुवाक के नब्बे क्रम संख्या के सूक्त को पुरुष सूक्त कहते हैं। पुरुष सूक्त में सोलह ऋचाएं (श्लोक) हैं। ऋचा संख्या बारह में मात्र एक जगह वर्ण का उल्लेख है। जहां तक

13. वेद कथांक, कल्याण, 1999, पृष्ट 381-396

वर्ण व्यवस्था की बात है तो वह सम्पूर्ण वेद में कहीं नहीं है। उस ऋचा के अन्तर्गत मुख से ब्राह्मंण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघे से वैश्यं एवं चरण से शूद्र का उल्लेख किया गया है।[14] पुनः एक ऋचा बाद यानी ऋचा संख्या चौदह में मुख से स्वर्ग, नाभि से अन्तरिक्ष एवं चरण से पृथ्वी दर्शाया गया है।[15] मुख़मासि ब्राह्मण इससे प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि का मंतव्य शूद्रों का अपमान करना नहीं रहा होगा। वेद स्वयंभू हैं किन्तु इनका संकलन महर्षि व्यास ने किया था, इसीलिए उन्हें वेदव्यास भी कहते हैं। शूद्र शब्द की वर्तमान व्याख्या के अनुसार वे स्वयं शूद्र ऋषि थे।

कल्पना किया जाय कि महर्षि बाल्मीकि अगर रामायण न लिखते तो भगवान श्रीराम को कौन जानता? इसी प्रकार महर्षि वेदव्यास श्रीमद्भागवत नहीं लिखते तो भगवान श्रीकृष्ण को कौन जानता? श्री राम एवं श्री कृष्ण इस देश की आध्यात्मिक धरोहर हैं जिन्हें इन्ही शूद्र ऋषियों ने जन-जन में स्थापित किया है। इसी प्रकार पौराणिक कथाओं में क्षत्रिय वर्ण की कन्या सीता एवं द्रौपदी के स्वयंवरों में सभी वर्ण के राजाओं एवं राजकुमारों ने भाग लिया था। रावण तो ब्राह्मण था तथा अर्जुन भी स्वयं ब्राह्मण वेश में शामिल हुआ। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति में कुम्भ स्नान को अत्यन्त पवित्र तथा महत्त्वपूर्ण माना गया है। चारों कुम्भ स्नान स्थलों पर कहीं भी स्नान घाट में भेद-भाव अथवा शुद्रों के लिए छुआछूत इत्यादि की व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। वर्ण व्यवस्था अथवा भेद भाव तात्कालीन समाज में नहीं था। हिन्दू विरोधी ताकतों, मुगलों, अंग्रेजों, कम्युनिस्ट, मुस्लिमलीग एवं ईसाई मिशनरियों ने हिन्दू धर्म के संगठन को साहित्य और अंन्य क्रियाकलापों द्वारा अनेक प्रकार के जहर घोल कर नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयास किया।

---

14. ब्राहम्णोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत। उरूतदस्ययद वैश्यः पद्भ्याम् शुद्रो अजायत। ऋग्वेद 8.7.16 सूक्त 90.
15. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्ततः। पदाभ्याम् भूमिःदिर्शः, श्रोत्रात्तयालोकां अकल्पयन्।। ऋग्वेद 8.7.16, सूक्त 90.

## एक सामान्य प्राकृतिक प्रक्रिया

हिन्दू दर्शन पर आधारित सामाजिक समरसता की प्रक्रिया को एक सामान्य प्राकृतिक प्रक्रिया स्वीकार किया जा सकता है। सामाजिक समरसता से हमारा तात्पर्य सम्पूर्ण मानव प्रजाति के लिए एक सामाजिक नियम, मान्यता तथा मानदण्ड से है। सामाजिक नियमों, मान्यताओं एवं व्यावहारिक जीवन को जीने के एक समान मानदण्डों को यदि समस्त मानवीय समूह अंगीकार कर लें तो विश्व समुदाय में मौलिक हिन्दू संस्कृति के प्राणभूत विचार विश्वबंधुत्व की वैचारिकी स्वयं ही फलीभूत हो जाएगी। सामाजिक समरसता को सुनिश्चित करने वाले प्राकृतिक नियमों का अनुपालन जब सभी लोगों द्वारा के आधार पर किया जाता है तो जिस विशिष्ट संस्कृति की हम कल्पना कर सकते हैं, वह हिन्दू संस्कृति ही होगी। हिन्दू संस्कृति का अवलम्बन कर मानव समुदाय एक समान व्यवहार एवं एक-दूसरे को मान्य जीवन शैली का अनुपालन करेगा।

## सर्वमान्य स्तरीकरण

प्रत्येक समाज के संचालन के लिए सामाजिक नियमों के साथ-साथ कुछ आर्थिक नियम भी प्रभावी होते हैं। इन नियमों का प्रतिपादन सामान्यतः समाज विशेष की आवश्यकता एवं ज्ञान के विकास के स्तरों पर निर्भर होता है। भारतीय हिन्दू संस्कृति में सामाजिक संस्तरण के जो आर्थिक नियम विद्यमान हैं, उनका स्वरूप सार्वभौमिक होते हुए भी समरसतापूर्ण रहा है।[16] सामाजिक स्तरीकरण की ही भाँति आर्थिक स्तरीकरण प्रत्येक समाज की व्यवस्था के संचालन का एक आवश्यक भाग है। आर्थिक संस्तरण के माध्यम से समाज में वर्गों का सृजन कार्य विशेष के संपादन के लिए किया जाता है, लेकिन इस संस्तरण का अस्तित्व सम्बन्धित कार्य के सम्पादन तक ही सीमित होना चाहिए, ज्योंहि व्यक्ति अपनी आर्थिक क्रियाओं का सम्पादन कर समाज के लिए आवश्यक सामाजिक अंतःक्रियाओं में संलिप्त होता है तो उसे अपने व्यवहार में भिन्न आर्थिक क्रियाओं को सम्पादित करने वाले सदस्यों के प्रति समरसता का ही व्यवहार करना चाहिए, जिस प्रकार एक परिवार के विभिन्न सदस्य आपस में व्यवहार करते हैं।

16. ऋग्वेद 8.22.6, वपन्तेष दुहन्ता मनुषाय दस्रा, 1.117.21, ऋग्वेद 8.91.5

## जाति व्यवस्था अर्थहीन

हिन्दू दर्शन में जाति व्यवस्था वर्तमान अर्थबोध के संदर्भ में पूर्णतः औचित्यहीन है। आधुनिक भारतीय समाज की सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं का स्वरूप बदलते हुए परिदृश्य में आवश्यकतानुसार रूपान्तरित हो चुका है। आधुनिक हिन्दू समाज जातियों के जिस जाल में फँसा हुआ है, उसकी कोई सार्थकता प्रतीत नहीं होती।[17] जाति सम्बन्धी मान्यताएँ दलित समाज की स्वयं की सीमाओं में भी अमान्य होनी चाहिए। जब तक हजारों भिन्न-भिन्न जातियों में बँटा दलित समाज स्वयं उन जातीय बंधनों से मुक्त नहीं होगा, तब तक उसे अपने से भिन्न वर्ग की जातियों से समरस व्यवहार की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उसे समरसता की वैचारिकी का अनुपालन करते हुए एक बृहद् पारिवारिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए जिसमें सबके लिए भाईचारा एवं बंधुत्व का भाव विद्यमान हो।

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक समरसता की प्रक्रिया में सम्पूर्ण समाज का योगदान आवश्यक है। यदि भारतीय समाज के विभिन्न अंग अलग-अलग व्यवस्थाविहीन होकर कार्य करेंगे तो न तो सामाजिक समरसता का जन्म होगा और न ही सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा ही हो पाएगी। समरसता की प्रक्रिया में जातिभेद एवं ऊँच-निम्न के भाव अत्यन्त घातक हैं। सम्पूर्ण हिन्दू समाज एक परिवार है और परिवार के सदस्यों में भेद-भाव का कोई स्थान नहीं होता। जिस प्रकार प्रत्येक सदस्य अपने निर्धारित कार्यों का अनुपालन करते हुए परिवार के विकास के लिए निरंतर तत्पर रहता है और अपने सम्बन्धों को समरस बनाए रखता है, उसी प्रकार अलग-अलग जातियों में बाँटे गए हिन्दुओं को भी व्यवहार करना चाहिए तभी जातीय बंधन टूट पाएँगें और हम अपनी विरासत को बनाए रखने में सक्षम होंगे।[18]

---

17. See for details, Report fo Communal Award.
18. See for details, Chatterjee, S.K. The Scheduled Caste in India, 1996.

## वेदान्त चिन्तन में समरसता

हिन्दू संस्कृति के संगठनात्मक स्वरूप का विश्लेषण जहाँ यह स्पष्ट करता है कि वेदों में भौतिक उत्कर्ष की उच्चतम सीमा का वर्णन है तो वहीं आध्यात्मिक उत्कर्ष की मर्यादाओं का भी उल्लेख किया गया है। हिन्दू संस्कृति के आधार स्तम्भ वेद के दो विभाग हैं– एक है कर्मकाण्ड तो दूसरा है ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड जहाँ अनुष्ठान विषयक विभाग हैं, वहीं ज्ञानकाण्ड हिन्दू संस्कृति के दार्शनिक उपलब्धियों की अक्षय निधि है। वेद का अधिकांश भाग कर्मकाण्ड से भरा हुआ है, लेकिन जो कुछ भी अल्प भाग दार्शनिक निधि के रूप में उपलब्ध हैं, वह समस्त कर्मकाण्ड का निष्कर्ष संन्नाहित करता है और वहीं वेद के सिद्धान्तों की अंतिम परिणति अथवा वेदान्त है।

प्रकृति की विचित्र लीलाएँ लोक जीवन के दिन–प्रतिदिन के रहस्यों के साथ ज्ञान निर्माण को संपुष्ट करती हैं। प्रकृति की लीलाओं को संचालित करनी वाली परमसत्ता के रहस्यों को ज्ञात कर सनातन संस्कृति ने उसे वेदान्त में परिणत कर रखा है जो आधुनिक मानव समाज के लिए ज्ञान का विशाल भंडार है।

परम वैभव यानी भौतिक उपलब्धि एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष से ही सामाजिक समरसता हिन्दू समाज में सम्भव है। आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं भौतिक उपलब्धि यानी हिन्दू धर्म तत्त्व पर आधारित समरसता की प्रक्रिया को एक सामान्य प्राकृतिक प्रक्रिया कहा जा सकता है, क्योंकि आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं भौतिक उपलब्धि के चिन्तन में सामाजिक भेदभाव निरर्थक है।

दर्शन एवं विज्ञान भेदभाव रहित हैं, इसलिए इन पर आधारित सम्पूर्ण मानव समाज में भेदभाव का कोई औचित्य सिद्ध नहीं होता। हिन्दू संस्कृति के उपांगों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू चिंतन पूर्णरूपेण सामाजिक समरसता से युक्त रहा है। इस संस्कृति में मानवीय मूल्यों की गरिमामय उपस्थिति है जिसे सम्पूर्ण जीवजगत न केवल स्वीकार करता है, अपितु व्यवहृत करने के लिए भी प्रयासरत रहता है।

## देशकाल के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समरसता आवश्यक

वर्तमान सामाजिक संरचना को व्यवस्थित करने के लिए सामाजिक समरसता अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक औद्योगिक विकास ने ज्ञान के आयामों को स्थापित किया है। शारीरिक श्रम के स्थान पर मानसिक श्रम एवं विशेषज्ञता ने सामाजिक व्यवस्था के संचालन के नये प्रतिमानों को स्थापित किया है। विश्व के विकसित राष्ट्रों की उपलब्धियों पर यदि ध्यान दिया जाय तो यह स्वतः स्पष्ट होता है कि मनुष्य ने अपनी मानसिक क्षमता को उच्च श्रेष्ठता प्रदान की है। लेकिन यह श्रेष्ठता भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित है।

ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक स्वरूप में हिन्दुस्थान की स्थिति एवं भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विकासशील देशों का अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्व भारत के हाथ में है। विदेशों में दिन-प्रतिदिन हिन्दुस्थान की छवि खराब करने का प्रयास किया जा रहा है। सामाजिक भेदभाव एवं सांस्कृतिक कुरीतियों की चर्चा से इस देश की छवि को गंभीर धक्का लग रहा है। वर्तमान में संवैधानिक आधार पर भी छुआछूत को धारा 17 के अनुसार पूर्ण उन्मूलन किया जा चुका है।[19] सामाजिक समरसता हेतु सम्पूर्ण देश चिन्तित है। आन्ध्र, कर्नाटक एवं तमिलनाडु में सामाजिक भेदभाव, छुआछूत, दो ग्लास पद्धति, दलितों को सामाजिक व्यवहार में अलग-थलग मानना वर्तमान स्थिति की लज्जाजनक तस्वीर है। सामाजिक समरसता का स्थापित होना हिन्दुस्थान के लिए तत्काल आवश्यक है।

## 4.7 हिन्दू लोक जीवन में प्राकृतिक संवेदनाएँ

हिन्दू लोक जीवन प्रकृति का पोषक एवं उससे पोषित रहा है। प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त निरन्तरता तथा लयबद्ध गतिशीलता पर आधारित है और हिन्दू लोक जीवन भी इसी सिद्धान्त का पोषक रहा है, इसीलिए हिन्दू लोक जीवन को प्रकृति-धर्मा कहा जाता है। प्रकृति संवेदनशील है, अतएवं हिन्दू लोक जीवन भी संवेदनाओं से पूर्णरूपेण पोषित है। जीवन के हितपोषण के लिए प्रकृति का पोषण

---

19. See for details, Constitution of India, Articles 17.

आवश्यक है। प्रकृति का पोषण यदि कठिन हो तो भी उसके संरक्षण की नितान्त आवश्यकता होती है। प्रकृति को संचित एवं सुरक्षित रखना हिन्दू लोक जीवन का मूल है।

हिन्दू लोक जीवन प्राकृतिक मानकों पर आधारित सामाजिक व्यवस्थाओं का सिद्धान्त है। उसके समस्त उपांग प्राकृतिक नियमों का अनुपालन करते हैं और अपनी सनातन आध्यात्मिक ऊर्जा को बनाये रखते हैं। प्रकृति प्रदत्त हिन्दू लोक जीवन ही हिन्दू संस्कृति का आधार है। प्रकृति में जिस प्रकार से समयानुसार परिवर्तन होता रहता है, हिन्दू लोक जीवन में भी परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन का ही परिणाम चिरपुरातन से चिरनवीन प्रकृति और उसी अनुक्रम में चिरनिद्रा (मृत्यु) एवं चिरंजीवन (अमर) है। वही पर्व, त्योहार, आदि प्रत्येक बार आते जाते रहते हैं। ये सभी प्रकृति की सहधार्मिता का ही तो अनुसरण करते हैं।

प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ किया जाता है तो हृदय संवेदनशील हो जाता है। सामने से हरा चारा हटा लेने पर कोई भी पशु कातर दृष्टि से देखता है। सिंह-शावक को छू लेने या गोंद में लेकर खेलने की भूल जोखिम भरा होती है, क्योंकि प्रकृति का वह जीव संवेदनशील होता है। आत्मीयता की संवेदना का महत्त्वपूर्ण उदाहरण मादा बन्दर मृत बन्दर के बच्चे के शव को तब तक लेकर घूमती रहती है, जब तक कि वह दुर्गन्ध नहीं करने लगता है। एक जड़ को काट देने पर वृक्ष के पत्ते और टहनी तक सूख जाते हैं। छालों के उतारे जाने पर वृक्षों को आंसू बहाते भी देखा जा सकता है। क्या मानवीय संवेदनाएं हिन्दू लोक जीवन में ठीक इसी प्रकार से दिखलाई नहीं देती हैं? इसका स्पष्ट उत्तर प्रकृति के प्रत्यक्ष आपदाओं के रूप में मानव को मिल जाता है। झील को तोड़ना अथवा नदी को बांधना, पर्वत के चट्टानों को बारूद से उड़ाना और समुंद्र के सीने पर अठखेलियां करना बहुत अच्छा लगता है, परन्तु प्रकृति के साथ भयानक छेड़छाड़ जब अपनी संवेदनाओं को प्रतिशोध के रूप में प्रस्तुत करता है तो ज्वालामुखी के गर्त में, सुनामी लहरों के आक्रोश में एवं भूकम्प के भयानक कम्पन में हजारों हजार जीवन की भेंट चढ़ जाती है। अतः प्राकृतिक संवेदनाओं का उपहास अथवा अपमान

नहीं करना चाहिए। लोक जीवन के लिए यह कार्य कभी भयानक अभिशाप बन सकता है।

संसार में इस समय पर्याप्त अव्यवस्था और अशांति का दृश्य दिखलाई देता है। ऐसा इसलिए है कि वर्तमान मानव समाज का प्रकृति के साथ सामंजस्य नहीं है। प्राकृतिक ऋतुचर्या के विपरीत मानव जीवन की अपनी जीवनचर्याएं बन चुकी हैं। वनों को निरीह जीवों की तरह काटा जा रहा है जिससे धरती की नमी सूखकर जलस्तर को बहुत नीचे करती जा रही है। किसी दिन जल के लिए त्राहि-त्राहि होगा।

आज प्राकृतिक संवेदनाओं की उपेक्षा का ही कारण है कि यह मानव मृत्यु की अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद, दुबारा जीवित नहीं किया जा सकता है, परन्तु जिस समय मृतसंजीवनी जड़ी-बूटियों के साथ छेड़छाड़ और उपेक्षात्मक व्यवहार नहीं किया जाता था, मृत्यु के आगोश में सो चुके लोगों को भी उस जड़ के एक बूंद रस से उसे पुनः जीवित किया जा सकता। वर्तमान में प्रकृति के आरोग्यदायी संवेदनाओं को महत्त्व दिया जा रहा है और हर्बल उत्पादों के लिए योजनाएं तक बन रही हैं, किन्तु अभी भी प्राकृतिक औषधियों एवं जड़ी-बूटियों की उपेक्षा, विनाश-लीला और उनका दुरूपयोग निरन्तर जारी है। प्राकृतिक संवेदनाओं पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

प्राकृतिक संवेदनाओं को समग्र एवं विराट की भी संज्ञा प्रदान की गई है। ठीक उसी प्रकार से हिन्दू लोक जीवन को भी ब्रह्म का अंश माना गया है। हिन्दू दर्शन पर आधारित हिन्दू जीवन पद्धति प्राकृतिक कारक यथा सत्, ऋत् और ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार करती हैं। सत् का अर्थ है अस्तित्व यानी जो देखकर या आभाष करके संज्ञानता में लिया जा सके। इस प्रकार प्रकृति ही सत् है। प्रकृति की संवेदना भी सत् है। मानव शरीर सत् है। लोक जीवन भी सत् है। संवेदना यदि होगी तो वह सत् ही होगी अथवा नहीं होगी। बड़वानल से धू-धूकर जलते जंगलों के जीव-जन्तुओं का चीत्कार यदि सुनायी दे तो उसको अस्वीकार कर देना ही संवेदनाविहीनता है।

ऋत् का अर्थ ह प्राकृतिक नियमन यादि प्रकृति के सम्पूर्ण प्राकृतिक नियम को ऋत् कहा जा सकता है। ऋत् से ऋतु भी बना है। ऋतुचक्र के नियमन द्वारा ही वर्षा, गर्मी और सर्दी होती है। नियम के अनुसार ही ग्रीष्म ऋतु में जब धूप तपने लगती है, गोल्डमोहर, बेला, चमेली, मदार आदि के फूल खिलने लगते हैं। वर्षा आते ही शाक-सब्जियों का अकाल पड़ जाता है। वही शाक-सब्जियां जाड़े के दिनों में इतनी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती हैं कि उनको कौड़ियों के मोल कोई नहीं पूछता है। उनको यदि हम चाहें कि प्रकृति के नियम के विपरीत गर्मी और वर्षा ऋतुओं में उगा लें तो यह सर्वथा असफल प्रयास होगा। इसी प्रकार हिन्दू लोक जीवन के क्रिया-कलाप भी प्राकृतिक संवेदनाओं अथवा प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही सम्पादित होते हैं। प्राकृतिक संवेदनाएं मानव को यह संदेश देती हैं कि प्रकृति के मध्य किसी को विशेषाधिकार नहीं।

हिन्दू लोक जीवन की संवेदनशीलता किसी भी सामाजिक क्रिया अथवा घटनाओं के प्रति सहजभाव से आकृष्ट हो जाया करती है। यही कारण है कि अन्य मानव समूहों की अपेक्षा हिन्दुओं ने प्रकृति के शाश्वत गुणों द्धदया, करूणा एवं वात्सल्यद्ध अधिक सजगता से जांचा-परखा और उन्हें अपने सामाजिक क्रिया-कलापों को आधार बनाकर एक विशिष्ट जीवन शैली के लिए आत्मसात किया। इसी जीवन शैली को कालान्तर में हिन्दू लोक जीवन की शैली कहा गया। इसी जीवन शैली में करुणा, दया, वात्सल्य, रौद्रादि रसों को प्रस्फुटित होते देखा जा सकता है। हिन्दू लोक जीवन का यह अद्भुत संयोग अन्यत्र दुर्लभ है। प्राकृतिक संवेदनाओं के साथ कहां करुणा करनी है, कहां क्रोध करना है, हिन्दू लोक जीवन में समयानुसार स्वतः प्रकट हो जाया करता है। उसके लिए किसी कृत्रिम उपाय अथवा प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसा इसलिए हो जाता है कि हिन्दू लोक जीवन प्राकृतिक संवेदनाओं को समझ सकने में आरम्भ से ही सक्षम है। हिन्दू जीवन पद्धति से जीवन जीने वाले मानव का इन्हीं सिद्धान्तों पर अभ्यास हो जाता है जो समय-समय पर स्वतः व्यवहारों से प्रकट होता है।

## 4.8 हिन्दू वैश्विक वैचारिकी में मानव

हिन्दू की अवधारणात्मक व्याख्या, उसकी सृजनात्मकता और उसमें निहित अर्थबोध के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि महामानव की चैतन्य अनुभूति का प्रत्यक्ष स्वरूप हिन्दू है जिसमें जीव-जगत के प्रति करुणा, दया, वात्सल्य, कल्याण, प्रेमशक्ति एवं आस्था स्वभूत है। यही मानवता की चाह का प्रथम प्रत्यक्ष और मानवीय संवेदनाओं को चेतना के स्तर पर प्रारूपबद्ध करने का सार्थक प्रयास है। मानववाद की दिशा में, सनातन काल से किए जा रहे प्रयासों को व्यवहार जगत में स्वीकार्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रकृति और परा का समन्वित दर्शन एवं ज्ञान सन्निहित हों। इसलिए हम स्पष्टतः कह सकते हैं, वह हिन्दुवाद के ही प्रारूप का प्रमाण है।

वास्तव में हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू धर्म को कुछ इस प्रकार विवादास्पद बना दिया गया कि इसके महत्त्व तथा विशेषता का लोप हो गया। अवैज्ञानिक एवं अतार्किक विषयवस्तुओं के ऊपर आधारित कुछ रीति-रिवाज जाने-अनजाने कब और कैसे हिन्दू संस्कृति में प्रविष्ट होकर, इसके मानदण्ड को प्रभावित करने लगे। अगर हिन्दू वैचारिकी से कुछ अवैज्ञानिक और अतार्किक बिन्दुओं को हटा दिया जाए तो हिन्दू चिन्तन की मर्यादा एवं विशेषता में व्यापक वृद्धि होगी। 'हिन्दू दर्शन' का तात्पर्य भौतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति है, इसलिए पृथ्वी पर प्रत्येक प्राणी सर्वप्रथम हिन्दू है। 'हिन्दू दर्शन' (वह दर्शन जिसे सभी मानें) और 'हिन्दू का दर्शन' (केवल हिन्दू जिसे स्वीकारता हो) में व्यापक अन्तर है। इसी प्रकार 'हिन्दू संगठन' और 'हिन्दुओं के संगठन' में भी आधारभूत अन्तर है। हिन्दुस्थान में केवल हिन्दू रहें यह सम्भव नहीं है किन्तु जो भी यहां रहें उन्हे 'हिन्दू दर्शन' (यानी प्रकृति एवं अध्यात्म का दर्शन) मानना ही होगा। यही हिदू भूमि की विशेषता भी है।

मानव प्रकृति और मानव संस्कृति के विभिन्न रूपों में अनुकूलन होते हुए भी एकात्म तथा अलग भाव का बोध होता है। जिस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एकीकरण मानव के

रूप में परिलक्षित है। उसी प्रकार किसी देश की जन शक्ति उस देश रूपी मानव शरीर एवं धर्म अथवा संस्कृति उस देश रूपी मानव शरीर की आत्मा है। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति विभिन्नता में भी ऐक्य भाव में है। यही हिन्दू संस्कृति की विशेषता है। अध्यात्म और विज्ञान की अवधारणा को आत्मसात करके जीवन जीने वाला मानव चाहे विश्व में कहीं भी निवास करे वह हिन्दू है। अव्यय भाव में स्थित इस प्रकृति का उपभोग करते हुए उसकी सुरक्षा के प्रति सतक मानव की मानसिकता ही हिन्दू वैश्विक चिन्तन का आधार है और यही वैश्विक चिन्तन में मानव की भूमिका का वास्तविक ध्येय है।

□□□□□

# अध्याय-5

# हिन्दू लोक जीवन का आर्थिक दर्शन

हिन्दू लोक जीवन का आर्थिक सिद्धान्त धर्म पर आधारित आर्थिक चिन्तन से अभिप्रेरित है जिसका मुख्य लक्ष्य कल्याणकारी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करना है। विगत दशकों में पश्चिमी देशों की क्रान्तियों का यह मानना था कि मानव समाज के कल्याण के लिए निमित्त धन-धरती का बराबरी में बटवारा हो जाना चाहिए, जो कदापि सम्भव नहीं है। हिन्दू संस्कृति का कल्याणकारी आर्थिक दर्शन इस नीति को अस्वीकार करता है। हिन्दू राज्य व्यवस्था में सम्पन्न व्यक्तियों का धन छीन कर विपन्नों में बाँट साम्यता लाने के प्रयास का पक्षधर नहीं अपितु गरीब तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को राज्य की ओर से आश्रय देने का पक्षधर है।

हिन्दू धर्म राज्य के सिद्धान्त के आधार पर ऐसा माना गया है कि एक धर्म राज्य (धर्म द्वारा प्रशसित) देश में समाजिक समरसता हेतु निःशुल्क न्याय, निःशुल्क सुरक्षा, निःशुल्क शिक्षा एवं निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था का दायित्व होता है। हिन्दू लोक जीवन में हिन्दू अवधारणा पर पोषित कल्याणकारी आर्थिक दर्शन का यही प्रारूप है। इस अध्याय में हिन्दू संस्कृति का आध्यात्मिक आर्थिक दर्शन, हिन्दू राष्ट्र का स्वदेशी दर्शन, अवधारणा, महत्त्व एवं स्वदेशी संस्कृति पर विश्वव्यापी प्रहार को रोकने हेतु प्रतिवेदन पर आधारित विषयों को अवगाहित किया गया है।

## 5.1 हिन्दू संस्कृति का आध्यात्मिक आर्थिक दर्शन

आध्यात्मिक ज्ञान का अभिप्राय सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान चिन्तन से लिया जाता है। जबकि भौतिक ज्ञान स्थूल ज्ञान है जिसे उपकरणों एवं प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। हिन्दू संस्कृत का आधार प्रकृति है। इसलिए प्रकृति की अन्तर्निहित क्रियाएं एवं उसके बाहय स्वरूप पर आधारित हिन्दू

संस्कृति का यह पक्ष स्थूल होता है। हिन्दू संस्कृति का दूसरा पक्ष आध्यात्म पर आधारित होता है, इसलिए इसके अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक तथ्य का मूलाधार आध्यात्म पर आधारित होता है।

हिन्दू लोक जीवन में व्यवहृत आर्थिक सिद्धान्त का भी आधार आध्यात्म ही है। हिन्दू जीवन पद्धति प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक स्थान एवं सदैव कल्याणकारी है, क्योंकि उसके पार्श्व में यही आध्यात्मिक शक्ति सर्वदा विद्यमान है। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत अवस्थित आर्थिक दर्शन का भी आधार आध्यात्मिक चिन्तन ही है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना अलग चेहरा, चाल-चलन एवं चरित्र होता है। वैसे ही प्रत्येक संस्कृति एवं उस पर आधारित सभ्यता की अपनी अलग पहचान है। हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता की पहचान इसके आध्यात्मिक भाव से है। इसलिए हिन्दू संस्कृति के प्रत्येक पक्ष का आधार आध्यात्म भाव आधारित है। हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू जीवन पद्धति, हिन्दू ज्ञान, हिन्दू विज्ञान, हिन्दू लोक जीवन, हिन्दू लोक जीवन का आर्थिक चिन्तन, हिन्दू लोक जीवन का राजनैतिक दर्शन इत्यादि सबका आधार अध्यात्म ही है।

संसार में अर्थ चिन्तन के अनेकानेक स्वरूप प्राप्त है—जैसे, पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था, साम्यवादी अर्थव्यवस्था, कल्याणकारी अर्थव्यवस्था इत्यादि उसी प्रकार हिन्दू लोक जीवन में हिन्दू धर्म पर आधारित जो अर्थ चिन्तन था, उसे आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था का स्वरूप प्राप्त था। पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में आय का स्वामित्व व्यक्ति को प्राप्त होता है और साम्यवादी अर्थ व्यवस्था में आय का स्वामित्व राज्य का होता है, किन्तु आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था में आय का स्वामित्व न तो व्यक्ति को न ही राज्य को बल्कि आय का स्वामी ईश्वर को मानकर उसके प्रतिनिधि के रूप में व्यक्ति द्वारा धन का संरक्षण, उपभोग एवं समाजिक क्रियाकलापों में उपयोग किया जाता है। हिन्दुओं द्वारा सर्वदा सम्पत्ति को ईश्वर का उपहार एवं उसके द्वारा प्रदत्त असीम कृपा का द्योतक माना जाता है। इसलिए सम्पत्ति अथवा धन का उपयोग विनम्रता के साथ स्वयं एवं समाज के लिए किया जाता है। जब उपयोग अथवा उपभोग हेतु मन में आध्यात्मिक भाव रहता है तो उसके लिए प्रयास यानी धनार्जन का

भी भाव अतीव पवित्र एवं लोक जीवन के अनुरूप होता है। यही कारण है कि हिन्दू जीवन पद्धति के माध्यम से मानव अस्तित्व की निरन्तरता एवं गतिशीलता बनी रही है एवं प्रकृति तथा जीव-जन्तुओं का पूर्ण संरक्षण बना रहता है।

आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था चिन्तन प्रारम्भ से ही सनातन धर्म अथवा हिन्दू धर्म में एक विशेषता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए हिन्दुओं द्वारा प्रकृति एवं जीव-जन्तुओं का सुरक्षित तथा संरक्षित करने हेतु उन्हें पूज्य मानकर बड़ी श्रद्धा के साथ उनकी कृपा प्राप्त की जाती रही है। आज पर्यावरण असन्तुलन एवं प्रदूषण की भयानक समस्या का समाधान दार्शनिकों, विद्वानों एवं वैज्ञानिकों को अप्राप्त है। आधुनिक विज्ञान का आधार मात्र भौतिकवादी चिन्तन होने से इस भयानक स्थिति का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार मानव तथा समाज के सम्बन्धित विषयों का आधार भी केवलं भौतिकता के इर्द-गिर्द रहने के कारण यह भी मानव कल्याण से वंचित ही नहीं बल्कि मानव एवं प्रकृति के लिए चिंताजनक है। आज आवश्यकता है कि हिन्दू संस्कृति एवं जीवन पद्धति के आध्यात्मिक पक्ष को संसार स्वीकार करे। विश्व के समक्ष समाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, प्राकृति इत्यादि विषयों का आधार आध्यात्म को बनाकर आध्यात्मिक एवं भौतिक पक्षों का संन्तुलन बनाते हुए जीवन जीने के प्रत्येक पक्षों का अनुशीलन करना चाहिए।

## 5.2 हिन्दू दर्शन में स्वहित चिन्तन की सीमा

हिन्दू भाव सामान्य रूप से आध्यात्ममय होते हुए भी प्रकृति के संचय एवं सुरक्षा की पोषक है। अर्थव्यवस्था में सिद्धान्ततः व्यक्तिगत लाभ को महत्त्व देना हांता है, किन्तु हिन्दू अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त में स्वयं के हित की सीमा सामाजिक हित के प्रारम्भ तक ही निर्धारित है। हिन्दू आर्थिक दर्शन में स्वहित के कारण यदि समाज का हित बाधित हो रहा हो तो स्वहित का परित्याग कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार समुदाय का हित राष्ट्रहित में अवरोधक हो तो राष्ट्रहित को वरीयता दी जानी चाहिए। इसी सिद्धान्त पर मुख्यरूप से हिन्दुत्व की कल्याणकारी अर्थव्यवस्था आधारित है।[1] हिन्दू लोक

1. त्यजेदेकं कुलस्पर्धि ग्रामरूपार्थे कुलं त्यजेत। कुलं जनपदस्यार्थे सकलं त्यजेत्। – विदुरनीति

जीवन में जीवन यापन के साथ समाज सेवा की भावना सर्वोपरि माना गया है। यही कारण है कि हमारे जीवन यापन के क्षेत्र में सम्पूर्ण उपादान समाज सेवान्मुख है। उदाहरण हेतु शिल्प कार्य, सिद्ध चिकित्सा कार्य, सिद्ध संगीत, ज्योतिष, कृषि, वास्तु, शिल्प इत्यादि इन कार्यों से मानव अपना जीविकोपार्जन तो करता था, किन्तु इससे समाज को भी लाभ था।

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राचीन तत्त्वों में भारतीय मूल विद्याएं (आगम-निगम, षड्दर्शन, योगादि, संस्कृत एवं ज्योतिष) भारतीय लोक कलाएं (सिद्ध संगीत, शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य, लोक गायन, वादन तथा नृत्य), सिद्ध पद्धतियों का मूल सिद्धान्त (कृषि, चिकित्सा तथा वास्तु) एवं तकनीकी (गृह निर्माण, रथ निर्माण, उपयोगी औजार इत्यादि) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य था।[2] वास्तव में हिन्दू अर्थ चिन्तन हिन्दू ज्ञान परम्परा का निर्वहन करते हुए प्रकृतिपरक मूल्यों के संरक्षण को दृष्टि में रखते हुए आर्थिक जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करता है, इसीलिए इसे एक समाजहित के कल्याणकारी आर्थिक दर्शन की संज्ञा दी गई है।

## 5.3 हिन्दू धर्म चिन्तन अर्थ चिन्तन से ऊपर

हिन्दू लोक जीवन में मर्यादित अर्थ चिन्तन का आधार हिन्दू धर्म है। पाश्चात्य आर्थिक दर्शन में स्वयं की आवश्यकता एवं उन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन अर्जित करना मूलतः यही आर्थिक चक्र है। किन्तु हिन्दुस्थान में हिन्दू अर्थ चिन्तन की पूर्णता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ में अवस्थित है। चारों पुरुषार्थ आपस में एक दूसरे से पूर्णरूपेण अन्तःसम्बन्धित है। इसलिए 'अर्थ' चिन्तन का आधार काम और मोक्ष के साथ धर्म भी है। बिना धर्म के अर्थ चिन्तन का समाज में नकारात्मक प्रवृत्ति का प्रेरक होता है। धर्म के साथ अर्थ चिन्तन समाज निर्माण की सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करता है।

अर्थ चिन्तन के धार्मिक पक्ष पर महात्मा गांधी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि -"जो अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र की

2. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 450-463, ऋग्वेद 10.72.
2. अथर्ववेद 3.5.6

मर्यादाओं के विपरीत चलता है, वह अनैतिक है। इसलिए पापपूर्ण है।'' याज्ञवल्क्य स्मृति में तो स्पष्ट व्यवस्था दी गई है–

अर्थशास्त्रास्तु बलद्धर्म शास्त्रमिति स्थितिः।

–याज्ञवल्क्य स्मृति

(अर्थात् अर्थशास्त्र से अधिक महत्त्वपूर्ण धर्मशास्त्र है। यदि इन दोनों में विरोध पैदा हो तो धर्मशास्त्र का पालन करना चाहिए।)

धर्मशास्त्र से ही लोक जीवन की मर्यादाएं सुरक्षित हैं। धर्म का आधार अध्यात्म और भौतिक चिन्तन दोनों ही है। जब कभी व्यक्ति अथवा समाज धर्मशास्त्र के निर्देशों का पालन नहीं करता तो उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है।

इसी संदर्भ में महर्षि वेद व्यास ने भी स्पष्ट संदेश दिया है। उनका यह संदेश तत्कालीन मानव समाज के लिए एक चेतावनी था। अर्थ चिन्तन के समय मनुष्य को धर्म, अर्थ एवं काम का सन्तुलित विचार करना अति आवश्यक है।

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न हि कश्चित् श्रुणोति माम्।
धर्माद्अर्थश्चकामश्च स धर्म किं न सेव्यते।।

(अर्थात् मैं यानी व्यास भुजाएँ उठाकर घोषणा करता हूं कि अर्थ एवं काम का सेवन मनुष्य को धर्म के अनुसार करना चाहिए। किन्तु आज कोई मेरी यह बात नहीं सुन रहा है। यही समस्त कष्ट का कारण है।)

इसी संदर्भ में ऋषि मनु ने भी अपने विचार को व्यक्त किया है। उन्होंने भी अर्थ चिन्तन को तीन पुरुषार्थों से सम्बद्ध करते हुए मनुस्मृति में अवगाहित किया है। उनका कहना है कि मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का सन्तुलित रीति से सेवन करना चाहिए। जो केवल एक का सेवन करता है वह जघन्य है, पापी है। इसलिए हमें धर्म नियंत्रित अर्थ तंत्र की रचना करनी चाहिए।

धर्मार्थकामाः सम एवं सेव्यकाः।
यः एक सेवी स नरो जघन्यः।।

## 5.4 हिन्दू धर्म चिन्तन पर आधारित अर्थ शास्त्र

हिन्दू अर्थ-व्यवस्था का आधार धर्म है। हिन्दू ऋषियों ने

प्राचीन काल में धर्म चिन्तन पर आधारित अर्थशास्त्र का समय-समय पर विधिवत अध्ययन किया है। धर्म चिन्तन पर आधारित अर्थशास्त्र की आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में उनकी दी हुई परिभाषा आज भी मानव समाज के लिए उपादेय है। अर्थशास्त्र के संदर्भ में कौटिल्य ने तो यहां तक कहा कि मानव को जिन प्रमुख विद्याओं को सीखना चाहिए, उनमें अर्थशास्त्र एक प्रमुख विद्या है।

**आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या।**

(अर्थात् आन्वीक्षिकी (दर्शन), त्रयी (वेद), वार्ता (अर्थशास्त्र), दण्डनीति (लोक प्रशासन एवं राजनीति) ये प्रमुख रूप से चार विद्याएँ है।)

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र की परिभाषा में कहा कि मनुष्यों से युक्त भूमि अर्थ है। ऐसी भूमि को प्राप्त करने, उसके पोषण की विधि, सिद्धान्त और नियम के संदर्भ में उल्लेख जिस शास्त्र में होता हैं उसे अर्थशास्त्र कहते हैं। कौटिल्य ने अपने उक्त विचारों के इस प्रकार प्रेषित किया-

**मनुष्याणां वृत्तिरर्थः मनुष्यवर्ती भूमिरित्यर्थः।**
**तस्याः पृथिव्या लाभपलनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति।।**

कौटिल्य द्वारा स्थापित अर्थशास्त्र की आध्यात्मिक अवधारणा का अनुशीलन वर्तमान समय में विशेषतः अलाभकारी खेती से हो रहे किसानों के जान-माल की रक्षा की दिशा में पूर्णरूपेण उचित हो सकता है।

इसी प्रकार अर्थ चिन्तन के संदर्भ में प्राचीन ऋषियों की कड़ी में शुक्राचार्य का नाम प्रमुख है। शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में अर्थशास्त्र को 'वार्ता' शब्द से प्रस्तुत करते हुए कल्याणकारी अर्थ चिन्तन की दिशा में तीन स्थानों पर उल्लेख किया है। शुक्राचार्य के इन तीनों संदर्भों को एक साथ विवेचित करने से हिन्दू अर्थ चिन्तन की पूर्ण विकसित एवं आध्यात्म आधारित परिभाषा स्पष्ट हो उठती है।

**अर्थानर्थों तु वार्तायां।**

(अर्थात् अर्थ उपार्जन और अनर्थ निवारण के उपाय जिस शास्त्र में वर्णित है, वह अर्थशास्त्र है।)

कुसीद कृषि वाणिज्यं गोरक्षा वार्तायोच्यते।
सम्पन्नोवार्तया साधुर्नावृत्तेमर्य मृच्छति।।

(अर्थात् ऋण पर ब्याज का लेन-देन, खेती, व्यापार और गोरक्षा पानी पशुपालन मुख्य रूप से ये चार विषय-वस्तु अर्थशास्त्र में शामिल होंगे। इन चारों विषय से सम्बन्धित व्यवहार ही अर्थशास्त्र (वार्ता) है।)

श्रुतिस्मृत्यविरोधेन राजवृत्तादिशासनम्।
सुयुक्ताअर्थार्जनं यत्रार्थशास्त्रं तदुच्यतु।।

(अर्थात् जिस शास्त्र में राजनैतिक-आर्थिक प्रशासन के बारे में श्रुति और स्मृति के अनुकूल यानी नैतिक मर्यादाओं से युक्त सिद्धान्त बताए जाते है, उसे हम अर्थशास्त्र कहते हैं।)

शुक्राचार्य जी के तीनों संदर्भो के आधारभूत तत्त्वों का यदि विश्लेषण किया जाए तो अर्थशास्त्र के इस व्यापक परिभाषा में हिन्दू लोक जीवन के आध्यात्मिक पक्ष पर आधारित अर्थ उपार्जन, अनर्थ-निवारण के उपाय, ऋण एवं ब्याज, खेती, पशुपालन एवं व्यापार, राजनैतिक आर्थिक प्रशासन का नैतिक मर्यादाओं से युक्त होने सम्बन्धित पक्ष अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के अन्तर्गत है।

## 5.5 हिन्दू अर्थ चिन्तन के विविध दृष्टिकोण

हिन्दू संस्कृति का आध्यात्मिक अर्थ दर्शन पूर्णरूपेण धर्म पर आश्रित है। धर्म की आध्यात्मिक एवं भौतिक चिन्तन की व्यापकता को केन्द्र में रखकर किए गए आर्थिक क्रियाओं से लोक जीवन सरस एवं विधि सम्मत रहता है। मनु, महर्षि व्यास, शुक्राचार्य, कौटिल्य इत्यादि ने धर्म एवं अध्यात्म के आधार पर अर्थशास्त्र का व्यापक संदर्भों में चिन्तन किया है। हिन्दू लोक जीवन में उक्त मनीषियों के चिन्तन पर आधारित अर्थ रचना एवं अर्थ व्यवहार का सिद्धान्त इतना परिपूर्ण था कि हजारों वर्षों तक उन्हीं सिद्धान्तों पर समाज गतिशील था। आर्थिक दिनचर्या के मध्य उठने वाले हजारों आर्थिक प्रश्नों एवं समस्याओं का समाधान इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर प्राप्त किया जाता था।

हिन्दू अर्थ चिन्तन का दर्शन एक होते हुए भी विविध रूपों में

हिन्दू लोक जीवन में अवस्थित है। जिस प्रकार अमेरिकी अर्थ चिन्तन पूंजीवाद के सिद्धान्त पर, चीन एवं पुराने रूस का अर्थ चिन्तन साम्यवादी विचार पर आधारित राष्ट्रीयीकरण के सिद्धान्त पर आधारित था, उसी प्रकार प्राचीन समय में हिन्दुस्थान का अर्थ चिन्तन धर्म पर आधारित आध्यात्मिक सिद्धान्त पर निर्भर था। कुछ प्रमुख एवं ऋषियों तथा महर्षियों द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण यहां प्रस्तुत है।

## तेरा तुझको ही समर्पित

हिन्दू लोक जीवन में धर्म पर आधारित अर्थ चिन्तन में प्रायः यह देखा गया है कि प्रत्येक तथ्य के अन्त में ईश्वर एवं ईश्वरीय अनन्त शक्ति का एक स्वरूपात्मक अभिव्यक्ति है। आस्था एवं विश्वास के सशक्त सीमा में आबद्ध मानव का चिन्तन समाज के बाद स्व के लिए उद्धत हो पाता है। सब कुछ समाज एवं समाज के रूप में व्याप्त उस परम सत्ता के अधीन व्यक्ति स्वयं को पाकर सन्तुष्ट हो जाता है।

**त्वदीयैव वस्तु तुभ्यमेव समर्पयेत्।**

प्रस्तुत अवधारणा में स्वामित्व विषय के परिप्रेक्ष्य में मानव की भूमिका का चिन्तन है। जिस प्रकार पूंजीवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत स्वामित्व का अधिकार व्यक्ति को होता है एवं राष्ट्रीयीकरण के सिद्धान्त के आधार पर स्वामित्व राज्य का होता है, उसी प्रकार हिन्दू लोक जीवन में व्यवहृत आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था में स्वामित्व का अधिकार ईश्वर को माना जाता है। यानी कड़ी परिश्रम के बाद भी अर्जित की गई सम्पूर्ण पारिश्रमिक ईश्वर का मानते हुए उसके उपभोग का अधिकार व्यक्ति को प्राप्त था। इस व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति उस संसाधन एवं धन का फिर उपयोग ईश्वर को अर्पित करने के बाद उसके भक्त यानी सेवक के रूप में करता था। इसलिए आज की तरह धन के दुरुपयोग का प्रश्न नहीं उठता था। अपने साधन-सम्पदा के स्वामित्व का हस्तांतरण ईश्वर को कर देने से सम्पत्ति को ईश्वर का प्रसाद मानकर व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता था। जिस प्रकार मंदिर में कोई व्यक्ति एक किलोग्राम लड्डू ले जाकर प्रसाद के रूप में अर्जित करता है। बाद में पुनः उसे स्वयं एवं दूसरों को मुक्त हस्त से वितरित करता है, उस समय वह व्यक्ति अपने धन से क्रय किए

गए उस प्रसाद को अपना नहीं बल्कि ईश्वर का प्रसाद मानता है। यानी उसके द्वारा मानसिक रूप से ही किन्तु स्वामित्व का हस्तांन्तरण ईश्वर के नाम से कर दिया गया होता है। और जब स्वामित्व का हस्तांतरण ईश्वर के नाम से हो जाता है तब वह वस्तु, संसाधन, सम्पदा इत्यादि सम्पूर्ण समाज का मान उसे अधिकाधिक लोगों में वितरित करने का प्रयास होता है। इसी सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए हिन्दू लोक जीवन के अर्थ चिन्तन में यह अवधारणा स्थापित है कि–

सर्व खल्विदं ब्रह्म।

(अर्थात, जो भी इस संसार में है, चराचर में है, वह सब ब्रह्म का है।)

इसी परिकल्पना को गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चौपाई में 'सियाराम भय सब जग जानी' के रूप में वर्णन किया एवं आचार्य विनोवा भावे ने कहा कि – 'सवै भूमि गोपाल की या में अटक कहां। जा के मन में अटक हैं, सो ही अटक रहा।।'

हिन्दू अर्थ चिन्तन का धार्मिक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। वर्तमान समय की सम्पूर्ण कठिनाइयां धन के व्यक्तिगत स्वामित्व भाव पर है। लोग धन प्राप्ति एवं उपभोग के सम्बन्ध में सम्पूर्ण सामाजिक मान–प्रतिमान एवं मानदण्ड को त्यागकर निर्लज्जता पर उतर जाते हैं। ऐसे में संसार में व्याप्त इन सभी समस्याओं का समाधान हिन्दू वैचारिकी पर आधारित आध्यात्मिक अर्थ चिन्तन से सम्भव है।

## सन्तोषं परं सुखम्

हिन्दू लोक जीवन का आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था हिन्दू धर्म की शास्वत सिद्धान्तों पर टिका है। हिन्दू धर्म में व्याप्त सहिष्णुता, समन्वयवादिता, प्रकृतिजन्य मानवीय दृष्टिकोण, युक्ति संगत दार्शनिकता एवं सन्तुलित जीवन मूल्यों से युक्त हिन्दू जीवन पद्धति सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। ऐसे में हिन्दू धर्म पर आधारित अध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था के सिद्धान्त की उपादेयता भी सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सर्वकल्याणकारी है। हिन्दू धर्म की अवधारणा के अनुसार

पंचतत्त्वात्मक शारीरिक संरचना योग पर आधारित बुद्धि युक्त मानव के लिए करणीय एवं अकरणीय व्यवहारों की स्वीकृति का निर्धारण स्वयं मानव समाज करता है। उन्हीं स्वीकृत व्यवहारों को व्यवहृत करना मानव की जीवँन पद्धति एवं संस्कृति का मूर्त रूप घोषित होता है। धर्म चिन्तन के भारतीय दृष्टि में सामाजिक व्यवस्था एवं उसके नियम तथा सिद्धान्तों को धारण करना ही धर्म माना गया है। हजारों-हजार वर्ष के अनुभव, अवलोकन एवं विश्लेषण के बाद मानवहित हेतु प्रस्तुत हिन्दू धर्म दर्शन में आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था की विशिष्टता अकल्पनीय है।

हिन्दू धर्म के दस लक्षण धृति (धैर्य), क्षमा, दम (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (आत्म नियन्त्रण), ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध (अहिंसा) रूपी व्यवहारों से परिपूर्ण हिन्दू धर्म पर आधारित आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक पक्ष में उक्त लक्षणों का परिलक्षित होना स्वाभाविक है। आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था में उपभोक्ता की आत्मिक तुष्टिगुण, मांग एवं आपूर्ति, मूल्य निर्धारण, वस्तुओं के प्रकार, हस्तांन्तरणीयत्ता, वित्त व्यवस्था, पारिश्रमिक निर्धारण, न्यायपूर्ण वितरण इत्यादि पक्षों के पार्श्व में हिन्दू धर्म के इन्हीं दस लक्षणों की विशिष्टता सक्रिय रहती है।

हिन्दू धर्म का प्रथम लक्षण 'धृति यानी धैर्य' हिन्दू मनीषा का मूल है। हिन्दू लोक जीवन के प्रत्येक अंग एवं उपांग में धैर्य का पाया जाना स्वाभाविक है। इसी आधार पर हिन्दुत्व पर आधारित आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था में धैर्य भाव पानी तुष्टिगुण का प्रत्यक्षीकरण सामान्यतः देखा जा सकता है। धैर्य धारण करने से सुख (लाभ) की प्राप्ति होती है। हिन्दू धर्म चिन्तन में हिन्दुत्व के उक्त दसों लक्षण व्यक्ति अथवा समाज प्रत्येक के व्यवहार में सदैव परिलक्षित होता है। सन्तोषम् परं सुखम् की मनोवृत्ति पर आधारित समाज की अर्थव्यवस्था का कल्याणकारी रूप हिन्दुस्थान के साथ सम्पूर्ण संसार के लिए हितकर है।

## 5.6 हिन्दू लोक जीवन में व्यवहृत अर्थशास्त्र

हिन्दू लोक जीवन में स्थापित आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था के

व्यवहारिक सिद्धान्तों का चिन्तन धार्मिक मूल्यों एवं हिन्दू संस्कृति के मानकों तथा हिन्दू जीवन पद्धति के कारकों के उपर आश्रित है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में पूर्व वैदिक काल, वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल के अलावा, ईसापूर्व एवं ईसा के बाद के कालखण्डों के साथ आधुनिक विद्वानों ने भी हिन्दू जीवन पद्धति तथा हिन्दू लोक जीवन के परिप्रेक्ष्य में अध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था का व्यापक रूप से उल्लेख किया है। हिन्दुत्व के आध्यात्मिक आर्थिक दर्शन में अर्थव्यवस्था का समाजोन्मुख संपोषणीय एवं कल्याणकारी सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। वर्तमान काल के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के अर्ध-पार्श्व परिभाषा से इतर मानवीय व्यवहारों के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक पक्षों को दृष्टिगत करते हुए आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है।

आधुनिक अर्थशास्त्र के व्यवहारिक रूप की तरह हिन्दू आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था में भी आत्मिक तुष्टिगुण, मांग एवं आपूर्ति, सीमितता, हस्तान्तरणीयता, प्रतियोगिता, मूल्य निर्धारण, वस्तुओं के प्रकार, आर्थिक संस्था का प्रशासन, वित्त व्यवस्था, पारिश्रमिक निर्धारण, ऋण, ब्याज, धनार्जन एवं न्यायपूर्ण वितरण जैसे बिन्दुओं पर बड़ी गहराई से विभिन्न ऋषियों द्वारा चिन्तन एवं मनन के उपरान्त सिद्धान्त अवगाहित किया गया है। कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर यहां प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

## मौद्रिक विनिमय का सिद्धान्त

अर्थशास्त्र का व्यवहारिक पक्ष क्रय-विक्रय के साथ प्रारम्भ होता है। क्रय-विक्रय व्यवस्था (लेन-देन) दो प्रकार से सम्पन्न होती थी। **प्रथम**, वस्तु-विनिमय प्रणाली तथा **द्वितीय**, मुद्रा विनिमय प्रणाली है। वस्तु-विनिमय प्रणाली तो प्रायः प्रत्येक देश में प्राचीन काल से चलती आ रही थी, किन्तु मुद्रा का चलन सर्वप्रथम हिन्दुस्थान में हुआ। इसका पर्याप्त प्रमाण हमारे यहां धर्म ग्रन्थों में प्राप्त है। वेद जो विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ है जो सभी को स्वीकार्य है, में इस प्रकार की व्यवस्था का सुस्पष्ट उल्लेख है। वेद में 'हिरण्य पिण्ड' का उल्लेख है। हिरण्य का अर्थ सोना एवं पिण्ड

मुद्रा से है। उस समय सोने को गलाकर उसका एक निश्चित पिण्ड (आकार) बना लेते थे, यानी सोने की मुद्रा तैयार की जाती थी। इस प्रकार वेदों में महर्षि व्यास द्वारा सोने की मुद्रा एवं मौद्रिक विनिमय प्रणाली के अनेक उदाहरण मिलते हैं। वेदों में 'निष्क' शब्द का भी प्रयोग है।

हिन्दू लोक जीवन में प्रचलित मौद्रिक प्रणाली का उल्लेख पाणिनि एवं पतंजलि के महाभाष्य में भी है। उन्होंने मुद्रा के अनेकों नाम भी गिनवाए हैं, जैसे—शतमान, शाण, निष्क एवं सुवर्ण इत्यादि। इसके अलावा पाणिनि एवं पतंजलि के बाद भी हिन्दू लोक जीवन में 'कार्षापण' नामक मुद्रा अत्यन्त प्राचीन है। पुरातात्विक खुदाइयों में प्राप्त मुद्राओं में आज तक की सबसे प्राचीन प्राप्त मुद्रा 'कार्षापण' है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दू धर्म चिन्तन आधारित आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था में क्रय-विक्रय प्रणाली मौद्रिक विनयम प्रणाली पर आधारित एवं विकसित थी।

## मूल्य निर्धारण सिद्धान्त

आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था में सामाजिक मूल्यों की व्यवहारिता को ध्यान में रखकर कौटिल्य ने मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कौटिल्य ने इस सिद्धान्त को विवेचित करते हुए समझाने का प्रयास किया है कि जब किसी वस्तु के क्रय के लिए होड़ लग लाए तो वस्तु का मूल्य बढ़ने लगता है। ऐसे में सम्पन्न क्रेता तो वस्तु प्राप्त कर लेगा, किन्तु सामान्य क्रेता कैसे खरीद कर सकता है?

**क्रेतु संघर्षे मूल्य वृद्धिः।**

—कौटिल्य

**यथाकामात्पदार्थानामर्घ हीनाधिकं भवेत।**

—शुक्राचार्य

(अर्थात् जैसे-जैसे वस्तु की मांग कम या अधिक होती है, उसी औसत सम मूल्य कम या अधिक होता है।)

**सुलभासुलभत्वाच्चा-गुणत्वागुणसंश्रयः।**

—शुक्राचार्य

(अर्थात् वस्तु की आपूर्ति एवं गुणवत्ता के आधार पर मूल्य का निर्धारण होता है।)

**यथा देशं यथा कालं, मूल्यं सर्वस्य कल्पयेत्।**

–शुक्राचार्य

(अर्थात् मूल्य का निर्धारण स्थान एवं समय, ऋतु एवं मौसम के अनुसार ही होना चाहिए।)

इस प्रकार हिन्दू लोक जीवन में आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था के नैतिक स्वरूप के संदर्भ में प्राचीन काल से ही हिन्दू मनीषियों ने गंभीरता से चिन्तन किया है। मांग एवं आपूर्ति, प्रतियोगिता, वस्तु की गुणवत्ता तथा स्थान (उत्पादन स्थल से आपूर्ति स्थल की दूरी) एवं काल (समय, ऋतु एवं मौसम) के अनुसार वस्तुओं का मूल्य निर्धारण होता है। हिन्दू आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण का उक्त सिद्धान्त हजारों वर्ष पूर्व हिन्दू लोक जीवन का एक अभिन्न भाग बना हुआ था।

आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था दर्शन के चिन्तन में कितनी सजगता, सहजता एवं सम्भावना का भाव था कि वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में वस्तुओं के प्रकार का भी चिन्तन किया गया। दो प्रकार की वस्तुओं का उल्लेख करते हुए कौटिल्य ने कुछ वस्तुएं जो शीघ्र नष्ट हो जाती है, उनका नामकरण करते हुए 'अजस्रपण्यानाम्' सम्बोधित किया एवं शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं के बारे में व्यवस्था देते हुए यह निर्दिष्ट किया गया कि ऐसी वस्तुओं को कम लाभ पर, लाभ न मिले तो बिना लाभ एवं लागत भी न मिले तो लागत से कम मूल्य पर एवं वह भी नहीं सम्भव तो मुफ्त में वितरित कर देना चाहिए। कात्यायन ने इसी शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तु का 'संद्यःक्रयविक्रयी' नाम से सम्बोधित किया।

मूल्य निर्धारण करते समय 'उचित अथवा न्यायपूर्ण मूल्य निर्धारण का सिद्धान्त' के तहत याज्ञवल्क्य स्मृति में 'धर्म्यअर्ध' शब्द प्रयोग हुआ। वस्तु का उचित मूल्य क्या होना चाहिए, इसका चिन्तन करते हुए मनीषियों ने अवगाहित किया–

**अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रतुर्विक्रतुरेव च।**

–याज्ञवल्क्य स्मृति 2/256

(अर्थात् उचित मूल्य निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिसमें क्रेता और विक्रेता दोनों के हित सुनिश्चित हों।)

वस्तुओं के उचित मूल्य निर्धारण का सिद्वान्त हिन्दू धर्म आधारित आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था में आज भी उपादेय है। लाखों किसानों एवं अन्यान्य क्षेत्रों में व्यवसायरत परिश्रमी लोगों द्वारा की जा रही आत्महत्याएँ जैसी भयावह समस्या का समाधान हिन्दू लोक जीवन के अति महत्त्वपूर्ण एवं संवेदनशील आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था के माध्यम से ही सम्भव है।

## पारिश्रमिक निर्धारण सिद्धान्त

अर्थशास्त्र के श्रम सिद्धान्त के अन्तर्गत पारिश्रमिक निर्धारण एक जटिल कार्य है। हिन्दू लोक जीवन में श्रम के महत्त्व को देखते हुए आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था दर्शन के चिन्तकों ने इस महत्त्वपूर्ण पक्ष के संदर्भ में अनेकों सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। परिश्रमिक के महत्त्व को ज्ञात कर हिन्दू मनीषियों ने एक चेतावनी भी दी–

**न कुर्याद् भृतिलोपं तु तथा भृति विलम्बनम्।**

–शुक्राचार्य

(अर्थात् भृति यानी पारिश्रमिक का लोप एवं पारिश्रमिक देने में विलम्ब, यह नहीं होना चाहिए।)

पारिश्रमिक के संदर्भ में हमारे ऋषियों ने पारिश्रमिक की तीन श्रेणियों का उल्लेख किया– कार्य मान, काल मान और कार्य काल मान। इसके अलावा भी गुण के आधार पर श्रेष्ठाभृतिः, मध्याभृतिः और हीना भृतिः का सामाजिक स्तरीकरण के रूप में विचार किया। श्रम कल्याण की अनेक योजनाओं का विस्तृत उल्लेख शुक्रनीति नामक ग्रन्थ में देखा जा सकता है। पारिश्रमिक निर्धारण के कई सिद्धान्तों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में प्रायः दिखाई पड़ता है–

पारिश्रमिक का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त–

**अवश्यपोष्यवर्गस्य भरणं भृतिकादभवेत।**

–शुक्राचार्य

(अर्थात् श्रमिक, उसके परिवार एवं उसके आश्रितों का पोषण हो, इतना पारिश्रमिक एक श्रमिक को उसके श्रम के बदले अवश्य देनी चाहिए।)

पारिश्रमिक हेतु योग्यता एवं कार्य कुशलता का सिद्धान्त–

**शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्।**

–मनुस्मृति10/124

(अर्थात् श्रमिक को पारिश्रमिक निर्धारण के समय शक्ति यानी योग्यता तथा दक्षता यानी कार्यकुशलता दोनों को ध्यान में रखना चाहिए।)

पारिश्रमिक के संदर्भ में उत्पादकता को ध्यान में रखकर कौटिल्य ने पारिश्रमिक निर्धारण के समय 'कर्मानुरूपम् एवं कार्यानुरूपम्' शब्दों का भी उपयोग किया था। उनका तात्पर्य था कि पारिश्रमिक कार्य एवं कर्म के अनुसार हुए उत्पादन की मात्रा एवं गुणवत्ता को दृष्टिगत रखते हुए निर्धारित करना चाहिए।

देवर्षि नारद ने भी पारिश्रमिक निर्धारण के संदर्भ में अपना विचार देते हुए पारिश्रमिक किस पक्ष पर निर्धारित होना चाहिए, उसका उल्लेख किया।

**भृतकस्त्रिविधो ज्ञेय उत्तमो मध्यमोऽधमः।**
**शक्तिभक्त्यनुरूपा स्यादेषां कर्माश्रया भृतिः॥**

–नारदीयमनुस्मृतिः 5/20

(अर्थात शक्ति (योग्यता), भक्ति (मनोयोग) दोनों को मिलाकर हुए उत्पादकता के अनुसार पारिश्रमिक का निर्धारण होना चाहिए।)

श्रीमद् भागवत गीता में भी वर्णित विचार पारिश्रमिक निर्धारण के पक्ष में अन्तिम एवं पूर्ण चिन्तन है, जो हिन्दू धर्म लक्षण के अनुरूप, हिन्दू जीवन पद्धति के गुणात्मक पक्ष एवं हिन्दू संस्कृति के उच्च प्रतिमान पर स्थापित है–

**कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥**

–श्रीमद्भगवतगीता 2/47

## अर्थशास्त्र के अन्यान्य सिद्धान्त

हिन्दू धर्म पर आधारित हिन्दू लोक जीवन का आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था, गुण, दोष, आवश्यकता के अनुसार विविध क्षेत्रों में

प्रायशः पूर्णतायुक्त है। उत्पादन सिद्धान्त, ऋण एवं ब्याज का सिद्धान्त, न्यायपूर्ण वितरण सिद्धान्त एवं आर्थिक प्रशासन का सिद्धान्त इत्यादि कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का विस्तृत उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त है। सनातन काल से चिन्तन की परम्परा में गातिमान हिन्दू ज्ञान का आधार सर्वथा अध्यात्मिक एवं भौतिक था। हिन्दू जीवन पद्धति में मानव मात्र का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति, जीव जगत एवं तन्मात्राओं का भी विशेष ध्यान रखा गया था।

अर्थव्यवस्था के आध्यात्मिक चिन्तन में नियोक्ता एवं श्रमिक तथा श्रम सहभागिता का विशिष्ट उल्लेख के साथ ऋण के लेन देन में ब्याज की दर एवं ऋण लौटाने के नैतिक एवं ऋण न लौटाने की स्थिति में ऋण लौटाने के लिए बाध्य करने की अनेकानेक विधियों का प्रतिपादन था। ऋण वापसी के विभिन्न पद्धति में धर्मेध, (नैतिक अपिल), व्यवहारेण (कानूनी पद्धति), छलेन (कुशलता) आचारितेन (धरना या हड़ताल), बलेन (बलपूर्वक स्वयं अथवा राज्य बल व्यवस्था की सहायता से) इत्यादि विविध पद्धतियां प्रमुख थीं।

हिन्दू लोक जीवन के धर्म आधारित अर्थ–व्यवस्था में ऋण लेन देन के साथ ऋण पर निर्धारित ब्याज भी छः प्रकार का था। कायिक (शारीरिक श्रम द्वारा भुगतान), कालिका (वार्षिक या मासिक निर्धारित दर), चक्रवृद्धि (ब्याज पर ब्याज), कारिता (सामान्य से काफी ऊंचा दर), शिखा वृद्धि (नित्य दिन का दर), भोगलाभ (अचल सम्पत्ति का उपभोग) इत्यादि का उल्लेख शुक्रनीति, नारदस्मृति एवं कौटिल्य द्वारा रचित ग्रन्थों में सुस्पष्ट है।

इसी तरह हिन्दू लोक जीवन के आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था में धनार्जन एवं धन के वितरण सिद्धान्त पर भी गहराई से विचार करके विस्तार से संदर्भित किया गया है। धनार्जन एवं धन वितरण के संदर्भ में सोमदेव सूरि ने नीतिवाम्यम् में धन की परिभाषा इस प्रकार दी है–

**सर्वप्रयोजन सिद्धिः सोऽर्थः।**

(अर्थात् जो सब प्रकार के प्रयोजनों की सिद्धि कर सकता है वही धन है।)

वेदों में धन, धान्य, स्वर्ण, गाय एवं घोड़े का विवरण प्राप्त होता है। कौटिल्य ने धन के महत्त्व को समझाते हुए सब इच्छाओं की पूर्ति धन से होती है, ऐसा कहा है।

**धनमूलाः क्रियाः सर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः।**

(अर्थात् सभी कार्य धन पर निर्भर हैं अतः इसे पूरे परिश्रम के साथ अर्जित करना चाहिए।)

आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था के कल्याणकारी चिन्तन में धर्नाजन की आचार संहिता इस प्रकार हमारे प्राचीन मनीषियों ने विशेषतः मनुस्मृति में उल्लेख किया– **धर्मेण धनः** (उचित मार्ग से न्याय एवं नैतिकता पूर्वक), **अद्रोहेण भूतानामल्प द्रोहेण वा पुनः** (पर्यावरण रक्षा, अन्य प्राणियों का हित रक्षण), **अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धन संचयम्।** (शरीर एवं मन को कम पीड़ा देकर), **सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः।** (ज्ञानार्जन एवं स्वाध्याय के काम में बाधा न देना) के साथ स्वावलम्बी अर्थतन्त्र विकसित करके धर्नाजन करना चाहिए।

धनार्जन के साथ न्यायपूर्ण वितरण व्यवस्था का ज्ञान आध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था के रूप में हिन्दुस्थान ने शेष विश्व को दिया है। मानव एवं उसके परिवार के जीवन निर्वहन हेतु न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित होनी चाहिए। इसके लिए शरीर रक्षण एवं पोषण आवश्यक है। **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** यानी मनुष्य को जीवन निर्वाह हेतु भोजन, वस्त्र एवं मकान इत्यादि न्यूनतम आवश्यकता की अवश्य पूर्ति होनी चाहिए। इसके लिए धार्मिक व्यवस्था में दान, दक्षिणा एवं जनकल्याण के कार्यों हेतु कराधान प्रमुख है। धनार्जन के बाद धन संग्रह की सीमा एवं धन का उपयोग इत्यादि विषयों पर तथ्योत्मक अभिव्यक्ति का संदर्भ पर्याप्त संख्या में है।

**केवलाघो भवति केवलादि।**

–ऋग्वेद

(अर्थात् जो अकेला उपभोग करता है, वह पाप का भागीदार है।)

**शतहस्त समाहर सहस्त्र हस्त संकिर।**

–अथर्ववेद

(अर्थात् सौ हाथों से अर्जन करो और हजार हाथों से उसे बांटो।)

समानी प्रपा सहवोऽत्र भागः।

–यजुर्वेद

(अर्थात् हमारे अन्न एवं पीने का पानी समान हो।)

सहभक्षाः स्याम।

–अथर्ववेद

(अर्थात् हम साथ-साथ भोजन करें।)

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु।

–तैत्तिरीय उपनिषद्

हिन्दू संस्कृति का आध्यात्मिक आर्थिक दर्शन धर्म चिन्तन के अन्तर्गत आता है। इसीलिए महर्षि व्यास ने उस समय भी यह चेतावनी दी थी कि मानव को अर्थ एवं काम का सेवन धर्म के अनुसार करना चाहिए। कौटिल्य ने तो विद्वानों से आग्रह किया कि चार प्रमुख विद्याओं में अर्थशास्त्र एक प्रमुख विद्या है। इसका प्रत्येक व्यक्ति को अध्ययन करना चाहिए। अर्थशास्त्र के संदर्भ में शुक्राचार्य ने कहा कि इसमें अर्थ उपार्जन एवं अनर्थ निवारण का विवेचन है। धनार्जन के बाद 'तेरा तुझको ही समर्पित' भाव हिन्दू लोक जीवन के आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था के तत्त्व जिज्ञासा में ही सम्भव है। याज्ञवल्क्य स्मृति, मनुस्मृति, नारद स्मृति एवं अन्यान्य मनीषियों के श्रुति एवं स्मृति वाक्य आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था के जीवन्तता को प्रवाहमान रखने में सर्वदा सक्षम हैं।

## 5.7 हिन्दू लोक जीवन में संपोषणीय अर्थ चिन्तन

हिन्दू अर्थ चिन्तन की एक सबसे बड़ी विशेषता मानव को अपने उपयोग को नियन्त्रित करना है। आवश्यकताओं को न्यूनतम करने से मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिए कि वह श्रम कम करना चाहता है अथवा वह कन्जूस प्रकृति का है, बल्कि समाज में रहने एवं लोक जीवन की मर्यादाओं के निर्वहन हेतु समाज की अपेक्षा की पूर्ति करना भी आवश्यक है। जिस प्रकार राज्य के द्वारा निर्धारित कर इत्यादि को देना आवश्यक है, उसी प्रकार व्यक्ति को भी सामाजिक

भावना के अनुसार समाज में रहकर समाज के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने में अपनी भूमिका का निर्वाह करना परमावश्यक है।

हिन्दू के आंध्यात्मिक अर्थ व्यवस्था दर्शन में व्यक्ति एवं समाज का परस्पर सम्बन्ध संपोषणीय अर्थ चिन्तन पर आधारित होता है। ईशोपनिषद् में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि–

**ईशावास्यमिदं सर्वयत्किंचजगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भंजोथा मा ग्रधः कस्यस्विद्धनम्॥**

(अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार और इसमें स्थित सम्पूर्ण पदार्थ ईश्वर का है, यानी ईश्वर प्रदत्त एवं ईश्वर के नाम पर उपयोग हेतु है। इसलिए जगत रूपी ईश्वरी सम्पति का त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए एवं किसी अन्य को सम्पत्ति में लोभ नहीं रखना चाहिए।)

'वसुधैवकुटुम्बकम्' एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' की वैचारिकी पर आधारित हिन्दू संस्कृति तथा ऐसी संस्कृति में जीवन के एक महत्त्वपूर्ण आयाम यानी अर्थ चिन्तन के मूल में सर्वकल्याण एवं प्रकृति की सुरक्षा के साथ सम्पोषण का भाव स्वतः स्पष्ट होता है। यदि सबकुछ ईश्वर प्रदत्त एवं ईश्वर के लिए है तो इन वस्तुओं का यंथोचित उपयोग कैसे हो सकता है, इसका चिन्तन उपभोक्ता को स्वयं करना होता है। अर्थ चिन्तन की प्रक्रिया में संपोषण का भाव हिन्दू धर्म चिन्तन के सिद्धान्त पर स्वयं निरन्तर एवं गतिशील रहता है। हिन्दू धर्म पर आधारित आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था मानव के लिए सरस, सुखद एवं कल्याणकारी मानी जाती है।

## 5.8 हिन्दू राष्ट्र का स्वदेशी दर्शन

हिन्दुत्व पर आधारित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं कल्याणकारी अर्थव्यवस्था का अवधारणात्मक चिंतन तथा जनमानस में हिन्दू दर्शन के आधार पर स्वदेशी भाव की स्थापना आज हिन्दुस्थान के लिए चुनौती है। हिन्दुत्व का प्रतीक, हिन्दू आस्था, हिन्दू जीवन पद्धति, स्वावलम्बन, स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता से अन्वित स्वदेशी हिन्दू दर्शन सम्बन्धित अवधारणा को पूर्णरूपेण अंगीकार करना अत्यन्त आवश्यक है। देश को विपरीत संस्कृति एवं आर्थिक संकट की ओर

ले जा रही वर्तमान नीतियों, ऋषि एवं कृषि के प्रतीक देश में धर्म तथा संस्कृति एवं धर्म तथा संस्कृति पर आधारित कृषि क्षेत्र की घोर उपेक्षा, भारतीय उद्योग-धंधों के साथ षड्यन्त्र, राष्ट्रीय आस्था से जुड़ी स्वदेशी जीवन पद्धति, प्रतीक, परम्परा एवं मानदण्डों के साथ छेड़छाड़ व्यापक और योजनाबद्ध ढंग से हो रहा है। ऋषियों, मनीषियों, साधु-संतों, मन्त्रद्रष्टाओं द्वारा सम्पोषित यह भूमि जो सर्वदा संसार का मार्ग दर्शन करती रही है– उसी के सामने अस्तित्व की चुनौती है। यह चिन्ता का ही नहीं, अपितु चिन्तन का भी विषय है।

हिन्दुस्थान प्राचीन काल से एक भौगोलिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक हिन्दू राष्ट्र रहा है, जिसकी नियामक शक्ति हिन्दू संस्कृति है। हिन्दू राष्ट्र की आर्थिक संरचना वस्तुतः सांस्कृतिक स्वरूप पर ही आधारित है। स्वदेशी मूलतः संस्कृति का सकारात्मक अधिष्ठान है। स्वदेशी आर्थिक नीति सर्वदा संस्कृति एवं व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों के पोषण हेतु निर्धारित होता है। हिन्दू राष्ट्र का स्वदेशी दर्शन सांस्कृतिक मूल्यों पर टिका है।

## स्वदेशी की अवधारणा एवं महत्त्व

स्वदेशी दर्शन की अवधारणा एवं महत्त्व के संदर्भ में स्वदेशी का स्वाभाविक भावबोध, स्वदेशी का अर्थ, भावार्थ एवं परिभाषा, स्वदेशी चिन्तन के विविध सिद्धान्त के साथ ही साथ हिन्दू लोक जीवन का स्वदेशी चिन्तन, एवं अन्यान्य देशों का स्वदेशी चिन्तन इत्यादि बिन्दुओं पर गहन अध्ययन की आवश्यकता है। इतना ही नहीं वर्तमान समय में स्वदेशी चिंतन की सीमाएं, स्वदेशी दर्शन का कल्याणकारी तथा आध्यात्मिक रूप एवं स्वदेशी दर्शन अथवा अवधारणा का महत्त्व जैसे पक्षों पर भी ध्यान देना अतिआवश्यक है।

हिन्दू, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू लोक जीवन की शक्तिशाली नींव 'स्व' भावबोध के आत्मोत्थान पर आधारित है। किन्तु इस आत्मोत्थान के भाव में कदापि स्वार्थ अथवा स्वहित नहीं अपितु समाजोत्थान की मर्यादा होती है। यदि समाज का उत्थान होगा तो व्यक्ति उससे बाहर नहीं है। किन्तु पश्चिमी संस्कृति की अवधारणा का आधार 'स्व' के उस उत्थान से है जिससे समाज का उत्थान जुड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपनी-अपनी उन्नति में तत्पर हो जाएं

तो समाज का उत्थान स्वतः हो जाएगा। किन्तु हिन्दू संस्कृति में समाजोत्थान के लिए स्व उत्थान का भाव गौड़ हो जाता है। यही कारण है कि हिन्दू लोककल्याण के चिंतन में 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का भाव सहज एवं स्वाभाविक है।

आज तथाकथित वैश्वीकरण शब्द एक आम व्यक्ति के लिए आकर्षक एवं मनमोहक है, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि वैश्वीकरण के सिद्धान्त का स्पष्ट अर्थ विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों का शोषण है। पूर्वकाल की उपनिवेशक शक्तियों का वर्तमान समय में आर्थिक शक्तियों के रूप में परिवर्तित स्वरूप है। देशों की सार्वभौमिकता को प्रायशः नष्ट करके उनका स्थान बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अथवा संस्थाएँ ले रही हैं। एक ईकाई के रूप में राज्य की शासन क्षमता भी कम हो रही है।

अंग्रेजी शासन के बाद देश की राजनीति, समाज व्यवस्था, जीवनादर्श आदि पर विदेशी शासकों के विचारों का जो प्रभाव था, वास्तव में दूर हो जाना चाहिए था, किन्तु दूर होने की बजाय वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ता ही चला गया। उनकी वेशभूषा, रीति-रिवाज, भाषा आदि बातें हिन्दू समाज में आत्मसात होती चली गई। समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, राज्य व्यवस्था अर्थ व्यवस्था एवं संविधान आदि विषयों में भी पश्चिमी देशों की बातें यहाँ भी प्रमाण मानी जाने लगीं। वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता और रामायण के स्थान पर मिल्स, हीगल, एडम स्मिथ, मार्क्स, एन्जल्स के वचन यहाँ प्रमाण माने जाने लगे।

वस्तुतः प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपने 'स्व' का विचार करना आवश्यक होता है। स्वत्व के बिना स्वराज्य को कोई अर्थ नहीं होता। आखिर प्रत्येक देश अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयास करते हुए सुखी और सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकने के लिए ही स्वतन्त्रता की अभिलाषा रखते हैं। अपनी प्रकृति के साथ मेल न खाने वाली विचारधारा या कार्य प्रणाली का आधार लेने वाले देश पर अनेक विपदाएँ आती हैं। हिन्दुस्थान के सामने आज जो संकट है, उनका भी यही मुख्य कारण है।

इसके साथ ही यह भी सोचना होगा कि किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में फँसे आज के विश्व को प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए क्या हिन्दुस्थान कुछ कर सकता है। हिन्दुस्थान को चाहिए कि आज संसार पर बोझ बनकर न रहते हुए ही अपनी संस्कृति और परम्परा में दुनिया को देने योग्य क्या-क्या बाते हैं, इसका चिन्तन कर जगत की प्रगति के कार्य में सहयोग दें। विगत हजार वर्षों से देश का सारा ध्यान स्वाधीनता संग्राम में और आत्मरक्षा के कार्यों में लगा रहा, अतः संसार के अन्य देशों की तुलना में हिन्दुस्थान बराबरी में खड़ा नहीं हो सका। परन्तु अब देश स्वाधीन हो गया है। अब हिन्दुस्थान को इस कमी को पूरा करना चाहिए।

हिन्दू स्वदेशी दर्शन ज़िज्ञासा से प्राप्त भावबोध समाज के समग्र उत्थान की वैचारिकी का मूल है। स्वदेशी हिन्दू दर्शन में 'स्व' उत्थान की कामना समाजोत्थान में ही समाहित है। व्यक्तिगत उत्थान के स्थान पर यह मानकर कि व्यक्ति समाज से बाहर नहीं अपितु अन्दर ही है, इसलिए सम्पूर्ण समाज के उत्थान का चिन्तन एवं प्रयास हो। इसी प्रकार एकात्ममानववाद के सिद्धान्त के आधार पर व्यक्ति के रूप में समाज एवं समाज के रूप में व्यक्ति की वैचारिकी से भी यही सिद्ध होता है कि 'समाज' हित के समक्ष 'स्व' हित का त्याग कर देना चाहिए। हिन्दू स्वदेशी दर्शन का मूल यही है। यह भाव प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक देश एवं प्रत्येक काल में समाज एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए हितकर है।

### हिन्दू स्वदेशी दर्शन पर आधारित प्रतिवेदन

आज देश में प्रचार माध्यमों का हिन्दू लोक जीवन, हिन्दू सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं हिन्दू जीवन पद्धति पर पूर्णरूपेण प्रभाव पड़ रहा है। दूसरी ओर अमेरिका एवं यूरोपीय संघ आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर कर विश्व के सम्पूर्ण देशों को अपने उपनिवेश के रूप में परिवर्तित कर देना चाहते हैं। इस आकांक्षा की पूर्ति हेतु गेट, विश्व व्यापार संगठन, बौद्धिक सम्पदा संरक्षण कानून, पेटेन्ट कानून इत्यादि जैसे अमानवीय कानून बनाए गए हैं। ऐसे में अन्यान्य देशों एवं समुदायों की सभ्यता, संस्कृति सामाजिक व्यवस्था एवं जीवन शैली का व्यापक अवमानना किया जा रहा है। आज भारत ही नहीं

संसार के सामने 'स्व' बोध को चुनौती दिया गया है। यही उपयुक्त काल है, जब हिन्दुस्थान सम्पूर्ण संसार का 'स्व' बोध में मार्ग दर्शन करके विश्व के वास्तविक स्वरूप का संरक्षण करे। इसलिए स्वदेशी भावना को आहूत करते हुए हिन्दू स्वदेशी दर्शन के दृष्टि से निम्नलिखित प्रतिवेदन प्रस्तुत है–

**राष्ट्र के आस्था से जुड़ी हिन्दू संस्कृति, प्रतीक, परम्परा एवं मानदण्ड के साथ छेड़छाड़ पर प्रतिबन्ध**

विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति "हिन्दू संस्कृति" को नष्टभ्रष्ट करने का योजनाबद्ध प्रयास किया जा रहा है। हिन्दू राष्ट्र विरोधी शक्तियां तरह–तरह के छदम् रूप धारण करके देश की युवा पीढ़ी को गुमराह कर रही हैं। शहरीकरण के नाम पर पश्चिमी संस्कृति का नग्न तांडव हो रहा है। पचास सालों के स्वतंत्रता का मूल्य देश में फैली हुई पश्चिमी संस्कृति के आयात के साथ चुकता किया जा रहा है। हिन्दुस्थान की वर्तमान पीढ़ी को यह अहसास दिलाना होगा कि वे क्या खो रहे हैं, क्या पा रहे हैं। मनोरंजन कार्यक्रमों के नाम पर अश्लीलता का प्रदर्शन युवा पीढ़ी को आज जैसे रास आ गई है। पश्चिमी संस्कृति के नाम पर हिन्दुत्व पर आधारित स्वदेशी संस्कृति, प्रतीक, परम्परा एवं मानदण्डों के साथ छेड़छाड़ एक भयानक स्वरूप लेता जा रहा है। ऐसे में राष्ट्र के आस्था के साथ जुड़े स्वदेशी सांस्कृतिक कार्यक्रमों, प्रतीकों, परम्पराओं एवं मानदण्डों के साथ छेड़छाड़ तत्काल प्रतिबिन्धित किया जाए। इसके तहत निम्न बिन्दुओं पर कानूनी नियन्त्रण लागू किया जाए–

क. सौंदर्य प्रतियोगिताओं एवं फैशन शो इत्यादि में बढ़ रही अश्लीलता को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिबन्धित किया जाए।

ख. मनोरंजन के नाम पर अश्लीलता तत्काल बन्द हो।

ग. मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम के व्यापक अन्तर पर दृष्टिगत करते हुए निम्न तथा स्तर विहीन मनोरंजन कार्यक्रमों पर रोक लगाया जाए एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रश्रय दिया जाए।

घ. विदेशी मीडिया के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर हो रहे हमले को तत्काल रोका जाए।

ड. हिन्दुस्थान में सक्रिय विभिन्न विदेशी संस्थाएँ, जैसे–आई. एस.आई. उग्रवादी नक्सली, मुस्लिम संस्थाएं एवं ईसाई संगठनों पर नियन्त्रण हो।

च. समान नागरिक आचार संहिता लागू हो।

छ. मौलिक अधिकारों के नाम पर अश्लीलता एवं उन्मुखता के विरुद्ध कानून बनाया जाए।

ज. सांस्कृति एवं धर्म प्रतीकों पर आधारित अश्लील एवं हिन्दू आस्था का उपहास करने वाले विज्ञापनों पर प्रतिबन्ध हो।

**जनमानस में हिन्दू जीवन पद्धति की स्थापना पर व्यापक बल**

हिन्दू जीवन पद्धति विश्व की एक श्रेष्ठजीवन पद्धति है। यह प्रकृति प्रदत्त है। आज यह भेदभाव रहित प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक देश एवं प्रत्येक काल के लिए उचित होते हुए भी भारत भूमि में नष्ट–भ्रष्ट हो रही है। इसे तत्काल संभालने एवं समाज में सुरक्षित करने की आवश्यकता है। तभी हिन्दू जीवन पद्धति जैसे मानवोपयोगी बहुमूल्य उपहार को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा। हिन्दू जीवन पद्धति के आधार पर ज्ञान, विज्ञान, आगम–निगम, षड्दर्शन, योग, आयुर्वेद, सिद्ध चिकित्सा पद्धति, सिद्ध संगीत, शास्त्रीय संगीत, वास्तु शिल्प, चित्रकला, ज्योतिष, सिद्ध, कृषि पद्धति आदि भारतीय मूल विद्याओं को सुरक्षित करना है। तभी इसका लाभ सम्पूर्ण मानव समाज (सभी जाति, वर्ग, लिंग एवं सम्प्रदाय) को मिल सकेगा। दिनचर्या, ऋतु चर्या एवं सांस्कृतिक तथा मर्यादित जीवन जीने की कला ही हिन्दू जीवन पद्धति है। इसलिए यह प्रतिवेदन किया जाए कि हिन्दू जीवन पद्धति जनमानस में स्थापित हो।

इस संदर्भ में निम्नलिखित कानूनी नियन्त्रण संप्रेषित किया जाए–

क. हिन्दू मूल विद्याओं की उपेक्षा बन्द हो एवं इन विद्याओं को पूर्ण राजाश्रय प्राप्त हो।

ख. दिनचर्या एवं ऋतुचर्या के अनुकूल हिन्दू जीवन पद्धति का सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर प्रचार-प्रसार किया जाए।

ग. धर्मशालाओं, कूप, बावली, सरोवर, तालाब इत्यादि को विकसित किया जाए।

घ. राज सम्पोषित मार्गों एवं सड़कों पर फलदार वृक्ष रोपित किए जाएँ।

ड. प्रत्येक नगरों, महानगरों में सुव्यवस्थित महाश्मशान की स्थापना किया जाय।

च. सामाजिक स्थलों, विद्यालयों, पुस्तकालयों और क्रीड़ा स्थलों के एक किलोमीटर परिक्षेत्र में मद्य की दुकाने बंद की जाएँ।

छ. सार्वजनिक स्थलों एवं व्यस्त मार्गों पर खुले मांस की बिक्री पर प्रतिबंद्ध लगाया जाए।

ज. भ्रूण-हत्या पर पूर्ण प्रतिबद्ध लगाया जाए।

## आध्यात्मिक अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता एवं संपोषण

हिन्दुस्थान एक कृषि प्रधान देश है। इस देश की धरोहर ऋषि और कृषि है। हिन्दू संस्कृति कृषि के दामन में उत्पन्न हुई है। आज भी अस्सी प्रतिशत जनसंख्या ग्राम समाज के आंगन में पल रही है। ग्राम समाज की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि ही है। आज किसान कृषि कार्य को अलाभकारी मान कर इसे छोड़ने लगा है। विदेशी दबाव में आकर सरकार कृषि पर अनुदान में कटौती कर रही है। खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर इस देश में विदेशों से तेल, दाल और चीनी के साथ दूध का भी आयात हो रहा है। गाँव में सिंचाई के लिए बिजली उपलब्ध नहीं है। जाति एवं वर्ग पर आधारित राजनीति में ग्राम समाज का सौहार्द और सुख-चैन छिन गया है। आयातित अनाज पर खाद्यान्न सुरक्षा किसी भी स्थिति में अच्छा नहीं हो सकता। एक ओर कत्लखानों में कटते हुए पशुओं के कारण पशुधन का ह्रास हो रहा है। योजनाबद्ध ढंग से कृषि को षड्यन्त्र में फँसा कर तहस-नहस किया जा रहा है। कृषि क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों का आना आर्थिक गुलामी की पहली सीढ़ी है। विदेशी कम्पनियां

अब कृषि कार्य से उदासीन किसानों की जमीनों को किराये पर लेकर खेती करेंगी और स्वाभिमानी, स्वावलम्बी एवं स्वतंत्र किसान अपने ही खेतों में मजदूर होकर रह जाएगा। आज देशहित में यह शक्तिशाली ढंग से मांग किया जाए कि–

क. कृषि उत्पाद के आयात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए।

ख. कृषि योग्य जमीन को देशी अथवा विदेशी कम्पनियों को बेचने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए।

ग. पशुधन की रक्षा के लिए दूध एवं दूध से बनी वस्तुओं के आयात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए।

घ. कृषि पर मिलने वाले अनुदान की किसी भी स्थिति में कटौती न की जाए।

ड. पशुधन को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया जाए।

च. गोवंश की सुरक्षा के लिए गोवध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए।

छ. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की प्रतिस्पर्धात्मक कार्यवाही को कानून के दायरे में रखते हुए कृषि से इतर उद्योग धन्धों को विशेष प्रालोभन दिया जाए।

ज. कृषकों को लाभकारी मूल्य तत्काल सुनिश्चित किया जाए।

## देश को आर्थिक संकट की ओर ले जाने वाली वर्तमान नीतियों में परिवर्तन अनिवार्य

हिन्दुस्थान की अर्थव्यवस्था आज संकट में है। वर्तमान सरकारी नीतियां पचासों साल पुराने गुलामी के समय के उन्हीं व्यवस्थाओं को ढो रही हैं। देश-विदेश में व्यापार करने वाले व्यवसायी आज विदेशी अर्थ तंत्र के जाल में फंसकर असहाय हो रहे हैं। पौराणिक काल के उत्तरापथ का अनुक्रमण करते हुए हमारे व्यवसायी अनेक देशों को पार करते हुए पश्चिम दिशा में जर्मनी तक एवं पूर्व दिशा में उसी उत्तरापथ के माध्यम से रंगून के आगे जावा सुमात्रा द्वीपों तक व्यवसाय करते थे। हमारे उत्पादों के गुणवत्ता का

आज भी जबाव नहीं है। विदेशी कम्पनियां गुणवत्ता के नाम पर षडयंत्र रचकर अपना व्यवसाय कर रही हैं। क्या पेप्सी-कोला भारत के सैकड़ों प्रकार के पेय के गुणवत्ता के समक्ष ठहर पाएगी, परन्तु इसके विपणन का तरीका एवं भारतीय समाज में पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव हमें हमारे वस्तुओं को पीछे करके उन्हें अग्रसरित कर देता है। सरकार द्वारा नये-नये क्षेत्रों को विदेशी निवेश हेतु खोलकर उसमें शत-प्रतिशत विदेशी निवेश के अनुमोदन की नीति विदेशी कम्पनियों द्वारा लाभांश एवं प्रकारान्तर से धन देश के बाहर ले जाने की छूट एवं अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के तहत करों की छूट इत्यादि से हिन्दुस्थान को गम्भीर संकट में डाल दिया गया है। उदारीकरण की नीति से लघु उद्योग, कृषि, पशुपालन एवं स्वदेशी हस्त शिल्प पर आधारित रोजगार प्रधान क्षेत्र नष्ट हो रहे हैं। इससे देश में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ रही है। उत्तरोत्तर अर्थ व्यवस्था के नये-नये क्षेत्रों में विदेशी स्वामित्व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दिये जाने वाले निमन्त्रण एवं विदेशी परामर्शदाताओं के परामर्श पर आधारित हिन्दुस्थान की अर्थव्यवस्था से प्रतीत होता है कि हमारे देश के अर्थजगत में आत्मविश्वास की कमी है। इसलिए पुनः आत्मविश्वास निर्मित करते हेतु यह मांग की जाए कि-

क. शत-प्रतिशत निर्यात पर आधारित क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी क्षेत्रों में विदेशी निवेश पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

ख. विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दिए जाने वाले लाभों को मुक्त प्रत्यर्पण की छूट वापस ले।

ग. देश में आयात पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध लगाया जाए।

घ. अन्तरराष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत होने वाले आयात को नियन्त्रित करने के लिए स्वदेशी वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने वाले वस्तुओं पर आयात कर की सीमा प्रतिबन्ध करने के मानसिकता के आधार पर लगाया जाए।

ड. उदारीकरण के कुप्रभाव से प्रभावित कृषि, पशुपालन, कुटीर, लघुउद्योग एवं अन्य रोजगार प्रधान उद्योगों को प्रभावी प्रोत्साहन प्रदान करें।

च. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढ़ते एकाधिकार नियंत्रण पर रोक लगाया जाए।

छ. न्याय, नागरिक सुरक्षा, शिक्षा एवं चिकित्सा क्षेत्र में विदेशी निवेश पूर्णरूपेण प्रतिबंधित हो, किन्तु इन विषयों में सरकारी निःशुल्क व्यवस्था करके आम नागरिक को लाभान्वित किया जाए।

ज. स्वदेशी तकनीक को विकसित करके इसका देश के सामान्य निर्माताओं एवं व्यवसायियों को इसके पूर्ण व्यसायीकरण हेतु प्रोत्साहित किया जाय।

## विदेशी व्यापारिक षड्यन्त्रों एवं विश्व व्यापार संगठन के विरुद्ध आह्वान

आज देश विश्व व्यापार संगठन एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के षड्यंत्र में फँसकर दिनों-दिन उलझता जा रहा है। शायद कुछ कम ही लोगों को यह जानकारी होगी कि 15 अगस्त सन् 1947 को यह देश आजाद हुआ और 21 अक्टूबर सन् 1947 के दिन हिन्दुस्थान की अर्थव्यवस्था को विदेशियों के हाथो गिरवी रख दिया गया । देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने 21 अक्टूबर 1947 को गेट (जनरल एग्रीमेंट आन ट्रैरिफ एण्ड ट्रेड) नामक समझौते पर हस्ताक्षर किया। इस समझौते के धारा न. 11 के तहत आयात पर हम प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते हैं। आज वही धारा विश्व व्यापार संगठन के रूप में महादानव की तरह हिन्दुस्थान की अर्थव्यवस्था को निगल जाना चाहता है। इस महादानव को नियंत्रित करने के लिए प्रस्ताव लाया जाए एवं दुनिया को अगाह किया जाए कि इस संदर्भ में अगर हिन्दुस्थान के राष्ट्रीय आर्थिक हितों की रक्षा न हो सकी तो तीव्र जन आक्रोश का सामना करना पड़ेगा। डब्ल्यूटीओ के कानून को हिन्दुस्थान द्वारा चुनौती दी जाए कि पेटेन्ट कानून और बौद्धिक सम्पदा ज्ञियन्त्रण जैसे कानून को वापस ले लें। देश के ज्ञानी, तत्त्व ज्ञानी, आध्यात्मद्रष्टा, ऋषि, महर्षि, तन्त्र-मंत्र के पुरोधा, योगी, साधक, उपासक, साधु, सन्त और सन्यासियों ने हजारों तरह के ज्ञान को खोजा और मन्त्रों का दर्शन भी किया और उन्हें जनसेवा में प्रतिपादित करके छोड़ दिया। आज संसार उसी ज्ञान को पुनः खोज

कर रहा है। खोज कर कापीराइट एवं पेटेंट करा रहा है। यह अमानवीय कार्य है। वेदों में सारा ज्ञान, विज्ञान तथा तकनीकी निहित है। हम भी वेद का कापीराइट करके दुनिया को अपने कदमों में रहने के लिए मजबूर कर सकते हैं, परन्तु न तो यह हिन्दू संस्कृति है और न ही मानवीय सभ्यता है। इसलिए इस दिशा में हिन्दू संस्कृति के आधार पर यह होनी चाहिए कि–

क. बौद्धिक सम्पदा कानून रद्द किया जाए।

ख. आयात निर्यात कानून मानवीय सभ्यता की सीमा में निर्धारित किया जाए।

ग. अप्राकृतिक उत्पादन जैसे–टर्मीनेटर बीज इत्यादि पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए।

घ. विश्व व्यापार संगठन का दुरुपयोग करते हुए कुछ देश व्यापारिक महाशक्तियां बनना चाहते हैं और जिसके लिए गैर–व्यवसायिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय उपबंधों को विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों से जोड़ना चाहते हैं। हिन्दुस्थान सरकार को इन सबका प्रबल विरोध करना चाहिए।

ङ बुद्धिजीवी तथा प्रबुद्धजनों का आवाहन है कि वे विश्व व्यापार संगठन, विश्व–अर्थव्यवस्था उपक्रमों एवं अन्य प्रावधानों का समुचित अध्ययन कर जन–चेतना एवं जन–जागरण का कार्य करें।

च. बौद्धिक संपदा संरक्षण कानून को अमानवीय घोषित करके इसके विरुद्ध विश्वस्तरीय जनजागरण चलाया जाए।

छ. हिन्दू धर्म ग्रन्थ वेद जो ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी ज्ञान एवं चिकित्सा इत्यादि से भरपूर है, पेटेन्ट के लिए प्रयासरत अन्याय देशों को इस कृत्य से रोका जाय।

ज. विश्व व्यापार संगठन के काले कानून एवं समझौते से देश में चिकित्सा शिक्षा एवं खेती कार्य की लागत में महँगाई आएगी।

## स्वदेशी आन्दोलन देशहित में अतिमहत्त्वपूर्ण

हिन्दू संस्कृति की पहचान एवं परम्परा बनाए रखने के लिए स्वदेशीकरण की अवधारणा को स्वीकार करना ही होगा। आज सम्पूर्ण संसार जनसंख्या को बाजारवाद के निगाहों से देखा रहा है, परन्तु हिन्दुस्थान इसे परिवार मानता है। अगर देश को विकास और खुशहाली के रास्ते पर ले जाना है तो बाजारवाद के सिद्धान्त को त्याग कर स्वदेशीकरण की भावना के साथ ही आगे बढ़ना होगा। आजादी के बाद देश की जनसंख्या 35 करोड़ थी और अगले 25 सालों में यानी जनसंख्या वृद्धि की दर सन् 1975 में 70 करोड़ पहुंच गई। इस वृद्धि की दर से देखा जाय तो सन् 2000 में यानी कि अगले पच्चीस वर्षों में जनसंख्या 140 करोड़ होनी चाहिए थी, किन्तु देश की जनसंख्या लगभग 100 करोड़ रह ही गई। जनसंख्या वृद्धि का दर थोड़ी-सी अनियन्त्रित अवश्य हुई थी, किन्तु इसका प्रमुख कारण मुस्लिम सम्प्रदाय में अंधी इस्लामिक कट्टरवादी मानसिकता से जनसंख्या बढ़ाकर समस्त हिन्दुस्थानी भू-भाग पर नियन्त्रण करना था, जिस तरह से सन् 50 से सन् 75 के बीच जनसंख्या बढ़ी थी, उस समय देश ने अकाल एवं अभाव को देखा। किन्तु हिन्दुस्थान के उन्हीं किसानों एवं स्वदेशी कृषि वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों ने सन् 1975 तक देश को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर कर दिया था। इसके बावजूद भी आज स्वदेशी तकनीकी के नाम पर पिछड़े माने जाते हैं। हिन्दुस्थान के स्वदेशी भाव में ही सम्वृद्धि और उसी में राष्ट्रहित निहित है। वर्तमान अर्थव्यवस्था के दुखद प्रभाव की वजह से देश में बेरोजगारी एवं महंगाई में वृद्धि हुई। इसलिए स्वदेशी आंदोलन को तेज करना समय की मांग है और सम्पूर्ण देश को संगठित होकर हिन्दुहित में यह प्रयास करना होगा कि–

क. हिन्दुस्थान की अर्थव्यवस्था पर बढ़ते विदेशी प्रभाव एवं दुष्प्रभाव को बढ़ाने वाले अन्य सभी तत्त्वों का हर स्तर पर विरोध किया जाए।

ख. स्वदेशी आन्दोलन को देशहित में अति महत्त्वपूर्ण माना जाए और स्वदेशी भावना के लिए जनसामान्य में जागृति लायी जाए।

ग. आम जनता एवं जनसेवा में लगे गैर-सरकारी संगठनों का आवाहन किया जाए कि स्वदेशी आन्दोलन को राष्ट्रहित में और तीव्र चलाएँ।

घ. निजीकरण के कारण खत्म हो रही सरकारी नौकरी एवं नियुक्तियों के अवसर के प्रति समाज को जागृत किया जाए। क्योंकि विदेशी आक्रान्ताओं एवं अंगेज शासकों द्वारा उत्पीड़न एवं अत्याचार के कारण बनी दलित जातियों को सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से उनका सशक्तीकरण हो।

ड. आर्थिक रूप से कमजोर दलित एवं पिछड़ी जातियों के आर्थिक सशक्तीकरण हेतु पूंजी एवं निवेश में सरकार के सहयोग द्वारा संतुलन स्थापित हो।

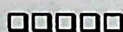
च. आधारभूत ढांचे में सभी वर्गों के लोगों को पर्याप्त भागीदारी प्राप्त करने हेतु वैश्वीकरण को सीमित ही रखा जाए।

छ. विश्व व्यापार समझौते के आधार पर आई हुई विदेशी उद्योगों को हिन्दुस्थान के आन्तरिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना का ज्ञान नहीं रखती, इसलिए हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू जीवन पद्धति के हित एवं संरक्षण हेतु विदेशी उद्योगों का बहिष्कार हो।

ज. अमेरिका द्वारा किया गया परमाणु के क्षेत्र में समझौता देश के साथ एक बड़ा धोखा है, इसे तत्काल निरस्त किया जाय। हमारे सामरिक महत्व के संस्थान का निरीक्षण कोई अन्य करे यह हमे मान्य नही होना चाहिए

हिन्दुत्व का स्वदेशी दर्शन आज न केवल हिन्दुस्थान अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए उपयोगी प्रतीत होता है। प्रत्येक देश को अपनी संस्कृति, अपनी आवश्यकता एवं अपनी जीवन शैली के अनुरूप कल्याणकारी अर्थव्यवस्था का निर्धारण करने का अधिकार है।

आज विश्व व्यापार संगठन एवं अन्याय कानून जो वैश्वीकरण के क्षेत्र में सक्रिय है, जिनके कुपरिणाम सर्वत्र परिलक्षित हैं। ऐसे में हिन्दुत्व का सांस्कृतिक स्वबोध संसार के प्रत्येक देशों को उनके आन्तरिक स्वरूपों की रक्षा एवं उनकी स्व संस्कृति की गतिशीलता तथा निरन्तरता को चिरमान रूप दे सकेगा। हिन्दू स्वदेशी चिन्तन के कल्याणकारी आध्यात्मिक दर्शन की विशेषता यही है कि हिन्दू जीवन पद्धति, हिन्दू ज्ञान तथा हिंन्दुत्व पर आधारित दसा तत्त्व प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक देश एवं कालातीत के लिए लाभदायक हैं। यह कभी भी प्रतिबंधित या निष्प्रयोज्य नहीं हो सकती है। विश्व कल्याणार्थ इनको कभी प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। हिन्दू दर्शन निरन्तर मानव सेवा में निहित ज्ञान-विज्ञान एवं बौद्धिक सम्पदा संरक्षण कानून से बाहर सम्पूर्ण मानव के हितार्थ अवगाहित एवं प्रयुक्त है।



# अध्याय-6

## हिन्दू साहित्य एवं प्रक्षिप्तता

राजनीतिक एवं प्रशासकीय व्यवस्था के साथ-साथ हिन्दू लोक जीवन की सम्यक् व्यवस्था को बनाए रखने में सनातन ग्रन्थों का अमूल्य योगदान स्वीकार किया जाता है। सनातन ग्रन्थ हिन्दू लोक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों, रीतियों, मार्गदर्शक सिद्धान्तों एवं जीवन शैली के निर्धारक विधियां को उपलब्ध कराते हैं। हिन्दू सनातन ग्रन्थों में वेद, पुराण, उपनिषद् एवं स्मृतियों का उल्लेख किया जाता है।

सनातन ग्रन्थों में प्रदत्त विवरण विविधतापूर्ण होने के साथ मानव समाज को उनके अन्यान्य पक्षों को आलोकित करते हैं। इन ग्रन्थों के कथानक व्यवहारिक धरातल या घटे घटनाक्रमों की युक्तिसंगतता के साथ इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि समान्यजन उसे बिना किसी तार्किक प्रयास के स्वीकार कर लेते हैं।

कभी-कभी घटनाक्रमों में आध्यात्मिकता का पुट लाकर घटनाओं को अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है जिसका मूल उद्देश्य लोक जीवन को व्यवस्थित करना होता है। हिन्दुस्थान में लगभग तेरह शताब्दी से विदेशियों के आक्रमण एवं शासन से हिन्दू लोक जीवन व्यापक रूप से छिन्न-भिन्न हुआ है। शासन-सत्ता के लोलुप विदेशी आक्रान्ताओं ने अपने शासन की आयु दीर्घ करने के लिए हिन्दू जीवन पद्धति एवं संस्कृति के मानक धर्मग्रन्थों को नष्ट-भ्रष्ट कर हिन्दू समाज को बाँटने की योजना के अनुसार कार्य किया। परिणामस्वरूप अन्यान्य हिन्दू धर्म ग्रन्थों में भारी मात्रा में अविवेकपूर्ण एवं अतार्किक विषयों का समायोजन हुआ। इस प्रकार धर्म ग्रन्थों में प्रक्षिप्तता के प्रभाव से हिन्दू संस्कृति में कुछ विकृतियाँ व्याप्त हुईं।

प्रस्तुत अध्याय में हिन्दू धर्म ग्रन्थों तथा हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रक्षिप्तता की भावना के अन्तर्गत हिन्दू संस्कृति तथा धर्म ग्रन्थों के साथ भयानक मिलावट, श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के साथ छेड़-छाड़ कुछ उदाहरणों के साथ प्रस्तुत है।

## 6.1 हिन्दू धर्म तथा प्राचीन साहित्य ( धर्मग्रन्थादि )

हिन्दू धर्म से सम्बन्धित विभिन्न धर्म ग्रंथों, स्मृतियों, उपनिषदों, न्याय ग्रंथों और पौराणिक कथा-ग्रंथों के माध्यम से हिन्दुत्व का भाव, दर्शन एवं ज्ञान-विज्ञान, स्वतः आगे बढ़ता रहा। यही हिन्दू वैचारिकी की विशेषता है कि यह स्वतः गतिशील एवं निरन्तर है। इसे आगे बढ़ाने या प्रचारित करने के स्थान पर यह लोक जीवन में मूल रूप से क्रिया-कलापों के माध्यम से मानव के व्यवहार में पाया जाता रहा। धर्म ग्रन्थों की रचना के पीछे तात्कालिक ऋषियों, चिन्तकों और विद्वानों का सुनिश्चित उद्देश्य था। इन ग्रन्थों की विशेषताओं से जाना जा सकता है। उदाहरणार्थ-वेदों में हिन्दू लोक जीवन के जीवन जीने का सिद्धान्त निहित है। पौराणिक ग्रन्थ रामायण अथवा महाभारत में विभिन्न चरित्रों एवं पात्रों के माध्यम से जीवन जीने के वेदों में निहित उक्त सिद्धान्तों का व्यावहारिक उदाहरण एवं प्रस्तुतीकरण है। श्रीमद्‌भागवत गीता में जीवन जीने के लिए चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) कर्म के माध्यम से साधना, तपस्या एवं धार्मिक अनुष्ठानों के साथ दैनिक दिनचर्या में निरूपित हैं।

हिन्दू धर्म ग्रन्थ वेद ज्ञान, विज्ञान अथवा प्रकृति के अनुरूप कार्य करने अथवा प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करते तथा यज्ञादि वैज्ञानिक अनुष्ठानों की प्रविधि का व्यवस्थित एवं अनुसंधानात्मक स्वरूप है। वेद मानव कल्याण हेतु भारतीय ऋषियों द्वारा प्रेषित एक महान उपहार है। अंकगणित एवं अनेक आधुनिक विज्ञान के सिद्धांत का आधार वेद, पुराण एवं अनेक हिन्दू शास्त्र ग्रन्थ हैं। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में किसी व्यक्ति, जाति, स्थान, देश या निश्चित काल से अलग सर्व कल्याणकारी सदैव, कल्याणकारी एवं सर्वत्र कल्याणकारी भाव ही मुख्य रूप से हैं। यही हिन्दू धर्म ग्रन्थों की विशेषता है।

राष्ट्र, समाज और साहित्य के अंतःसम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले साहित्यिक निधियों के आधार पर यह स्वीकार किया गया है कि साहित्य मूल रूप से समाज का दर्पण है। साहित्य की भाषा, उसमें निहित विविधताएं और संस्कृति के जीवन मूल्य राष्ट्र निधि को

संचित रखते हैं। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में भाषाओं एवं बोलियों की बहुलता प्राचीनकाल से ही रही है, लेकिन राष्ट्रभाषा के रूप में संस्कृत भाषा सर्वमान्य थी। आधुनिक हिन्दुस्थान के प्रमुख समाज सुधारक डा॰ अम्बेडकर ने इसे पुनः राष्ट्रभाषा बनाए जाने पर बल दिया था। उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा स्थापित हरिजन संघ के एक अधिवेशन (सन् 1948) में संस्कृत भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने का एक प्रस्ताव भी किया जो मार्ग विस्मृत कुछ दलित नेताओं के प्रचंड विरोध की भेट चढ़ गया। उनकी दूरदृष्टि को यदि तत्कालीन राजनीतिज्ञों ने समझा होता तो आज हमें नये आविष्कारों के लिए पश्चिम की ओर नहीं देखना पड़ता।

हिन्दू धर्म की साहित्यिक निधियों के सम्बन्ध में जनसामान्य को विस्तृत जानकारी 17वीं शताब्दी के बाद, विशेष रूप से 18वीं शताब्दी में प्राप्त हुई, जब अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हित के लिए संस्कृत में लिखे वैदिक ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों और स्मृतियों में कथानकों को तोड़मरोड़कर और जोड़कर अपनी योजनानुसार प्रकाशन एवं मुद्रण करवाया, किन्तु इसके बाद भी आज हिन्दू साहित्य की उपादेयता है।[1] प्रक्षिप्तता को वर्तमान समय में हिन्दू ज्ञान एवं संस्कृत भाषा के विद्वानों ने चिह्नित कर लिया है। शनैः-शनैः इसे पुनः परिष्कृत कर मानव समाज के मार्गदर्शन हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है।

## 6.2 हिन्दू संस्कृति तथा धर्म ग्रन्थों के साथ भयानक छेड़-छाड़

मानव समाज को संगठित एवं लोक जीवन को व्यवस्थित रखने के लिए प्राचीन काल से ही प्रयास किया जा रहा है। इसके लिए हिन्दू धर्म में विभिन्न संस्थाओं, संगठनों, समितियों, वर्गों तथा संवर्गों का गठन भी किया गया है। सामाजिक संस्थाओं एवं पोषक इकाइयों के संचालन के लिए कुछ इकाइयां भी बनाई गई हैं। हिन्दू लोक जीवन में नीतियों एवं संहिताओं के साथ-साथ समाज की निरन्तरता और गतिशीलता के लिए रीति-रिवाज, प्रथाएं तथा परम्पराएं भी प्रभावी रही हैं। मानव समाज के विकास के ऐतिहासिक

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1998

क्रम में लोक-जीवन को संचालित करने वाली हिन्दू संस्कृति के विकास तथा जीवन को नियोजित करने वाले हिन्दू धर्म ग्रन्थों एवं साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। लोक जीवन को मानवीय मूल्यों से संयुक्त कर सम्पत्ति, सुरक्षा, ज्ञान, शान्ति, व्यवस्था एवं विकास की निरन्तरता से आबद्ध रखने का व्यापक प्रयास इन धर्म ग्रन्थों एवं साहित्य के माध्यम से हुआ।

हिन्दुस्थान में विदेशी मुसलमान लुटेरों एवं क्रूर मुगलशासन के पश्चात् अंग्रेजों के शासन में हिन्दू धर्म के आन्तरिक संगठन को तोड़कर 'बाँटो तथा राज्य करो' के सिद्धान्त पर आधारित नीतियां अपनाई गई। वस्तुतः मुगल एवं अंग्रेजों ने अपनी सत्ता के दीर्घायु के लिए हिन्दुओं को आपस में बांटने, भेद-भाव एवं उच्च-निम्न जातियों की अवधारणा को प्रारोपित करने के उद्देश्य से हिन्दू-धर्म ग्रन्थों में बड़ी मात्रा में प्रक्षिप्तता की मिलावट करवाई। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने की बात है कि जन सामान्य को वेदों, स्मृतियों, पुराणों एवं अन्य धर्म ग्रन्थ सुलभ कराने के बहाने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विदेशी लेखकों द्वारा हिन्दू धर्म ग्रन्थों का सम्पादन एवं इनका प्रकाशन किया गया है। 1928 से 1988 के मध्य हुए इस प्रयास के कार्यकाल को ब्रिटिश राज्य का संक्रमण काल (1857 प्रथम आन्दोलन) भी कहा जा सकता है। 1828 में अंग्रेजों द्वारा सम्पादित प्रकाशित प्रथम ग्रन्थ मनु स्मृति है जिसमें अधिकतम प्रक्षिप्तता है। वैसे प्रक्षिप्तता का संक्रमण रोग लगभग सभी हिन्दू धर्म ग्रन्थों में है किन्तु अब इसकी तथ्यपरक जानकारी सामान्य जजों को भी हो चुकी है। प्रकृतिपरक एवं विज्ञान सम्मत हिन्दू धर्म एवं जीवन पद्धति में अब प्रक्षिप्तता का यह रोग औचित्यहीन हो चुका है।

## श्रीमद्भागवत (महाभारत) की कथा के साथ छेड-छाड़

हिन्दू संस्कृति प्रकृति प्रधान एवं भेद-भाव रहित थी। हिन्दू संस्कृति में भेद-भाव करना अवैज्ञानिक एवं अर्थहीन है। पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं का कुप्रचार किया जाता है। श्रीमद्भागवत के वनपर्व की एकलव्य एवं द्रोणाचार्य की कथा हिन्दू समाज को आपस में बांटने के लिए तोड़-मरोड़कर तथ्यों से परे करके देखना हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। आचार्य द्रोण एवं एकलव्य कथा का कुप्रचार किया गया। आचार्य द्रोण से एकलव्य के सम्बन्धों

को उलटा प्रचारित किया जाता है। एकलव्य द्रोणाचार्य की मूर्ति की पूजा करता था। इससे स्पष्ट है कि दोनों के सम्बन्ध ठीक रहे होंगे। एकलव्य एक जंगल का दीन-हीन आदिवासी नहीं अपितु हस्तिनापुर के सबसे बड़े दुश्मन जरासंध के प्रधान सेनापति का बेटा था। वह मंत्री पुत्र था। द्रोणाचार्य दुश्मन के पुत्र को वह भी हस्तिनापुर के राजकुमारों के साथ कैसे शिक्षा दे सकते थे। उन्होंने उसकी इच्छा को भाँपकर उसे स्नेह के साथ आशीर्वाद देकर वापस किया था। परिणाम स्वरूप वह मूर्ति से हीं सब कुछ सीख गया। अंगूठा काटने का कारण था उसे अर्जुन की ही तरह शव्यसाँची बनाना। धनुष पकड़ने के लिए अंगूठे की आवश्यकता नहीं होती। अंगूठा प्रत्यंचा खींचने के लिए आवश्यक था। दाहिने हाथ के अंगूठे के कटने से वह वामहस्ती धनुर्धर होकर अर्जुन के समकक्ष हुआ, क्योंकि उसने द्रोणाचार्य से अर्जुन के बराबर होने का वरदान प्राप्त कर लिया था।[2] गैर राजकुमारों को शिक्षा न देने की प्रतिबद्धता के कारण द्रोणाचार्य को यह कृत्य रहस्यमय ढंग से करना पड़ा। तीन घरेलू लड़ाइयों में एकलव्य ने युद्ध किया। महाभारत में अर्हता पूरी न करने के कारण वह भाग नहीं ले सका।

वास्तव में एकलव्य के सम्बन्ध में चर्चा करते समय इन कुछ प्रमुख बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है—**प्रथम**, एकलव्य एवं द्रोणाचार्य के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे क्योंकि एकलव्य उनकी मूर्ति बनाकर उसी के माध्यम से गूढ़ धनुर्विद्या को प्राप्त करने में सफल हुआ। **द्वितीय**, उसके धनुर्विद्या सिखाने की अभिव्यक्ति पर उसे आश्रम से अपमानित करके नहीं, अपितु द्रोणाचार्य द्वारा असमर्थता व्यक्त करके किन्तु पवित्र हृदय से आशीर्वाद देकर वापस किया गया था। **तृतीय**, असमर्थता यह थी कि वे सिर्फ हस्तिनापुर के राजकुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा दे रहे थे। **चतुर्थ**, वैसे भी एकलव्य हस्तिनापुर के सबसे बडे शत्रु जरासन्ध के प्रमुख सेनापति का बेटा था। शत्रु पक्ष के व्यक्ति को वह भी हस्तिनापुर के राजकुमारों के साथ कैसे गुरुकुल में रखा जा सकता था? **पंचम**, द्रोणाचार्य ने सहृदयतावश ही एकलव्य से वरदान मांगने को

2. श्रीमद्भागवत, वनपर्व कथा

कहा और एकलव्य द्वारा अर्जुन के बराबर होने का वरदान मांगा गया। द्रोणाचार्य के प्रति एकलव्य को घृणा होती तो वह वैरभाववश वरदान के रूप में द्रोणाचार्य की गर्दन या कुछ भी मांग सकता था। किन्तु उनके मध्य ऐसे भाव नहीं थे, इसलिए उसने अर्जुन के बराबर होने के लिए वरदान मांगा। **षष्ठ**, एकलव्य के मांगे गए उक्त वरदान को देने के लिए द्रोणाचार्य ने एक पल भी गँवाए बिना कहा था–'तथास्तु' यानी अर्जुन के बराबर हो जाओ। **सप्तम्**, फिर ऐसा कहने के बाद यानी वचन देने के बाद दोणाचार्य द्वारा गुरु दक्षिणा में अंगुठा मांगना ही कोई विशिष्ट प्रायोजन की तरह स्पष्ट संकेत था। **अष्टम्**, अर्जुन शव्यसाँची धनुर्धर था। उसका एक नाम सव्यसाँची भी है। 'शव्यसाँची' का अर्थ वामहस्ती होता है।[3] अर्जुन बाँए हाथ से धनुष साधता था। एकलव्य दाहिने हाथ का धनुर्धर था। यह सूक्ष्म अन्तर द्रोणाचार्य को पता था। इसीलिए गुरुदक्षिणा में दाहिने हाथ का अंगुठा प्राप्त कर वचन भंग के दोष से स्वयं को बचाते हुए द्रोणाचार्य ने एकलव्य को वामहस्ती बनाकर अर्जुन के बराबर होने के लिए उसके द्वारा मांगे गए वरदान को तत्काल पूर्ण कर दिया।

आज हिन्दू विरोधी ताकतें एकलव्य की इस प्रघटना को नकारात्मक अर्थ में प्रचार करके हिन्दू धर्म में तथाकथित दलित समाज एवं अन्य के बीच गहरी खाई खोदकर अलग-अलग करने का प्रयास करती हैं। सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा दलित समाज अपने ही लोगों के लिए घृणा एवं रोष भाव के साथ समाज में रह रहा है। आज समाज में उच्च-निम्न का भेदभाव तथा दलितों के लिए तिरस्कार का स्थाई भाव हिन्दू समाज की सामाजिक समरसता की भावना को खंडित कर रहा है। सम्पूर्ण हिन्दू केवल 'हिन्दू' है। उच्च-निम्न का भाव जाति नहीं, बल्कि गुण आधारित होना चाहिए। गुणवान एवं योग्य व्यक्ति चाहे वह जो भी हो, उसका सम्पूर्ण समाज आदर करे।

## श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के साथ छेड़-छाड़

भारतीय धर्मग्रन्थों मं प्रक्षिप्तता यानी मिलावट की स्थिति यह

3. अपसब्य का अर्थ शरीर का दक्षिण भाग यानी वाया भाग, शब्द कल्पद्रमः राजा राधाकान्तादेव, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

है कि आज अगर सावधानी न बरती जाय तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। क्या कोई यह अनुमान लगा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण ग्रन्थ में प्रक्षिप्तता है? मर्यादा पुरुषोत्तम राम की वीरता, नीतिसंगत कर्तव्यनिष्ठा, मर्यादित आचरण, सामाजिक न्याय, निस्वार्थ लोकसेवा, धर्म पर आधारित राज्य संचालन एवं उनके राज्य में सुख-समृद्धि तथा प्रसन्नता पर कोई संदेह नहीं था। महर्षि वाल्मीकि ने युद्ध काण्ड के अन्तिम बीस श्लोकों में फलश्रुति के रूप में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण राज्य में सुख-समृद्धि-शान्ति थी।[4] प्रत्येक व्यक्ति संतुष्ट था। राम के राज्य में पिता के रहते किसी पुत्र की मृत्यु नहीं हो सकती थी। कोई नारी विधवा नहीं होती थी। कोई किसी पर संदेह नहीं करता था। चारों ओर राम और राम और राम ही की चर्चा थी। उनके गुणगान करते हुए प्रजा नहीं अघाती थी।

विद्वत्जन अगर ध्यान से वाल्मीकि रामायण का अध्ययन एवं अवलोकन करें तो स्वतः इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि वाल्मीकि जी ने अपने इस महाग्रन्थ का उपसंहार युद्ध काण्ड के अन्त में ही किया है। ग्रन्थ के पूर्ण होने की सम्पूर्ण प्रक्रिया, परम्परा तथा सिद्धांत का पालन करते हुए उन्होंने लिखा है कि वाल्मीकि कृत इस महाकाव्य को पढ़ने एवं सुनने से क्या-क्या फल प्राप्त होगा। पुरुष राजा दशरथ की तरह युवक लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न की तरह और नारी मां कौशल्या की तरह स्थान प्राप्त करेगी। घर में सुख-समृद्धि और समाज में निरन्तर शान्ति तथा प्रसन्नता रहेगी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रामायण ग्रन्थ में युद्ध काण्ड के बाद फलश्रुति का तात्पर्य है कि रामकथा युद्धकाण्ड के बाद समाप्त हो गई।[5] किन्तु उत्तरकाण्ड बाद में जोड़कर भगवान श्रीराम के मर्यादित चरित्र की छवि को नष्ट करने का कुप्रयास मात्र है।

युद्धकाण्ड के बाद राम कथा के समापन का एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं पुष्ट प्रमाण है। वाल्मीकि जी ने रामायण

---

4. श्रीमदवाल्मीकीय रामायणम्, युद्धकाण्डम्, अन्तिम (128) सर्ग, 98–128
5. रामायणमिदं कृतत्नं श्रुण्वतः पठतः सदा। प्रीयते सततं रामः सहि विष्णुः सनातनः।। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् युद्धकाण्डम् अंतिम सर्ग (128) 119

महाकाव्य की रचना के पूर्व भगवान श्रीराम की कथा का श्रवण किया था। श्रीमद्वाल्मीकि कृत रामायण के बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद द्वारा वाल्मीकि जी को भगवान श्रीराम की कथा संक्षेप में सुनाई गई है। प्रथम सर्ग में कुल एक सौ श्लोक हैं। देवर्षि नारद द्वारा महर्षि वाल्मीकि को सुनाई संक्षिप्त कथा भी राम-रावण युद्ध के उपरान्त विभीषण को लंका का राज्य सौंपने के बाद अयोध्या आकर पुनः राज्य प्राप्त करके प्रजा की सेवा में लग जाने के बाद ग्यारह हजार वर्षों तक लगातार राज्य करने के उल्लेख के साथ समाप्त है। इस सर्ग के अन्त के कुछ श्लोकों में नारद जी द्वारा राम राज्य की विशेषता एवं रामकथा की फलश्रुति का भी वर्णन है।[6] इस प्रकार इन तथ्यों से भी यह स्पष्ट होता है कि रामायण महाकाव्य युद्धकाण्ड के उपरान्त समाप्त हो गया था। तत्पश्चात उत्तरकाण्ड को जोड़ने का उद्देश्य अवश्य ही हिन्दू धर्म के प्रति कुचक्र एवं षड्यंत्र को उजागर करता है। नारद जी ने सम्पूर्ण रामकथा भूतकाल में एवं रामराज्य की विशेषता तथा फलश्रुति को भविष्य काल के कृत के रूप में प्रस्तुत किया है। किन्तु महर्षि वाल्मीकि जी ने रामकथा को तो भूतकाल में तथा रामराज्य की विशेषता एवं फलश्रुति वर्तमान और भविष्यकाल यानी दोनों कालों के संदर्भ में संप्रेषित किया है। इस आधार पर भी पुनः उत्तरकाण्ड का कोई औचित्य नहीं है।

वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण तो युद्ध काण्ड पर ही समाप्त होता है, किन्तु हिन्दू धर्म विरोधियों के कुकृत्य के रूप में उत्तरकाण्ड आज हम लोगों के बीच है। किसी भी संस्कृति के सम्वर्धन में उस संस्कृति के मानदंड के साथ उससे सम्बन्धित साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। हिन्दू धर्म के पौराणिक ग्रन्थों के साथ स्मृतियों, उपनिषदों एवं न्याय ग्रन्थों के साथ व्यापक छेड़-छाड़ हुई है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम द्वारा स्थापित सम्पूर्ण आदर्श एवं त्याग का पूर्णरूपेण खण्डन ही उत्तर काण्ड की विषयवस्तु है। पूर्ववर्ती एक-एक तथ्य जो राम चरित्र के साथ वर्णित हैं, उनकी

---

6. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, प्रथम सर्ग, 1-100

निर्लज्जता एवं धूर्तता पूर्वक खण्डन ही उत्तर काण्ड में प्रस्तुत किया गया है। उत्तर काण्ड किसी चतुर व्यक्ति द्वारा दुर्भावनावश लिखा गया है। उदाहरणार्थ शम्बूक की कथा को देखा जा सकता है। वाल्मीकि द्वारा रचित सबरी की कथा जिसमें वनवासी सबरी एवं राम के मिलाप का मार्मिक चित्रण जो मतंग ऋषि के आश्रम में पम्पा सरोवर के किनारे वर्णित हैं। इसी प्रकरण को सबरी नाम से मिलता -जुलता नाम 'शम्बूक' जिसकी अकारण ही राम के हाथों हत्या उसी पम्पा सरोवर पर कराई गई है। दिशा, स्थान एवं ऋषि का नाम तथा उसी आश्रम के उत्तर दिशा में बड़े सरोवर का उल्लेख किया, किन्तु केवल 'पम्पा सरोवर' नाम की जगह 'एक सरोवर' का नाम है। उत्तर काण्ड में राम द्वारा अपकीर्ति भय एवं आत्मकेन्द्रित भाव, सीता का त्याग, लवकुश कथा, शम्बूक कथा, धोबी द्वारा पत्नी पर संदेह, पिता के रहते ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु, जनता में राम के प्रति घृणा इत्यादि का वर्णन राम के मर्यादित आचरण, वीरता, न्याय तथा रामराज्य के आदर्श स्वरूप के खण्डन के अलावा कुछ नहीं है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित युद्ध काण्ड एवं उपसंहार निहितार्थ तीस श्लोकों को लक्ष्य बनाकर उनके खण्डन के रूप में उत्तर काण्ड रचकर हिन्दू धर्म विरोधियों ने हिन्दू धर्म की एकता, अखण्डता एवं विशेषताओं को नष्ट-भ्रष्ट करने का ही प्रयास किया है।

## 6.3 हिन्दू धर्म ग्रन्थों का घृणास्पद दुष्प्रचार

हिन्दुस्थान में हिन्दू धर्म ग्रंथों की अपनी मान्यता है। विशेषतः सामाजिक मूल्य, आध्यात्मिक दर्शन और लोक जीवन की व्यावहारिक व्यवस्था सुनिश्चित है। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर धार्मिक ग्रन्थों की प्रक्षिप्त मान्यताओं को दिशा निर्देशक के रूप में प्रयोग किया जाता था। वस्तुतः वेद एवं अन्य वैदिक ग्रन्थों की अनेकों शाखाओं में मानव जीवन जीने के सिद्धान्त दर्शाए गए हैं।

पौराणिक ग्रंथों में यानी श्रीमद्वाल्मीकि रामायणम् तथा महर्षि व्यासकृत् श्रीमद्भागवत में जीवन जीने के व्यवहारिक पक्ष के यथार्थ रूप का संदर्भ निहित है कि किन-किन आदर्श मूल्यों एवं सामाजिक मान्यताओं को व्यवहृत करते हुए मर्यादित जीवन जी सकें। हिन्दू धर्म ग्रंथ के रूप में अत्यन्त मर्यादित श्रीमद्भागवतगीता में साधना एवं

तपस्या के साथ अध्यात्म से युक्त सफल जीवन जीने रूपी लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

हिन्दू लोक जीवन की परम्परागत व्यवस्था वेद, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, स्मृति, महाभारत, बाल्मीकि कृत् रामायण, पुराण और तुलसी कृत् रामचरित मानस जैसे व्यवस्था प्रधान ग्रंथों से सम्बद्ध है। सामाजिक एवं नैतिक धरातल पर प्राप्य विधि की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए उन ग्रंथों को आधुनिक विधि के व्याख्याकारों द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। मानव समाज के लम्बे विकास क्रम में व्यवस्थापरक विधियों को संहिताबद्ध कर उन्हें हिन्दू लोक जीवन में व्यवहृत किया जाना हिन्दुस्थान के ऋषियों की प्रज्ञा का ही प्रतिफल है। सनातन समाज इसे यथावत अंगीकार करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उस संहिता से उद्धहरण भी प्रदान करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सनातन समाज को विघटित करने वाले लोग प्राचीन काल में रहे होंगे और सामाजिक समरसता तथा भेदभाव रहित लोक जीवन का परम्परागत अस्तित्व उनके अपने अस्तित्व के लिए बाधक रहा होगा। प्रक्षिप्त कथानकों के कारण एवं व्यवस्था परक संहिताएं सामान्य जनों के मानसपटल और ज्ञान पर आवरण चढ़ा देती है। तात्पर्य यह कि कुरीतियां अपनी शीघ्र ग्राहृता के कारण मौलिक ज्ञान परम्परा के समक्ष सामाजिक विघटन के रूप में कठोर अभिकरण का कार्य करती है, जिन्हें भेद पाना सामान्य व्यक्ति के लिए दुष्कर होता है।

यह स्थिति कमजोर वर्गों में अधिक सरलता से अपनी ग्राह्यता को स्थायी बना देती है। आर्थिक तथा शैक्षिक पिछड़ापन एवं युक्तिसंगत वैयक्तिक दर्शन की स्थानीय दशाएं कमजोर वर्गों को और अधिक कमजोर बनाती है। सभ्यता और संस्कृति के आदर्शमानक हिन्दू लोक जीवन में व्यहत नहीं होते, अपितु उन्हें लौहस्तम्भ के रूप प्रतिमानित सिद्धान्त स्वीकार कर भाव दर्शन बना दिया गया है। प्रगतिहीन मान्यताओं से समाज के कमजोर एवं दलित वर्ग के प्रभावित होने की स्थिति अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक तीव्र पाई जाती है। संहिताओं के प्रक्षिप्त श्लोक या कथानक इसमें अपना प्रभावी योगदान देते हैं। विद्वानों ने भी यह स्वीकार किया है कि मनुस्मृति में भी कई कथानक एवं श्लोक प्रक्षिप्त हैं और यही मूल

कारण है कि कुछ विद्वान मनुस्मृति को एक से अधिक लोगों की रचना स्वीकार करते हैं। तथ्यत: मनुस्मृति के मौलिक सूत्र हिन्दू लोक जीवन को सरल और संवहनीय बनाने के लिए व्यवस्था परक रहें होंगे जिसमें हिन्दू समाज को रंचमात्र भी संदेह नहीं करना चाहिए। व्यवस्था के विपरीत जो संहिताएं प्रक्षिप्त की गई हैं उन्हें त्यागना ही समाज के कल्याण के लिए सकारात्मक स्वीकार किया जा सकता है। क्या वैज्ञानिक आधार पर हिन्दू समाज यह स्वीकार करेगा कि शूद्र की छाया ब्राह्मण अथवा अन्य वर्ण के लोगों को अपवित्र कर सकती है, क्या शूद्र वर्ण के लोग हिन्दू लोक जीवन को नियमित करने वाली संहिताओं का ज्ञान रखने के अधिकारी नहीं हैं। मूल तथ्य है कि यदि ब्राह्मण एवं सभी तीनों वर्णो का नियन्ता एक है और परमसत्ता का नायक एक है तो उसके सूक्ष्म कणों एवं विम्बों में जो उससे ही उत्पन्न हुए हैं असम्बद्धता कहां, क्यों और कैसे स्वीकार की जा सकती है।[7]

आधुनिक विज्ञान यह स्वीकार करने लगा है कि प्रत्येक परमाणु का केन्द्रीय गुण अदृश्य उर्जा है जो रूपहीन, गंधहीन, स्वादहीन और अदृश्य है तथा उसके निर्माण में निहित शक्तियों में अभिन्नता व्याप्त है। प्रत्येक की मूल शक्ति एक है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में भी वह विराट का ही अणु है। उसमें गत्यात्मकता है। विस्फोट और विदीर्ण करने की अपार क्षमता है। उसमें शाश्वत बने रहने का गुण निहित है। गत्यात्मकता के कारण परिवर्तन भी उसका गुण है। उसकी अदृश्य अभिव्यक्ति उसके होने का आभास कराती है। तात्पर्य यह है कि शरीर के आकार-प्रकार, वर्ण और गुण की भिन्नता से उसके संचालक शक्ति में भिन्नता स्वीकार नहीं की जा सकती। यदि प्राण वायु में साम्यता है और उसके प्रधान गुण अभिन्न हैं तो किस आधार पर प्रधान संहिताकार विघटनकारी व्यवस्था को प्रेषित करने वाली संहिता का अथवा विधि का निरूपण करेगा।

मनुस्मृति में प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह उच्च वर्ण का हो या शूद्र वर्ण का हो, आदर का पात्र बताया गया है। निर्बल तथा असहायों की रक्षा करें, तो किस आधार पर समाज से उसे अलग-थलग करने वाली विधि की मान्यता प्रदान की जा सकती है। निष्कर्ष रूप

7. नासदासीन्तो सदासीत ऋग्वेद, 8.7.17.

में हम यह कह सकते हैं कि भेदभाव, अस्पृश्यता और ऊंच-निम्न की भावना को विकसित करने वाली रीतियां, प्रथाएं एवं परम्पराएं स्वार्थयुक्त प्रकृति के लोगों का षड्यंत्र है। परम्परागत वर्णों की अपनी व्यवस्था थी। प्रत्येक वर्ण व्यवसाय विशेष से सम्बद्ध था। कर्म के गुण व्यक्ति विशेष को वर्ण विशेष से सम्बद्ध कर देते हैं। उनमें छुआछूत या वैयक्तिक भेदभाव का कोई स्थान नहीं था।

आधुनिक हिन्दू समाज पर सर्वाधिक प्रभाव प्राचीन ग्रंथों के साथ-साथ स्वामी तुलसीदास द्वारा लिखे गए रामचरितमानस का भी है। मुगल काल जब अपनी यौवनावस्था में था तब इस सन्त ने राम के चरित्र का मर्यादायुक्त पुरुषों में उत्तम पुरुष के चरित्र के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन समाज को पथ भ्रष्ट होने से बचाने का सम्यक् प्रयास किया। पिता, पुत्र, मां, परिवार लोक जीवन के विविध ईश्वरीय अथवा आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान, युद्ध आदि इन विषयों पर मर्यादित वैदिक मान्यताएं जनमानस तक पहुंचाई गई। विगत पांच सौ वर्षों में इसके अन्तर्गत भी कुछ दोहे, चौपाइयां, छन्द और सोरठों का गलत अर्थ निकाला गया। यथा-ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड्न के अधिकारी।

## 6.4 हिन्दुस्थान में विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का आक्रमण

हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रक्षिप्तता एवं हिन्दुओं के प्रति भयानक दुर्भावना के संदर्भ में तथ्यात्मक अध्ययन हेतु उन पृष्ठों को भी पलटना अनुचित नहीं है जिन पर स्पष्ट रूप से वर्णित है कि देश के पश्चिमी तट पर एक शरणार्थी के रूप में रोजी-रोटी प्राप्त करने के लिए अरब देशों की मुस्लिम जनसंख्या हिन्दुस्थान के सम्मुख नतमस्तक थी। ईमान पर कुर्बान होने का ढोंग करने वाले लोग इस्लामी जेहाद में इतने अंधे हो गए कि आस्तीन के सांप की तरह इस देश को डंसने लगे। उन्होंने अपने अन्नदाता पर ही आक्रमण कर दिया। उनके चरणबद्ध आक्रमणों का प्रहार झेलते हुए हिन्दुस्थान ने कड़ा प्रत्युत्तर दिया। परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं के द्वारा प्रारोपित आन्तरिक कलह एवं वैमनष्यता के कारण हिन्दू संगठन की कमजोर पड़ गई दीवार अभेद्य नहीं रही। फिर भी देवल और मुल्तान विजय तक सीमित रहने वाला मुहम्मद बिन कासिम कन्नौज के प्रतिहार

राजवंश से उलझने का साहस नहीं कर सका। इसलिए उसको उसके ही खलीफा सुलेमान ने भारत से वापस बुला लिया और कैद करके मैसोपोटामिया भेज दिया जहां 715-716 ई में उसकी मृत्यु हो गई।

750 ई. में ईरानी क्रांति के फलस्वरूप उमय्यद खलीफाओं का अन्त हो गया और उनके स्थान पर अब्बासी खलीफाओं की स्थापना हुई जिसके चलते इस्लामी साम्राज्य में अरबों का वर्चस्व समाप्त हो गया और उनके स्थान पर ईरानियों का प्रभाव बढ़ने लगा। इस्लाम के इस राजनैतिक दौड़ में शीघ्र ही एक नई शक्ति का अभ्युदय हुआ जिसको हम 'तुर्क' जाति के नाम से जानते हैं। तुर्कों का हिन्दुस्थान पर आक्रमण दसवीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हो चुका था। गजनी पर अधिकार करने के बाद अत्पतिगीन ने हिन्दुस्थान पर अनेक हमले किए। वह मुल्तान और लमघान को लूट कर बहुत सा धन और गुलाम अपने साथ ले गया। परन्तु उसके पुत्र अयोग्य निकले, फलस्वरूप उसका दामाद सुबुक्तिगीन 20 अप्रैल, 977 ई. को गजनी का शासक बना। उसने काबुल के हिन्दू शासक जयपाल पर अनेक आक्रमण किए। अंधविश्वास के कारण जयपाल पराजित हुआ। लमघान और पेशावर के बीच का बड़ा भूभाग तथा अपार धन-सम्पदा सुबुक्तिबीन के हाथ लगा।

सुबुक्तिगीन का पुत्र सुल्तान महमूद भी गजनी का शासक बनने के बाद हिन्दुस्थान पर आक्रमण किया और यहां की अपार सम्पदा को लूटा था। उसने भी सर्वप्रथम जयपाल पर ही आक्रमण किया। 27 नवम्बर, 1001 ई को उसने जयपाल को बन्दी बना लिया। लगभग पांच लाख स्त्री-पुरुष भी बन्दी एवं गुलाम बना लिए गए। अपार सम्पदा लूटी गई। जयपाल से हर्जाना वसूला गया। अपमान सहन न करने के कारण जयपाल ने आत्मदाह कर लिया। उसके स्थान पर उसका पुत्र आनन्दपाल राजा बना। सुल्तान महमूद ने दूसरी ओर बीजाराय के भटिण्डा नगर पर भी आक्रमण करके अपार सम्पत्ति लूटी थी। मुल्तान पर आक्रमण करके वहां के सूर्यकुण्ड एवं सूर्यमंदिर को नष्ट किया और ढेरों सम्पदा प्राप्त की। उसने पुनः मुल्तान, नगरकोट, थानेश्वर, नन्दना, आदि को जीता एवं लूटा। कश्मीर पर असफल आक्रमण करने के बाद वह दोआब तथा मध्य

भारत पर भी आक्रमण किया। उसने कालिंजर पर आक्रमण किया तथा सोमनाथ को लूटा।

सुल्तान महमूद के बाद उसका पुत्र मुहम्मद गद्दी पर बैठा परन्तु उसे अपदस्थ करके महमूद का भाई मसूद प्रथम गजनी का शासक बना। उसने नियालतिगीन के नेतृत्व में बनारस पर आक्रमण करके इस नगर को लूटा था। पंजाब पर अधिकार किया और सोनीपत को भी लूटा। दुबारा हिन्दुस्थान की ओर उन्मुख होने पर उसे अपनी जान गंवानी पड़ी। उसके प्रतिनिधि शासक परमार–भोज और कलचुरी कर्ण से इतने भयभीत रहे कि पंजाब से बाहर किसी अन्य प्रांतों पर आक्रमण करने का साहस न कर सके। गजनवी वंश के अंतिम शासक खुसरू मलिक के समय तक हिन्दुस्थान पर तुर्कों द्वारा छिटपुट आक्रमण एवं लूटपाट होते रहे। तदुपरान्त मुहम्मद गौरी ने गजनी की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

मुहम्मद गौरी ने भी हिन्दुस्थान पर अनेक आक्रमण किए। अनेक पराजयों के बाद उसे विजय हासिल हुई थी। उसने भी हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने और लूटपाट करके अपार सम्पदा एवं गुलाम ले जाने का ही कार्य अधिक किया। अतएव मुहम्मद बिन कासिम से लेकर मुहम्मद गौरी तक के तुर्क आक्रामकों को केवल आक्रमणकर्ता ही माना जाता है। मुहम्मद गौरी का गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने हिन्दुस्थान में स्थायी रूप से शासन स्थापित किया था। अतएव उसके बाद के सभी सुल्तान एवं मुगल वंश के बादशाह, केवल लुटेरे आक्रान्ता ही नहीं, अपितु शासक एवं वह भी गुलाम वंश के शासक कहे जाते हैं। यद्यपि कि राज्य–विस्तार के लिए वे भी निरन्तर युद्ध और आक्रमण में लिप्त रहे।

विदेशी मुसलमान आक्रान्ताओं के आक्रमण का प्रमुख कारण हिन्दुस्थान की समृद्धि को छिन्न–भिन्न करके यहाँ की सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने से था। आक्रमणकारी तुर्कों की इच्छा थी कि पूरे हिन्दू समाज को मुस्लिम समाज एवं संस्कृति में परिवर्तित कर दिया जाए। इसके लिए उन्होंने अनेक हत्याएं कीं, निर्दोष एवं भोले–भाले लोगों को डराया और धमकाया, उन्हें गुलाम बनाकर उनका शोषण किया, उनकी धन–सम्पदा को लूटकर उनको भिखारी

बना दिया, उनके धार्मिक आस्था के प्रतीक देवी-देवताओं को अपमानित किया और मंदिरों तथा मूर्तियों को आस्था का प्रतीक होने के कारण ही तोड़ा भी।[8] हिन्दू लोगों पर धर्म परिवर्तन करने का दबाव भी उन्होंने काफी बढ़ाया था। दबाव में कुछ हिन्दू राजा मुसलमान बन जाते थे, किन्तु पुनः वे हिन्दू धर्म अपना लेते थे। उस समय निरंकुश राजनीति के अन्तर्गत जनता का शोषण तथा उत्पीड़न हो रहा था।

विदेशी आक्रान्ता मुसलमानों के स्वाभावमानी हिन्दुओं एवं हिन्दू धर्म रक्षकों से लगातार रक्तिम संघर्ष होते रहे हैं। हिन्दुओं द्वारा कड़े प्रतिरोध के कारण मुसलमान शासकों ने यह रणनीति बनाई कि हिन्दुओं को गुलाम एवं हिन्दुस्थान पर यदि शासन करना है तो हिन्दू धर्म को नष्ट करना आवश्यक है। उन्हें यह ज्ञान नहीं था किं प्रकृति पर आधरित हिन्दू धर्म इस्लाम एवं ईसाइयत की तरह मात्र कुछ रीति-रिवाज एवं प्रथाओं से सम्बन्धित नहीं है। बल्कि हिन्दू जीवन पद्धति एवं हिन्दू संस्कृति पूर्णरूपेण प्रकृतिमार्गी एवं प्रकृति के क्रिया-प्रक्रिया पर आधारित है। जब उन्हें यह समझ में आया तो उन्होंने न केवल मंदिर एवं देवालय बल्कि हिन्दू धर्म ग्रन्थों को खोज-खोज कर नष्ट करना प्रारम्भ किया। नालन्दा ग्रन्थालय तो महीनों भर जलता ही रहा। मुस्लिम एवं मुगल बादशाओं द्वारा दबाव डालकर विद्वान ब्राह्मणों से उल्टे-सीधे श्लोकों की रचना करवाया गया। उनके इस प्रकार के प्रक्षिप्तता का कारण हिन्दुस्थान की सामाजिक एकता एवं समरसता को नष्ट-भष्ट करना था। परिणामस्वरूप यहां की सामाजिक एकता एवं समरसता को इन्होंने इतना तार-तार कर दिया कि स्वतंत्रता मिलने के बाद से आज तक उनकां एकत्रित करने हेतु प्रयास हो रहे हैं। किन्तु सामाजिक समरसता के अभाव में हिन्दू समाज पूर्व की भांति एकत्रित एवं सुदृढ़ नहीं हो पा रहा है। जातिवाद, क्षेत्रवाद, आदि में देश का इस तरह से विभाजन हो गया है कि वर्तमान राजनीतिक लाभ के हेतु से भी भेदभाव कम करने को प्राथमिकता नहीं दी जा रही है।

---

8. डा. सुमनलता सोनकर शास्त्री, मध्यकालीन भारत की व्यापार व्यवस्था का ऐतिहासिक अनुशीलन, शोधप्रबंध इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2002

## 6.5 हिन्दू साहित्य का ईसाई मिशनों द्वारा ईर्ष्या द्वेष बढ़ाने हेतु प्रदूषित प्रकाशन

हिन्दू धर्म ग्रन्थों के साथ प्रक्षिप्त अंश जोड़ने के विषय में ईर्ष्या एवं द्वेष जैसे भाव एवं मनोवृत्ति निर्मित करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने भी व्यापक प्रयास किया। प्रारम्भ में इस्लाम मानने वाले लोगों को अंग्रेजों द्वारा शासकवंशी होने के कारण विशेष प्रश्रय दिया जाता रहा। उनकी संख्या भी कम थी इसलिए भी उन्हें अंग्रेजों द्वारा लगातार महत्त्व मिलता रहा। ऐसे में मुसलमान शासकों से धर्म रक्षा एवं स्वाभिमान की लड़ाई लड़ने वाला हिन्दू समाज लगातार कठिन परिस्थितियों में था। मुसलमानों के अत्याचार की कमी के बाद ज्योंही हिन्दू समाज अंग्रेजी शासन में सरस एवं सहज हुआ तो अंग्रेजों के उत्पीड़न का शिकार होने लगा। तत्पश्चात् जब अंग्रेजों से स्वतंत्रता का संघर्ष प्रारम्भ हुआ तो हिन्दुओं के एकजुटता को भंग करने के उद्देश्य से उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक रूप से बांटने का योजनाबद्ध सफल प्रयास अंग्रेजी शासन द्वारा हुआ। सर्वप्रथम जब अंगेज आदिवासी क्षेत्रों पर अधिकार नहीं कर सके तो उन्हें ईसाई मिशनरियों को सौंप दिया। हिन्दुस्थान के इतिहास का यह भी एक कटु सत्य है कि मुसलमान शासकों के उत्पीड़न से विस्थापित हुई हिन्दू संख्या जो जंगलों में आदिवासियों के रूप में चिंह्नित हुई, उनके कड़े प्रतिरोध के कारण मुगल एवं अंग्रेज दोनों आदिवासी क्षेत्रों पर शासन करने में सफल नहीं हुए। हिन्दुस्थान का आदिवासी क्षेत्र सदैव स्वतंत्र रहा। कालान्तर में ईसाइयत का प्रचार करने वाले ईसाइ मिशनरियों लालच देकर वहां बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन करानें में सफल रहे।

ब्रिटिश काल में ईसाई मिशनरियों को गोपनीय आदेश प्राप्त था कि वह लोगों में ईर्ष्या, द्वेष एवं भेदभाव उत्पन्न करने के लिए हर प्रकार से प्रयास करें। उन्होंने सर्वप्रथम आदिवासी हिन्दू समाज पर ध्यान दिया, क्योंकि वे अभाव एवं गरीबी की मार झेल रहे थे। उनको प्रत्येक प्रकार की सुविधाएं देकर उनको शिक्षित करने और नाम अंग्रेजी पद्धति पर रखने का काम किया। उनको फादर, मदर, सम्बोधित किया। उनको अध्ययन के लिए अपना बाइबिल दिया और ईशु से सम्बन्धित साहित्य निःशुल्क रूप में वितरित किया। हिन्दू धर्म ग्रंथों के प्रति ईशु-साहित्य में ईर्ष्या एवं द्वेष का भाव विद्यमान था

और उसका अध्ययन करने से वही ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना हिन्दू समाज के प्रति भी उत्पन्न हुई और हिन्दू लोक जीवन विखण्डन की ओर अग्रसर हुआ।

स्वतंत्र हिन्दुस्थान में भी ईसाई मिशन यहां की पंथनिरपेक्षता की ओट में प्रदूषित ईर्ष्या एवं द्वेष बढ़ाने वाले साहित्य का प्रकाशन निरन्तर जारी रखे हुए है। उन्होंने भारी संख्या में नर्सरी स्कूलों को चला रखा है और उनमें गैर हिन्दू परम्परागत विधि से पठन-पाठन कराया जाता है। उन विद्यालयों के विषय-क्षेत्र में वे अपनी संस्कृति के अनुसार मुद्रित एवं प्रकाशित पुस्तकों को चला रहा है। ऐसे राष्ट्रीय अपराध कार्यों को शासन स्तर से प्रोत्साहित किया जा रहा है और हिन्दू समाज भी विदेशी शिक्षा में दक्षता की लालच से उस ओर विशेषकर आकर्षित है। इसको रोकने के लिए किए जाने वाले किसी भी प्रयास पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है और उन प्रतिरोधों को साम्प्रदायिकता की कार्यवाही कही जा रही है।

ईसाई मिशनरियों द्वारा जो साहित्य प्रकाशित किए जा रहे हैं, वे लुभावने कागजों पर सुन्दरतम मुद्रण के रूप में उपलब्ध हैं। उनकी कीमत प्रकाशन लागत से भी कम करके रखी जा रही है, ताकि इस सस्ते साहित्य को लोग आसानी के साथ संकलित कर सकें और उनको पढ़कर अपनी मानसिकता को ईसाई मिशनों की ओर उन्मुख कर सकें। मिशनों द्वारा प्रकाशित अनेक पत्र-पत्रिकाएं विभिन्न स्थानों को निःशुल्क भेजी जाती हैं। इन साहित्यों में पश्चिमी जगत के जीवन मूल्यों की झांकी होती है जिसकी ओर हिन्दुस्थान के नवयुवकों को आकर्षित किया गया होता है। 'वेलन्टाइन डे' आदि की बीमारी ईसाई साहित्य की देन है।

ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रकाशित साहित्य में हिन्दू लोक जीवन में स्थापित बहुमूल्य सम्बन्धों को दर-किनार करने का काम किया है। विवाह-विच्छेदों, बलात्कार, भ्रष्टाचार और खुले एवं भददे यौन सम्बन्ध, समलैंगिक विवाह सम्बन्ध, जैसे अमानवीय एवं अप्राकृतिक संस्कृति का प्रचार-प्रसार ईसाई मिशनों तथा अनेकानेक गैर सरक संगठनों के प्रकाशनों के माध्यम से हो रहे हैं।

## 6.6 हिन्दू साहित्य में कम्युनिस्ट एवं जनवादी लेखकों द्वारा भ्रमात्मक तथ्यों को मिलावट

हिन्दू जीवन दर्शन को प्रभावहीन बनाने के लिए एक ऐसी वैचारिकी भी अपने ढंग से सक्रिय है जिसे मार्क्सवादी और जनवादी वैचारिकी की संज्ञा दी गई है। मार्क्सवाद अथवा कम्युनिस्ट चिन्तन में समतामूलक समाज की कल्पना की गई है। समाज के सामान्य गरीब, असहाय, मजदूर एवं छोटी-छोटी बांट के किसानों के प्रति करुणा, दया दिखाने के नाम पर उन्हें ऐसे सुनहरे स्वप्न दिखाए जाते हैं जो व्यवहारिक रूप से सम्भव नहीं हैं। मानव के लिए प्रकृति का सिद्धान्त प्रेरणादायक होना चाहिए। क्योंकि सब कुछ मनुष्य एवं प्रकृति के मध्य ही स्थापित है। प्रकृति का स्वरूप समतामूलक नहीं है। किन्तु प्रकृति का भाव सदैव समता भाव में है। इसलिए मानव का वाह्य स्वरूप जैसे-अमीरी-गरीबी, उच्च-निम्न, भेदात्मक आडम्बर, सामाजिक स्तर इत्यादि में समता का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु व्यक्तिगत व्यवहार, मनोभावना, समर्पण भाव, आदर, सेवा भाव इत्यादि में भेदभाव, विषमता एवं तिरस्कार की बात करना जो व्यवहारिक एवं वैज्ञानिक रूप से सम्भव नहीं है। उसी जगह हिन्दुत्व दर्शन प्रत्येक के साथ दया, करुणा एवं समरसता का व्यापक उद्‌गार प्रेषित करता है। यदि समतावादी सिद्धान्त वास्तव में व्यवहारिक होता तो रूस, जर्मनी, वियतनाम, चेक गणराज्य इत्यादि पुनः लोकतन्त्र की राह पर क्यों चलते?

कम्युनिस्ट एवं जनवादी लेखकों के विचार पश्चिमी जगत से प्रभावित पाए जाते हैं। हिन्दुस्थान के लिए उनकी सोच का औचित्य उचित है अथवा अनुचित है, इस पर विचार करने का उनके पास समय नहीं है। वे केवल यही देखते हैं कि विदेशों में व्यक्ति विशेष के विचार रूपी क्रांति ने समाज को परिवर्तित कर दिया। इसी प्रकार पूंजीवाद के रूप में व्यक्तिवाद स्थापित हुआ और उसी का व्यवहार चीन को छोड़ लगभग सभी संसार में है। सम्पति के व्यक्तिगत अधिकार के आधार पर व्यक्ति उच्छृंखल होता चला गया। आज आवश्यकता इन व्यवस्थाओं से अलग हिन्दू लोक जीवन के स्वरूप का है जिसमें व्यक्ति का स्थान समाज के एक अभिन्न ईकाई के रूप में होता है एवं समाज के प्रति उसका एक उत्तरदायित्व भी है।

कम्युनिस्टों एवं जनवादी लेखकों द्वारा योजनाबद्ध भ्रामक आंकडे भी प्रस्तुत किए जाते हैं। बिना किसी सन्दर्भ स्रोतों का नाम लिए वह अपनी लेखनी द्वारा उद्घटित करते हैं कि अमुक राष्ट्र में 75 प्रतिशत धनराशि पूंजी निवेश के कार्य में लगाई जाती है। उनके फर्जी आंकड़ों को पुष्ट करके उनके विरोध में साहित्य प्रकाशित करने के लिए किसके पास समय है? परन्तु उनका विरोध न होने के कारण ही वे आज भी भ्रमात्मक तथ्यों को प्रकाशित करने में संलग्न हैं।

आर्थिक क्षेत्र में हिन्दुस्थान पर्याप्त विकास कर चुका है। खाद्यान्नों के मामले में भी उसने आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। यहां की सामरिक शक्ति भी पहले की अपेक्षा पर्याप्त बढ़ चुकी है। यह देश विश्व के महान राष्ट्रों की पंक्ति में आ खड़ा हुआ है। किन्तु कम्युनिस्ट एवं जनवादी लेखकों की दृष्टि में अभी भी अन्य समस्या से देश जूझ रहा है। बंगलादेशीय घुसपैठिये हों या आतंकवादी हों, नक्सलियों की समस्याएं हों या फिर किसी अन्य प्रकार की समस्याएं हों, सभी के बारे में वे लोग भ्रमात्मक तथ्यों को प्रकाशित करके जनता को गुमराह करने का कार्य करते रहते हैं। चूंकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कारण इन लोगों को अपने साहित्य प्रकाशन की छूट है फिर भी भ्रामक तथ्यों पर प्रकाशित साहित्य को अश्लील साहित्य की संज्ञा देकर उनको रोकना उत्तम है। ऐसे साहित्य जिनसे राष्ट्र की शक्ति कमजोर होती हो और समाज में विषमता होती हो उनको प्रकाशन से पूर्व ही जब्त कर लेना चाहिए। किन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त होने से किसी को रोका नहीं जा रहा है और ईसाई मिशनरियों की भांति ही कम्युनिस्ट एवं जनवादी लेखक भी भ्रमात्मक तथ्यों को प्रकाशित करने की होड़ में है।

## 6.7 हिन्दू संस्कृति एवं धर्म साहित्य के साथ स्वलाभ एवं ख्याति के लिए शर्मनाक छेड़छाड़

अनेकताओं में भी एकता रखनेवाली हिन्दू संस्कृति पर विदेशी संस्कृति को प्रभावी करने के प्रयास निरन्तर जारी हैं, किन्तु प्रकृतिपरक स्वभाववाली हिन्दू संस्कृति पर किसी प्रकार का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा है। हिन्दू संस्कृति का पश्चिमीकरण तो सम्भव नहीं हो पा रहा है, अपितु पश्चिमी संस्कृतियों का हिन्दुकरण अवश्य हो जा रहा है।

विदेशी युवक-युवतियां इसके साक्ष्य हैं कि वे इस देश में भ्रमण करने तथा अपनी संस्कृति को यहां प्रचारित करने के उद्देश्य से आते अथवा भेजे जाते हैं, किन्तु यहां आने के बाद वे अपनी संस्कृति को भूलकर हिन्दू संस्कृति के हो बैठते हैं। हिन्दू युवक युवतियों से उनके वैवाहिक सम्बन्ध इधर जिस तीव्र गति से बढ़े हैं, यह उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

हिन्दू धर्म साहित्य में आचार-व्यवहार के जो नियम निर्धारित किए गए हैं, उनके साथ भी परिवर्तनसहित छेड़छाड़ किया गया है। मार्ग के नियम (यात्रार्थ-मुहूर्त-निर्णय), दान के नियम, आभार-व्यवहार के नियम आदि में पश्चिमी संस्कृति ने प्रदूषण का विष घोल दिया है। भिक्षा के नियम, गुरुदक्षिणा के नियम भी बदल चुके हैं। पारिवारिक सम्बन्धों की परिभाषा जो हिन्दू दर्शन से जुड़ी हुई थी, अलग होकर बदल चुकी है। इसे बदलने में जिन लोगों के प्रयास सम्मिलित हुए थे वे स्वलाभ और निजी ख्याति के लिए रहे हैं। ऐसे ही लोगों ने हिन्दुस्थान के प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास की साम्प्रदायिक तथा अवैज्ञानिक व्याख्या करके उसके स्वरूप को विरूपित कर दिया है। पहले जनवादी लेखकों द्वारा और बाद में अन्य लेखकों द्वारा हिन्दुस्थान के इतिहास की विकृत व्याख्याएं पेश की गई हैं। इस कार्य का प्रारम्भ सर्वप्रथम ब्रिटिश इतिहासकार जैम्स द्वारा 19वीं शताब्दी में किया गया जिसने प्राचीन हिन्दुस्थान को हिन्दू युग, मध्यकालीन हिन्दुस्थान को मुस्लिम युग और आधुनिक भारत को ईसाईयुग कहने का प्रयास किया था। मध्ययुग में हिन्दू भी शासक थे, किन्तु केवल मुस्लिमों को ही शासक और हिन्दुओं को शासित कहा गया।[9]

हिन्दू लोक जीवन की आधारशिला वैदिक और उत्तरवर्ती धार्मिक ग्रंथों में दी गई मानव जीवन की व्यवस्थाओं पर आधारित है। समाज की राजनीतिक, आर्थिक एवं उद्देश्यपरक आधार-व्यवस्था में परिवर्तन के साथ-साथ कुछ कुरीतियां एवं दिग्भ्रम की स्थितियां लोक जीवन में प्रविष्ट होती गई जिसके परिणामस्वरूप सनातन संस्कृति के व्यवस्थित ढांचे में भी नकारात्मक परिवर्तन हुआ।

9. विपिनचन्द्रः भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999, पृष्ठ 330-331।

सनातन संस्कृति के विरोधियों ने हिन्दू लोक जीवन को खण्डित करने वाली नकारात्मक स्थितियों को सामाजिक एवं नैतिक परम्पराओं के रूप में स्थापित करने के लिए धर्मग्रंथों में बड़ी चतुराई के साथ न केवल जोड़-तोड़ किया, अपितु उसे अधिक-से-अधिक प्रचारित भी किया। परिणामतः धीरे-धीरे वह सनातन समाज की आधार व्यवस्था का अभिन्न अंग स्वीकार कर ली गई। यह कार्य स्वलाभ एवं ख्याति के लिए किया गया।

आज देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार में हिन्दू विरोधी शक्तियां सक्रिय हैं। हिन्दू संस्कृति के स्वरूप को पूर्णरूपेण परिवर्तित कर देने के लिए मुख्य रूप से ईसाई मिशनरियां एवं इस्लामिक संस्थाएं निरन्तर प्रयासरत हैं। इनका प्रभाव उन क्षेत्रों पर अधिक है जहां के लोग सामान्य जीवन जीने को विवश हैं और उनको हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू धर्म ग्रंथों के विषय में कुछ भी पता नहीं है। उनको यह भी पता नहीं है कि वे हिन्दू हैं और उनको अन्य धर्मों में स्थानान्तरित करने के पीछे कौन सा वैचारिकी प्रक्रिया चल रही है। ऐसे सीधे-सादे भोले-भाले लोगों को अपने स्वार्थ एवं ख्याति के लिए दिग्भ्रमित करना अनुचित नहीं, अपितु आपराधिक कार्य है। पंथनिरपेक्षता और धार्मिक आजादी का अर्थ यह नहीं है कि कोई किसी के धर्म को परिवर्तित करे अथवा अपने धर्म को अन्य किसी पर भ्रामक विधि से थोपने का प्रयास करे। यदि विधिक प्रक्रिया के अन्तर्गत ऐसे कुत्सित कार्यों की समीक्षा की जाए तो मिशनरियों के ऐसे कार्य दण्डनीय सिद्ध होंगे।

## 6.8 हिन्दू संस्कृति एवं साहित्य से छेड़छाड़ का कारण

हिन्दू संस्कृति मानव समाज के संवहन हेतु अभिजात्य एवं सांस्कृतिक स्वरूप मात्र न होकर पूर्णरूपेण प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों पर आधारित संस्कृति है, इसलिए यह आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। इसकी इसी अक्षुण्णता और प्रकृतिधर्मिता को समाप्त करने के उद्देश्य से इसके साथ निरन्तर छेड़छाड़ किया जाता रहा है। दूसरी बात यह है कि प्रकृति प्रदत्त हिन्दू संस्कृति का आधार हिन्दू जीवन-पद्धति है। हिन्दू जीवन पद्धति को नष्ट भ्रष्ट करके कमजोर बनाने और उसकी मौलिकता में को समाप्त करने के उद्देश्य से हिन्दू

संस्कृति के साथ छेड़छाड़ किया जाना आवश्यक समझा गया था। हिन्दू साहित्य अथवा हिन्दू धर्मशास्त्रों में अवस्थित प्रक्षिप्तता आदि छेड़छाड़ का क्रूर प्रमाण है। हिन्दू संस्कृति का आलम्बन हिन्दू साहित्य ही था, अतएव हिन्दू संस्कृति को प्रभावित करने के लिए हिन्दू साहित्य के साथ भी घात किया गया।

हिन्दू संस्कृति में भेदभाव अर्थहीन था। प्रकृतिपरक होने के कारण हिन्दू संस्कृति भी सभी के लिए समान रूप से प्रस्तुत थी। हिन्दू साहित्य में भी भेदभाव के बोध में कोई दुर्भावना नहीं पाई जाती थी। परन्तु इस देश की सुदृढ़ता को कमजोर करने के लिए सामाजिक विषमता का बीजारोपण आवश्यक था। इसके बिना हिन्दू समाज पर शासन करना असम्भव था, अतएव भेदभाव जैसे प्रदूषण को फैलाने के लिए विदेशी मुस्लिम शासकों एवं अंग्रेजों ने अपने-अपने ढंग से हिन्दू संस्कृति एवं साहित्य के साथ छेड़छाड़ की थी।

हिन्दू संस्कृति एवं साहित्य का महत्त्व प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और प्रत्येक देश के लिए रहा है। हिन्दू संस्कृति कालातीत एवं सर्वदा कल्याणकारी रही है। इस ज्ञान को अच्छी प्रकार से समझकर ही हजारों लाखों वर्ष पहले हिन्दू ऋषियों एवं महर्षियों ने इसे मानव समाज के कल्याण हेतु सम्प्रेषित किया था, जो विदेशी आक्रान्ताओं, इस्लाम एवं ईसाइयत को बढ़ाने की लालसा रखने वालों के लिए श्रेष्ठ नहीं रहा। इसके लिए ही उनके प्रतिकूल प्रयास निरन्तर होते रहे। हिन्दू संस्कृति और साहित्य में विश्वबन्धुत्वभाव, वसुधैवकुटुम्बकम्, करुणा, दया एवं मैत्री के भाव आदि मानव हितार्थ रहे, तथापि हिन्दू विरोधी माननिसकता वाले विरोधियों के लिए ये दृष्टिकोण दुखद रहे। शासन सत्ता के भूखे विदेशियों को सर्वकल्याण की कामना नहीं थी, वे केवल अपने तथा अपनों की हित चिन्ता करते थे। इसलिए उन्होंने हिन्दू संस्कृति और साहित्य जैसे महत्त्वपूर्ण वैचारिकी को समाप्त करने हेतु कोई कसर नहीं छोड़ी। उनको "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" से कोई लेना-देना नहीं था। उनको केवल स्वान्तः सुखाय से मतलब था।

हिन्दू संस्कृति एवं साहित्य के साथ छेड़छाड़ का एक कारण यह भी था कि विदेशी आक्रान्ता हिन्दू धर्म, हिन्दू धार्मिक जीवन पद्धति, हिन्दू लोक जीवन में व्याप्त अगाध सरसता आदि को

समाप्त करना चाहते थे। हिन्दू धर्म में विश्व के कल्याण की कामना है। परोपकार को परम धर्म की संज्ञा दी गई है। परोपकार से बांधव-भाव और कौटुम्बिक सम्बन्ध स्वतः बनते हैं। इस तरह के सम्बन्ध मजबूत होते हैं। इनको ही कमजोर करने हेतु हिन्दू धर्म पर प्रहार किया गया। हिन्दू धर्म-ग्रंथों में प्रक्षिप्तता की गई ताकि उन धर्मग्रंथों के प्रति लोगों में घृणाभाव बने और हिन्दू धर्म-ग्रंथों पर आधारित एवं सुदृढ़ता को प्राप्त हिन्दू लोक जीवन में बिखराव उत्पन्न हो। हिन्दू जीवन पद्धति को अधार्मिक तथा आदर्शच्युत करने हेतु खान-पान और आचार-व्यवहार के स्वरूप में हिन्दूधर्मिता के स्थान पर इस्लामिक एवं ईसाई पद्धतियों को प्रचलित किया गया और बलपूर्वक थोपा भी गया।

हिन्दू संयुक्त परिवार प्रथा और पवित्र धार्मिक बन्धनवाला विवाह सम्बन्ध रूपी सामाजिक संस्था भी प्रभावित हुआ। प्रेम-विवाह, विवाह विच्छेद, विवाह एक संविदा, टूटते परिवार के रिश्ते, एकाकी परिवार की कमजोर नींव आदि सब कुछ हिन्दू संस्कृति एवं साहित्य के साथ भयानक छेड़छाड़ का ही परिणाम है। इसको जन्म देने वाले वे ही लोग थे जो इस देश में फूट डालकर राज्य करना चाहते थे। किन्तु समाज में छुआछूत एवं भेदभाव को समाप्त करने के लिए तीव्र गति से कार्य आरम्भ हो चुके हैं ।

हिन्दू संस्कृति और साहित्य के साथ छेड़छाड़ के और भी कई कारण थे। आर्य भाषा अथवा देवभाषा संस्कृत के साहित्य भण्डार के प्रति विदेशी मुसलमानों एवं अंग्रेजों, दोनों में ही ईर्ष्या की भावना थी। अलाउद्दीन जैसे लोगों ने तो नालन्दा विश्वविद्यालय के ग्रंथालयों को फूंकने का कार्य किया, जबकि अंग्रेजों ने शेष बचे हुए साहित्य को जनता को सुलभ कराने के नाम पर उसमें भयंकर भ्रामक तथ्यों को मिलाकर सम्पादित एवं प्रकाशित करके प्रस्तुत किया ताकि, उसे पढ़कर हिन्दू समाज का सुदृढ़ संगठन स्वतः क्षत-विक्षत हो जाए। हिन्दू धर्मग्रंथों को नष्ट करने का एक उद्देश्य यह भी था कि विदेशी मुस्लिम शासक हिन्दू धर्मशास्त्रों के सम्मान को घटाना चाहते थे। उन ग्रंथों में ही हिन्दू आचार-व्यवहार के नियम प्रतिपादित थे। इसलिए उन्होंने उनको नष्ट करना ही उत्तम समझा था।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दू संस्कृति एवं साहित्य के साथ भयानक एवं शर्मनाक छेड़छाड़ की गई है। ऐसा करने के पीछे मुख्य रूप से विदेशी मुस्लिम शासकों और अंग्रेज शासकों का हाथ रहा है। वे ही अपने-अपने लाभ एवं प्रसिद्धि के लिए इस प्रकार के कार्य करते थे। दलितविहीन हिन्दुस्थान में मुस्लिम शासकों ने जनता के साथ इतना घोर अत्याचार और उत्पीड़न का कार्य किया कि इस्लाम अस्वीकार करने के बदले उनको अपवित्र और निम्न श्रेणी के पेशों में बलपूर्वक लगाकर उन्हें समाज में अछूत घोषित किया और हिन्दू समाज को बांटने का कार्य किया। हिन्दू शक्ति को बांटने के उददेश्य से साहित्य में प्रक्षिप्तता लाने का भी प्रयास किया। ईसाई मिशनरियों ने भी अपने साहित्य सृजन द्वारा देश में ईर्ष्या एवं द्वेष फैलाने का कार्य किया। कम्युनिस्ट एवं जनवादी लेखकों ने भी योजनाबद्ध तरीके से भ्रामक तथ्यों को प्रकाशित करके हिन्दू समाज को संगठित होने में बाधा पहुँचाई। उनका सहयोग दलित साहित्यकारों ने भी किया जो पूर्वाग्रहयुक्त विचारधाराओं ने समन्वित थे। इन सभी परिस्थितियों से एक साथ संघर्ष करके हिन्दू समाज को पुनः सुदृढ़ करने हेतु सामाजिक समरसता दर्शन का प्रचार एवं प्रसार आवश्यक है।

□□□□□□

# अध्याय-7

## हिन्दू राष्ट्र दर्शन

आज समस्त विश्व के सामने मानव के अस्तित्व, मानव समाज में परस्पर संवेदनायुक्त मानवीय व्यवहार तथा जीवन पोषण हेतु श्रेष्ठ कार्यों पर आधारित क्रियाकलाप एक चुनौती का पर्याय है। चाहकर भी मानव संयत जीवन तथा मूल्य आधारित समाजीकरण एवं मानवीय मर्यादाओं को अपने व्यवहार में उतारने में असफल हैं। देश, राज्य एवं राष्ट्र की परिकल्पनाओं में आबद्ध अवधारणाएँ जिनसे मानव समाज के साथ भू-भौगोलिक परिक्षेत्रों में अपने आपको रखकर मनुष्य अपने असीमित क्षमता के साथ स्वयं में सिमट सा गया है। पृथ्वी को खतरे में डालकर आज मानव विज्ञान को विध्वंसक एवं अकल्याणकारी बना दिया है। राष्ट्र का तात्पर्य सांस्कृतिक सीमा से न लेकर उसे वर्चस्व एवं शक्ति का पर्याय बना दिया गया है। आज हिन्दू राष्ट्र ही एकमात्र आशा के किरण के रूप में संसार के समक्ष परिलक्षित है।

हिन्दू राष्ट्र का तात्पर्य जीवन जीने की कला, मानव अस्तित्व की गतिशीलता एवं निरंतरता, श्रेष्ठ आचरण, मूल्य आधारित समाजीकरण के साथ इन सभी को आपस में जोड़ती हुई प्रकृतिपरक जीवन पद्धति तथा सामाजिक मर्यादाओं पर आधारित संस्कृति ही मुख्य है। हिन्दू राष्ट्र में सामाजिक चिंतन का आधार ज्ञान, विज्ञान, धर्म तथा आध्यात्म है। हिन्दू राष्ट्र के अन्तर्गत स्थापित लोक जीवन में सामाजिक संस्थाएं, परम्पराएं, रीति-रिवाज तथा प्रकृति पर आधारित संस्कृति ही मुख्य है। हिन्दू राष्ट्र का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दर्शन, सांस्कृतिक मान्यताओं पर टिका है, ऐसे में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ही हिन्दू राष्ट्रवाद है। हिन्दू राष्ट्र पूर्ण व्यवहार्य है और इसकी कोई सीमा नहीं है। इस अध्याय में हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा, हिन्दू राष्ट्र का राजनैतिक दर्शन, हिन्दू राष्ट्र की राष्ट्रीयता एवं

तथाकथित पंथनिरपेक्षता यानी सेक्यूलरिज्म इत्यादि विषयों का उल्लेख किया गया है।

## 7.1 हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा ( हिन्दू देश तथा हिन्दू राज्य के परिप्रेक्ष्य में )

हिन्दू राष्ट्र के संदर्भ में चर्चा से पहले राष्ट्र के भावार्थ को समझना अति आवश्यक है। एक भौगोलिक सीमायुक्त भू-भाग जिसके अन्दर मानव समूह हो और उस मानव समूह को नियन्त्रित और व्यवस्थित करने के लिए एंक शक्तिशाली तन्त्र हो। और उसी तन्त्र के द्वारा समाज को व्यवस्थित एवं स्वभाव से चापल्य तथा स्वार्थ भावयुक्त मानव को नियंत्रित करने की प्रक्रिया को प्रशासन या सरकार के रूप में जाना जाता है। भौगोलिक सीमायुक्त भू-भाग को देश कहा जाता है। समाज का तात्पर्य मानव के उस समुदाय से है जो एक साथ रहकर समाज के बनाए नियम एवं कानून का पालन करते हुए अपने जीवन को व्यतीत करें। देश और राज्य दोनों इकाइयों के लिए भूमि और जन आवश्यक हैं। ये दोनों इकाई सरकार अथवा प्रशासन पर निर्भर हैं, किन्तु समाज का आधार संस्कृति है, समाज यानी मानव समूह जो एक निश्चित मानक अथवा विचार पर संगठित होता है। उस इकाई को संस्कृति के नाम से जाना जाता है। संस्कृति स्व प्रेरणा एवं पीढ़ी दर पीढ़ी के व्यतीत आत्मीय सम्बन्धों के अभ्यास से स्वीकार्य होती है। राष्ट्र का आधार संस्कृति है। राष्ट्र निर्माण में संस्कृति का होना अति-आवश्यक होता है।

देश रूपी शरीर में राष्ट्र एक आत्मा के रूप में अवस्थित होता है। देश एवं राज्य के लिए एक निश्चत सीमायुक्त भू-भाग तथा जन आवश्यक है किन्तु राष्ट्र तो एक सांस्कृतिक अवधारणा है। इसी तरह हिन्दू राष्ट्र का अधिष्ठान हिन्दू संस्कृति है। हिन्दू राष्ट्र के इस अधिष्ठान को यानी हिन्दू संस्कृति को विखंडित करने का प्रयास लम्बे काल से चल रहा है। हिन्दू विरोधी ताकतों को कुछ सफलता भी हाथ लगी है, किन्तु हिन्दू संस्कृति अपने आध्यात्मिक और वैज्ञानिक मानक पर इस प्रकार अडिग है कि अनेकानेक षड्यन्त्र, धर्म ग्रन्थों में मिलावट, स्वार्थ परक नीतियों, अवैज्ञानिक कुरीतियों तथा भेदभाव के बाद भी आज तक बची हुई है। जबकि विश्व की अनेक संस्कृतियां सीथियन, यूनानी, असीरियन, सुमेरियन, खाल्डियन, रोमन आदि का अवशेष पाया जा रहा है, किन्तु हिन्दू संस्कृति अपने

गौरवशाली इतिहास के साथ आज भी पूर्ण सुरक्षित है। हिन्दू राष्ट्र काल्पनिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक स्वरूप में विश्व कल्याणार्थ अवस्थित है।

प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि प्राचीन हिन्दू राष्ट्र में अनेक देश एवं अनेक राज्य थे, किन्तु राष्ट्र अखण्ड था क्योंकि राष्ट्र का आधार संस्कृति थी इसलिए भारत की भौगोलिक सीमा में अनेक हिन्दू राज्य तथा अनेक हिन्दू राजा हुआ करते थे। हिन्दू राष्ट्र की वैचारिकी पूर्ण व्यवहार्य हैं। हिन्दू जीवन पद्धति एक ऐसी जीवन जीने की पद्धति है जिसका किसी मज़हब या पंथ से कोई लेना-देना नहीं है। हिन्दुत्व को मानसिक रूप से मानने वाला हिन्दू है। और वह हिन्दू राष्ट्र का एक सम्मानित सदस्य है। व्यक्ति कहीं भी रहकर वह हिन्दू राष्ट्र का अभिन्न बना रह सकता है, उसे देश, राज्य, मजहब या पंथ की सीमाएं नहीं रोक सकती हैं।

हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा की वैचारिकी पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है। देश का तात्पर्य भौगोलिक सीमा से राज्य का अर्थ प्रशासनिक सीमा से और राष्ट्र का भावार्थ अवधारणा से है। इस प्रकार अवधारणा का यानी विचारों की कोई सीमा नहीं हो सकती। क्या समाजवादी अवधारणा की कोई सीमा है ? क्या कम्युनिस्ट अवधारणा की कोई सीमा है? क्या इस्लामिक अवधारणा की कोई सीमा है? उसी प्रकार हिन्दू अवधारणा की कोई सीमा नहीं है। हिन्दू वैचारिकी एक पूर्ण वैज्ञानिक और पूर्ण आध्यात्मिक अधिष्ठान पर आधारित वैचारिकी है। जो चिरंजीवी एवं अमिट है। यह सम्पूर्ण संसार के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी है। यह आध्यात्म और विज्ञान का समग्र रूप है। राष्ट्र का तात्पर्य सांस्कृतिक अवधारणा से है। इसलिए हिन्दू राष्ट्र की भी कोई सीमा नहीं है। भारतीय संस्कृति में एक दीर्घकालिक निरंतरता निहित है जो राष्ट्र के लिए अतिआवश्यक गुण है। इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द के कथन का यदि हम उल्लेख करें तो यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू राष्ट्र ही मूल मानव संस्कृति का आदि स्रोत है।

## 7.2 हिन्दू राष्ट्र की राष्ट्रीयता ( हिन्दू या भारतीय )

हिन्दू और भारतीय शब्द दोनों एक ही भावबोध में प्रयुक्त

होने वाले समानार्थी अथवा पर्यायवाची शब्द हैं। हिन्दू शब्द संस्कृत भाषा की व्याख्या के अनुसार "दो प्रकार की शक्ति के ज्ञान यानी आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्ति" पर आधारित आचार-व्यवहार की मान्यता है। इसी प्रकार भारत शब्द का भी संस्कृत भाषा के आधार पर "भा का अर्थ प्रकाश अर्थात् ज्ञान तथा रत का अर्थ निरत यानी लगा हुआ" तात्पर्य यह है कि ज्ञान (अध्यात्मिक ज्ञान तथा भौतिक ज्ञान) की खोज में लगा हुआ देश भारत है। इसलिए भारत और हिन्दू शब्द में कोई अन्तर नहीं है। दोनों शब्द प्राचीन है एवं ज्ञान के बोध में हैं। भारत एवं हिन्दू शब्द प्राचीन साहित्यों एवं ग्रन्थों में प्राप्त है। अनेकानेक प्राप्त उदाहरण का उल्लेख प्रारम्भ में ही किया गया है।

हिन्दू शब्द के प्रयोग के पहले हिन्दू, धर्म, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू ज्ञान इत्यादि विषयों को पूर्ण रूपेण तथा स्पष्टतः समझ लेने की आवश्यकता है। 'धारयति इति धर्मः' यानी व्यक्ति को समाज द्वारा स्थापित एवं निर्धारित नियम और व्यवस्था को धारण कर उनका अनुपालन करना ही धर्म है। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति का आधार मूल रूप से प्रकृति है। उदाहरणार्थ– जैसें वस्त्र संस्कृति में ऋतु तथा मौसम के अनुरूप वस्त्र का निर्धारण होता है। वैसे ही हिन्दू संस्कृति के प्रत्येक आयाम में ऋतु, मौसम, जलवायु तथा वातावरण की प्रभावी भूमिका है। एक अन्य कारक 'हिन्दू ज्ञान' का भी आधार अध्यात्म एवं भौतिक ज्ञान है। जैसाकि पहले भी स्पष्ट किया गया है कि 'हिन्दू' शब्द का अर्थ ही 'शक्ति' अथवा 'ज्ञान' से है।

हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति सनातन, सार्वभौमिक और पूर्ण वैज्ञानिक होने के कारण यह संसार के समस्त लोगों के लिए व्यवहारिक रूप में स्वीकार्य होने योग्य है। वास्तव में हिन्दू संस्कृति का आधार हिन्दू जीवन पद्धति है जो प्रकृति प्रदत्त है। हिन्दू जीवन पद्धति प्रत्येक व्यक्ति के लिए, प्रत्येक समुदाय के लिए और प्रत्येक देश के लिए उपयुक्त है। यह कालातीत एवं सर्वदा कल्याणकारी है। यह कभी भी पुराना तथा निष्प्रयोज्य नहीं हो सकती। यह स्मरण करने का विषय है कि हजारों वर्ष पूर्व हिन्दू ऋषियों द्वारा इस ज्ञान एवं पद्धति को ज्ञातकर इसे संसार के समस्त मानव कल्याणार्थ प्रेषित किया है।

'हिन्दू राष्ट्र' के स्थान पर 'भारतीय राष्ट्र' लिखने की परम्परा मुसलमान अथवा ईसाई मतावलंबियों के अनावश्यक विरोध का एक तुष्टीकरण सिद्धान्त है। हिन्दू शब्द को जाने-अनजाने विवादास्पद बनाकर इस लोक कल्याणार्थ स्थापित व्यवस्था को क्षति पहचाने का प्रयास हो रहा है। आज संसार इस कटु सत्य को समझने लगा है। अमेरिका और यूरोप के लाखों लोगों में हिन्दुत्व के लिए आकर्षण सहज देखा जा सकता है। संसार के लगभग सम्पूर्ण देशों में हिन्दू संस्कृति के सम्वाहक सैकड़ों मंदिरों की स्थापना इसका द्योतक है। भारत एवं पाकिस्तान में करोड़ों-करोड़ दिलों पर राज करने वाले शायर स्वं. इकबाल के 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा' नामक गीत को क्यों नहीं समझने को प्रयास होता। इकबाल साहब ने तो उन दिनों ही यहां तक हिन्दुस्तान और हिन्दू संस्कृति के बारे में लिख दिया था कि -"यूनान, मिश्र, रोमा सब मिट गए जहां से, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।" अगर हिन्दू शब्द विवादास्पद होता तो इकबाल साहब हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दू संस्कृति के संदर्भ में अपने विचार निःसंकोच होकर नहीं दे पाते। इतना ही नहीं अखण्ड भारत में इकबाल साहब जैसे एक मुसलमान व्यक्ति को भी हिन्दुस्तान का नागरिक कहने में संकोच नहीं था। भारत सरकार के सर्वोच्य न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री मोहम्मद करीम भाई छागला और सरहद गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान ने अपने को हिन्दू कहलाने में गौरवान्वित महसूस किया। आज तो इस प्रश्न पर हिन्दू ही विभ्रमित प्रतीत हो रहा है, जबकि उन्हें तो विचारपूर्वक स्वयं ही आत्मविस्मृति एवं आत्मग्लानि त्यागकर हिन्दू होने का गर्व करना चाहिए।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्ममानववाद की भी वैचारिक देते हुए यह समझाने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एकीकरण मानव के रूप में परिलक्षित है, उसी प्रकार हिन्दू संस्कृति भी विभिन्नता में ऐक्य भाव है। यही हिन्दू संस्कृति की विशेषता है। इसी तरह अध्यात्म ज्ञान से परिपूर्ण एवं अध्यात्म सार तत्त्वों का समग्र हिन्दू ज्ञान है। विश्व की सम्पूर्ण अध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्य, पंथ, सम्प्रदाय, सूफी-संत, पूजा-पाठ की पद्धतियां, ज्ञान-विज्ञान इत्यादि सम्पूर्ण रूप से हिन्दुत्व, वेद,

श्रीमद्भागवतगीता एवं अन्यान्य धर्म ग्रन्थों में पूर्व से ही अवस्थित है। इस्लाम एवं ईसाइयत को हिन्दुत्व से परे करने का कुप्रयास सम्पूर्ण संसार में वर्चस्व की भावना के साथ चल रहा एक संघर्ष है। यह आश्चर्य नहीं होगा जब विश्व में सत्यनिष्ठ शोध कार्यों से यह स्पष्ट हो जाए कि हिन्दू ज्ञान ही प्रारम्भ से सृष्टि के सम्पूर्ण ज्ञान की जननी है।

आज प्रश्न यह है कि आज हिन्दुस्तान में मुसलमान और ईसाइयों द्वारा 'हिन्दू' शब्द के स्थान पर 'भारतीय' शब्द का प्रयोग हो रहा है, किन्तु इससे कोई अधिक अन्तर नहीं पड़ता है। जिस कालखण्ड में 'भारत' अथवा 'भारतीयता' का प्रचलन था, उन दिनों भी मुसलमानों द्वारा पृथकता एवं विभाजन के लिए मांग की गई थी। 'हिन्दू' शब्द के स्थान पर 'भारतीयता' शब्द की स्वीकृति ही तुष्टीकरण का प्रथम उदाहरण है। स्मरण रहे कि यह सब हमारे नेताओं के हिन्दुत्व के संदर्भ में अज्ञानता एवं उनकी दुर्बलता का एक प्रमाण तथा परिणाम है। हिन्दू शब्द संकीर्ण नहीं अपितु विराट है। वर्चस्व के संघर्ष में हिन्दू की अवहेलना को स्वीकारना तथाकथित हिन्दुओं की नपुंसकता है। ऐसे तुष्टीकरण से हिन्दू विरोधी ताकतें मजबूत एवं कठोर होंगी।

राष्ट्रीयता पर बहस के पूर्व संसार भर के मुसलमानों और ईसाइयों की मानसिकता को समझ लेना चाहिए। राष्ट्रीयता एक देश की पहचान ही नहीं अपितु अक्षुण्ण, सार्वभौमिक तथा आन्तरिक एकता का द्योतक होता है। कम्युनिस्ट देशों में परिवर्तन के संकेत से ईसाइयत के उदय होने की प्रक्रिया स्वरूप भारत के ईसाइयों में एक नया जोश आया है। वे देश के अन्य भागों के साथ पूर्वोत्तर भारत में अपनी जड़ें मजबूत कर रहे हैं। पूर्वोत्तर प्रदेशों एवं जनजातीय वाहुल्य क्षेत्रों में तथाकथित सेवा के नाम पर धर्म परिवर्तन कराने का कुचक्र रच रहे हैं। इन्हें नक्सलियों का भी समर्थन प्राप्त हो रहा है। नक्सलियों के अलगाववाद और ईसाइयों की ईसायत के प्रचार तथा धर्म परिवर्तन का आन्दोलन राजनीति प्रेरित है और अलग राष्ट्रीयता यानी अलगाववाद का द्योतक है। इसी प्रकार पेट्रोडालर के कारण मुसलमानों और मुस्लिम देशों की बढ़ती शक्ति तथा पाकिस्तान एवं

ईरान जैसे देशों में इस्लामी कट्टरवाद और जेहादी जुनून के परिणामस्वरूप विश्व अशान्त है।

आज संसार के प्रायः सभी प्रमुख देशों में मुसलमान वहां के मूल धर्म के अनुयायियों से संघर्षरत है। इतना ही नहीं अब तो यह स्पष्ट हो चुका है कि इस्लामवादियों तथा मुसलमानों की पहली आस्था इस्लाम और इस्लामिक देश ही हैं। डॉ. अम्बेडकर जैसे विद्वानों की मुसलमानों के संदर्भ में की गई टिप्पणी को अनदेखी करना भारत के लिए महंगा प्रमाणित हुआ। उन्होंने मुसलमानों की राष्ट्रीयता एवं देश भक्ति को सदैव शंका की दृष्टि से देखते हुए कहा था कि उनकी प्रतिबद्धता इस्लाम एवं इस्लामिक देश के प्रति ही होगी। इसका उल्लेख 'भारत-पाकिस्तान बंटवारा' नामक पुस्तक एवं अनेकों लेखों में किया। उन्होंने तो हिन्दुस्तान के बटवारे पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था कि अब अगर दुर्भाग्यपूर्ण बंटवारा हो ही गया है तो जनसंख्या का पूर्ण रूपेण स्थानान्तरण होना आवश्यक है। यह अलग बात है कि उनके इस महत्त्वपूर्ण विचार को नजरअन्दाज कर दिया गया। उनके इस प्रकार के विचार पर देश में गंभीर चर्चा होनी चाहिए थी। उक्त तथ्यों के आलोक में राष्ट्रीयता को देखते हुए 'भारतीय' शब्द को तुष्टीकरण के रूप में प्रस्तुत करने के स्थान पर 'हिन्दुत्व' पर बल दिया जाय। वैसे भी. उच्चतम न्यायालय की एक बहुमूल्य टिप्पणी कि 'हिन्दुत्व एक जीवन जीने की पद्धति है', इत्यादि को ध्यान में रखकर हमें अपनी नागरिकता के स्थान पर 'हिन्दू' लिखने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए।

## 7.3 हिन्दू राष्ट्र का राजनैतिक दर्शन

भारत वर्ष प्राचीनकाल से एक भौगोलिक, राजनैतिक, एवं सामाजिक हिन्दू राष्ट्र रहा है, जिसकी नियामक शक्ति हिन्दू संस्कृति है। हिन्दू राष्ट्र की राजनीतिक संरचना वस्तुतः सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के दार्शनिक भावबोध का व्यावहारिक प्रारूप है। हिन्दू राष्ट्र मूलतः भारतीय संस्कृति का सकारात्मक अधिष्ठान है। यह स्वयंभू सत्ता है जो सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। हिन्दू संस्कृति को व्यावहारिक धरातल पर प्रभावी बनाने के लिए जिस प्रशानिक एवं संवैधानिक तंत्र की आवश्यकता होती है उसे ही हम हिन्दू राष्ट्र का राजनैतिक दर्शन

कहते हैं। राजनीति के दो आयाम हैं: एक राजनीतिज्ञ, जो नीति निर्धारित का कार्य करते हैं और दूसरा राजनेता, जो राजनीतिज्ञों द्वारा निर्धारण मानदण्ड एवं नीतियों के आधार पर जनसामान्य को नेतृत्व प्रदान करते हैं।

हिन्दू राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिज्ञ की भूमिका उन प्रशासनिक नीतियों के निर्माण तक प्रभावी है जिनका समाज के विकास में सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है। भारतवर्ष में कृष्ण, विदुर, चाणक्य, महात्मा गांधी, डॉ. अम्बेडकर, पंडित दीनदयाल उपाध्याय जैसे राजनीतिज्ञ हुए हैं जिन्होंने राष्ट्र के संचालन हेतु नीतियों का निर्माण किया। इन राजनीतिज्ञों की नीतियों का अनुसरण करने वाले राजनेताओं की अलग-अलग श्रेणियाँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ गांधीवादी राजनेता, अम्बेडकरवादी राजनेता और पंडित दीनदयाल उपाध्याय की नीतियों का भी अनुसरण करने वाले राजनेताओं की एक लम्बी श्रृंखला पाई जाती है।

हिदू संस्कृति के राजनैतिक दर्शन का आधार सनातन संस्कृति और उसके प्रत्याभूत प्रशासकीय व्यवस्थाओं के संचालन में प्रयुक्त नीतियां हैं। हिन्दू संस्कृति के जीवन मूल्यों में निहित शक्तियों को राजनैतिक पृष्ठभूमि में दार्शनिक गुणों से पुष्ट करने का प्रयास ही हिन्दू राजनैतिक दर्शन का महत्त्वपूर्ण आयाम है। सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सम्पूर्ण मानवता (देश एवं राष्ट्र की सीमा के भी पार) के लिए कल्याणकारी राजनीतिक व्यवस्था ही हिन्दू राजनैतिक दर्शन है।

## 7.4 हिन्दू राष्ट्र का जन प्रतिनिधि

हिन्दू राष्ट्र एक व्यापक अवधारणा है। हिन्दू जीवन पद्धति से निवास करने वाले मानव समाज में बने लोक जीवन का अत्यन्त वृहद् रूप है। जिस प्रकार हिन्दू लोक जीवन में विभिन्नता में भी सांस्कृतिक एक रूपता है वैसे ही संसार में हिन्दू जीवन, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू जीवन पद्धति में भी विविधता होते हुए भी धारणात्मक एक रूपता है और यही धारणात्मक एक रूपता ही हिन्दू राष्ट्र का अस्तित्व है।

हिन्दू राष्ट्र के प्रशासनिक स्वरूप में जनप्रतिनिधि की एक विशेष भूमिका होती है। जन समर्थन के बाद जनता का प्रतिनिधि चयनित होते ही उस प्रतिनिधि की स्वयं की भूमिका तत्काल प्रभाव से परिवर्तित होता है। तब वह व्यक्ति, व्यक्ति न होकर एक ऐसे प्रतिनिधि का स्थान प्राप्त कर लेता है जिसे जनता सर्वशक्तिमान, सृष्टि संचालन करता ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर उसे अपनी पूर्ण आस्था समर्पित करती है। ऐसे प्रतिनिधि को प्राचीन समय में राजा के रूप में एवं राजा के नाम से सम्मानित किया जाता था।

## जनप्रतिनिधि का स्वरूप

हिन्दू राष्ट्र में जनप्रतिनिधि यानी राजा का कर्तव्य एवं उसका हिन्दू लोक जीवन के प्रति उत्तरदायित्व एवं उन उत्तरदायित्वों के सम्वहन की नीतियां सुनिश्चित रहती थीं। उन नीतियों को हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रतिनिधि द्वारा, प्रत्येक स्थान पर एवं सदैव मान्य थी। हिन्दू राष्ट्र के जन प्रतिनिधियों की वह प्राचीन व्यवस्था (वर्तमान राजशाही नहीं) आज भी औचित्यपूर्ण है। विविधता में एकता, सामाजिक विषमता नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता और सर्वमत समादर इत्यादि के वैचारिक पर अवलम्बित हिन्दू राष्ट्र के प्रतिनिधि के बारे में मनीषियों का चिन्तन एवं जनता की भावना का मनुस्मृति में इस प्रकार उल्लेख किया गया है–

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः।।
चन्द्र वित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।।
यस्मादेवां सुरेन्द्रणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा।।
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनोसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदम्यभिवीक्षितुम्।।
वालोजपि नावमन्तयो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।

–मनुस्मृति, 7/3–6, 8

(अर्थात् प्रजा की रक्षा हेतु ईश्वर ने राजा को बनाया। इन्द्र,वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर को भी बनाया। राजा इन्द्र

इन सब देवों के अंश से हैं, इस कारण राजा सबको अभिभूत करता है। नेत्र तथा मन सूर्य के समान सन्तप्त है, इसलिए यह सबको दृश्य है। राजा मनुष्य होता है ऐसा समझकर बालक रुपी राजा का अपमान न करें।)

इतना ही नहीं उस तथाकथित प्रतिनिधि के बारे में एवं उसकी श्रेष्ठता के लिए भी विशिष्ट भाव से उल्लेख करते हुए मनु महाराज ने कहा–

**यस्य प्रसादे पद्मा श्री विर्जयश्य पराक्रमे।**
**मृत्युश्च वसति क्रोधे सवजेतोमयों हि सः॥**

–मनुस्मृति 7/11

(अर्थात्, उसकी कृपा में पद्मा, उसके पराक्रम में विजय एवं लक्ष्मी, उसके क्रोध में मृत्यु है और वह हर तरह से तेजोमय है।)

जनप्रतिनिधित्व के संदर्भ में भीष्माचार्य ने कहा है कि यह सत्य है कि भगवान एवं राजा में कोई अन्तर नहीं, किन्तु राजा में राजोचित गुण होने चाहिए। राजाओं (जनप्रतिनिधियों) का कर्तव्य जनता का सुख, सत्य का परिपालन एवं आचरण की प्रामाणिकता होनी चाहिए। उसको दयावान, करुणामयी, गरिमा युक्त, आत्म–संयमी, सुशील, वृद्धों के प्रति आदरपूर्ण, भव्य एवं उदार होना चाहिए। जिस प्रकार पुत्र अपने पिता के घर में रहते हैं, वैसे ही जनता अपने राज्य में आनन्दपूर्ण रहे। राजधर्म का तात्पर्य जनता का हित है।

## जनप्रतिनिधित्व का कर्म बोध

हिन्दू लोक जीवन के राष्ट्र दर्शन में जनप्रतिनिधियों से भी ऊपर धर्म था। धर्म ही विधि एवं न्याय के रूप में धारणीय था। हिन्दू ऋषियों द्वारा अवगाहित धर्म के अनुरूप की राजा एवं प्रजा (प्रतिनिधि एवं जनता) दोनों के लिए दायित्व का निर्धारण किया गया था। राजा से न्याय एवं विधि (धर्म) की रक्षा की अपेक्षा थी। जहां राजदण्ड चूक जाता था, वहां धर्म दण्ड स्वतः कार्यरत होता था।

**तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।**
**ब्रम्हातेजोमयं दण्डमसृजत् पूर्वमीश्वरः।।**

–मनुस्मृति,7/14

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासकश्च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।
–मनुस्मृति,7/17

दण्ड शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधाः।।
–मनुस्मृति,7/18

(अर्थात् ईश्वर ने सर्वप्रथम अपने पुत्र धर्म दण्ड को भेजा जो ब्रह्मा के वैभव से युक्त समस्त प्राणियों की रक्षा करे। दण्ड ही राजा, नृपति नायक एवं शासक है। धर्म ही चारों आश्रमों का सदाचार है। दण्ड ही शासन करता है, लोगों की रक्षा करता है एवं जब लोग सोते हैं तो दण्ड जागता रहता है। विद्वान् कहते हैं कि दण्ड ही धर्म है।)

जब युधिष्ठिर से इन्द्रप्रस्थ के राजा का दायित्व संभाल लिया गया तब देवर्षि नारद ने उनसे प्रश्न किया कि युद्ध में तुम्हारे लिए जिन लोगों ने प्राण त्याग दिए उनके बच्चों एवं विधवाओं के जीविकोपार्जन के लिए कुछ करोगे? जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिए सदैव सुलभ होता है, उसी प्रकार तुम्हारे दर्शन सुलभ होंगे? क्या तुम राज्य में उत्तम कृषि, वाणिज्य, श्रमिकों को संरक्षण एवं उत्तम वातावरण संरक्षण जैसे जलाशय एवं वृक्षारोपण इत्यादि की व्यवस्था करोंगें? क्या उचित काराधान एवं मंत्री तथा कर्मचारियों को घूस और भ्रष्टाचार से मुक्त करोगे? क्या विकलांगों अनाथों एवं तपस्वियों का पितृवत् पोषण करोगे? युधिष्ठिर ने अन्ततः यह सिद्ध किया। परिणामस्वरूप सभी प्रजाजन अपने–अपने व्यवसाय इत्यादि में कुशल एवं स्थापित हुए। कृषि का संरक्षण एवं पर्याप्त वर्षा हुई। राज्य का उत्कर्ष हुआ।

हिन्दू राष्ट्र के सांस्कृतिक भाव के अनुसार जनप्रतिनिधि को हर प्रकार से संस्कृति के मूल तत्त्व को स्व के माध्यम से व्यवहारिक रूप से प्रदर्शित करना था। वाल्मिकि कृत रामायण में भगवान श्रीराम द्वारा किए गए शासन व्यवस्था का उदाहरण भी एक जनप्रतिनिधि के चरित्र का श्रेष्ठ उदाहरण है। रामराज्य में अच्छे–अच्छे मार्ग, पेयजल की पर्याप्त व्यवस्था, दुकानें वस्तुओं से भरी हुई, सैनिक

शिष्ठ् एवं ब्राह्मण पवित्र एवं विद्वान् थे। सम्पूर्ण प्रजा में समृद्धि थी। कोई निर्धन अथवा निरक्षर नहीं था।

### 7.5 हिन्दू राष्ट्र की प्रशासनिक ईकाई :

सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित, सुलभ एवं आस्थावान जनप्रतिनिधियों द्वारा मिलकर सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक इत्यादि क्षेत्रों के सशक्तीकरण के लिए प्रयास करना चाहिए। हिन्दू संस्कृति में समग्रता एवं सामूहिक चिंतन का प्रकटीकरण प्रायः प्रत्येक क्षेत्र मे देखा जा सकता है। ऐसे में किसी भी कार्य को जो हिन्दू लोक जीवन के संदर्भ में परिभाषित किया जा सके, उसे एकजूट हो कर किया जाना चाहिए।

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोअडहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्।।

(अर्थात्, साधारण कार्य भी अकेले करना कठिन होता है। बिना सहायक से वैभवशाली राज्य का प्रबन्ध करना तो और भी कठिन है।)

मौलाच्छास्त्रविदः शूराल्लब्धलक्षान कुलोद्भवान्।
सचिवान् सप्त चाष्टों वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।।

–मनुस्मृति 7/54

तैः सार्ध चिन्तयोन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशममनिच।।

–मनुस्मृति 7/55

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक-पृथक।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मन।।

–मनुस्मृति 7/56

सर्वेषाम् तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मंत्रयेत्परम् मंत्रं राजा षाड् गुण्यसंयुतम्।।

–मनुस्मृति 7/57

नित्यं तस्मिन समाश्वस्तः सर्वमार्याणि निःक्षिपेत।
तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समाटभेत्।।

–मनुस्मृति 7/58

(अर्थात् राजा को चाहिए कि परम्परा से कार्य करने वाले शास्त्रविद्, शूर, अस्त्र-शस्त्र पारंगत, सुकुलोत्पन्न सात या आठ मंत्री का चुनाव करे। उन लोगों के साथ नियमित सन्धि, विग्रह, अभ्युदय, रक्षा आदि विषयों पर मन्त्रणा करे। एकान्त में प्रत्येक के पृथक्-पृथक भाव को जानकर अपने विवेक से हितकर कार्य करे।)

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दू लोक जीवन में स्थापित व्यवहारिक मानदण्ड एक जन प्रतिनिधि के व्यवहारिक जीवन के लिए आज भी उपादेयता है एवं धर्म पर आधारित कर्तव्यों का सम्पादन करने वाले जनप्रतिनिधि कालातीत एवं प्रशंसनीय होते हैं। उनके द्वारा जन कल्याण भी सुनिश्चित है। वे प्रशासन को तीक्ष्ण एवं जनसेवाओं को शीघ्रतापूर्वक कैसे कार्यान्वित करे, इस सम्बन्ध में हिन्दू दर्शन के अन्तर्गत मनीषियों ने व्यापक रूप से चिन्तन किया है।

हिन्दू राष्ट्र के अन्तर्गत राज्य की ईकाइयों का एक विशिष्ट एवं मर्यादित स्वरूप होता था। प्रशासन की दृष्टि से राज्य के विभिन्न विभाग बनाए जाते थे। ग्राम ईकाई को सबसे लघुत्तम प्रशासनिक ईकाई का स्वरूप दिया गया था। ग्राम ईकाई वास्तव में ग्रामिणों में एक पंचायत के रूप में थी। ग्राम पंचायत एक अधिकारी के अधीन अपना कार्य करती थी।

ग्राम पंचायतों की छोटी-2 दस ईकाइयों को मिलाकर एक जनपद का निर्माण होता था। दसों ग्राम ईकाइयों के अधिकारी जनपद के अधिकारी के अधीन होते थे। उनकों ग्राम सम्बन्धित जानकारी एवं वृत जनपद के उसी अधिकारी को देना होता था। इसी प्रकार बड़े एवं उससे भी बड़े ईकाइयों की रचना होती थी। दस-दस ग्राम, बीस-बीस ग्राम, सौ ग्राम अथवा सहस्त्र ग्रामों की भी राज्यों में ईकाइयाँ होती थीं। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारियों का अभिरक्षण अथवा देखरेख करते थे। इसलिए प्रत्येक अधिकारी अपने दायित्व क्षेत्र एवं अधिकारियों का प्रतिवेदन अपने वरिष्ठ अधिकारी को प्रेसित करता था। इस प्रकार प्रशासनतंत्र सफलतापूर्वक संपादित होता है।

कुशल एवं धार्मिक राजाओं तथा मंत्रियों के अनेकानेक इस प्रकार के भी उदाहरण प्राप्त होते थे जो अपने अधीनस्थ क्षेत्रों का सीधे यात्रा या जन साक्षात्कार के माध्यम से अथवा भेष बदलकर

जनता के बीच जाकर जनकल्याण, प्रशासनिक ईकाई एवं उससे सम्बन्धित अधिकारियों की जानकारी प्राप्त कर समस्याओं का निदान करते थे। कुशासन या अनियमितता करने वाले अधिकारियों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

**ये कार्यिकभ्योऽर्थमेव ग्रहण्युः पापचेतसः।**
**तेषां सर्वस्वभादाय राजा कुर्यात् प्रवासनम्॥**

–मनुस्मृति, 7/124

(अर्थात् जो कर्मचारी पापाचारी बनकर प्रजा से धन ले, उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्य जप्तकर राजा उसे राज्य से निर्वासित कर दे।)

ग्राम ईकाई के अधिकारियों के उनके कार्यों के सम्पादन हेतु उनके पद को ध्यान में रखकर उन्हें यथोचित परिश्रमिक निर्धारित किया जाता था।

### 7.6 हिन्दू राष्ट्र पूर्ण प्रासंगिक

हिन्दू राष्ट्र के संदर्भ में विश्व की उत्सुकता, हिन्दुत्व भावना के पक्षधर एवं हिन्दुत्व विरोधी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियां के इन तीनों प्रकार के व्यक्तियों एवं चिन्तकों के अंतरंग में इस अतिसम्वेदनशील प्रश्न हिन्दुत्व के संदर्भ में अनेक विचार अवश्य उठते हैं। हिन्दू, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू जीवन पद्धति तथा हिन्दू लोक जीवन से सम्बन्धित इसी पुस्तक के अन्यान्य अध्यायों के अध्ययन से उक्त प्रश्नों का स्वतः उत्तर प्राप्त हो जाना चाहिए। परन्तु फिर भी यदि कोई संशय है तो उसे इस अधिभाग के अध्ययन से स्पष्ट किया जा सकेगा।

हिन्दू साहित्य में एक सुभाषित है–

**तातस्य कूपोअयमिति ब्रुवाणाः।**
**क्षार जलं का पुरुषाः पिवन्ति॥**

(अर्थात् खारे जल को जो केवल इसलिए पीता है कि उस कुएं का निर्माण उसके पूर्वजों ने किया है, तो वह कायर या मूर्ख पुरुष है।)

हिन्दू राष्ट्र के पुनरुत्थान का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि हिन्दू दर्शन के चिन्तक, हिन्दू संस्कृति एवं लोक जीवन में व्याप्त उन अनेकानेक रूढ़ियों तथा कुरीतियों को मान्यता देना चाहते हैं। आज

हिन्दू समाज में व्याप्त सामाजिक विषमता, भेदभाव, ऊंच-निम्न की भावना, अस्पृश्यता तथा सम्पन्नता एवं विपन्नता के बोध व्यवहार का न तो कोई व्यवहारिक अथवा मानसिक रूप से मानता होगा न ही ऐसे असामाजिक, अवैज्ञानिक, अप्रसंगिक एवं कुतर्कपूर्ण तत्थों पर विश्वास है। आज की उक्त सामाजिक समस्याएं बड़ी गहराई से हिन्दू जीवन में पैठ बनाकर हिन्दू राष्ट्र की अनेक विशेषताओं को मटियामेट कर रही हैं।

हिन्दू राष्ट्र एक सांस्कृतिक अवधारणा है। हिन्दू राष्ट्र दर्शन का सार युगानुयुगीन यानी सनातन काल से प्राप्त सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल रहा है। हिन्दू धर्म के महान ऋषि विश्व के प्रत्येक भाग में गए। उत्तरापथ का इतिहास क्रमशः मिटता जा रहा है। जबकि उत्तरापथ द्वारा हिन्दू व्यापारी पश्चिम में गान्धार, ताशकन्द, वर्लिन के साथ इंग्लैंड तक एवं पूर्व में ढाका, रंगून होते हुए जावा एवं सुमात्रा द्वीपों के माध्यम से आस्ट्रेलिया तक पहुंचते थे। विश्व मानचित्र में यह पथ उत्तर दिशा में अवस्थित होने के कारण इसका नाम ही उत्तरापथ रख दिया गया। आज भी पश्चिम अथवा पूर्वोत्तर के अनेकों देशों में हिन्दू संस्कृति का अवशेष प्राप्त है। चीन एवं चीन से ही जापान में पहुंचा हुआ 'शिन्तू' धर्म 'हिन्दू' का ही पर्याय है।

किसी भी देश की उन्नति का सीधा एवं सुस्पष्ट पक्ष वहां की जनता के भावनात्मक जुड़ाव से ही होता है। जब तक जन भावना की मनोवैज्ञानिक वृत्ति में कुछ गुण विशेष स्व के साथ स्वराष्ट्र विकास के लिए नहीं उत्पन्न होता तब तक किसी भी प्रकार का विकास सम्भव नहीं है। हिन्दू लोक जीवन में सामूहिक विकास का प्राकृतिक भाव हिन्दू संस्कृति पर आधारित होने के कारण आध्यात्मिक चिन्तन एवं धर्म पर आधारित सामाजिक स्वरूप में कल्याणकारी मनोभाव एवं वृति का निर्माण होता है। ऐसे में न केवल मानव अपितु प्रकृति एवं जीव-जन्तु सबका कल्याण सुनिश्चित माना जाता है।

हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा के अन्तर्गत मानव चरित्र में हिन्दू धर्म के दस लक्षणों का प्रत्यक्षीकरण मानव को सुपंथ पर चलने एवं मानव के साथ सम्पूर्ण चर-अचर एवं प्रकृति के संरक्षण के लिए पर्याप्त है। आज उपभोक्तावादी संस्कृति के तहत प्राकृतिक असन्तुलन, विज्ञान का विनाशकारी रूप तथा अशान्ति मानव के आस्तित्व के

लिए चुनौती बन गया है। ऐसे भयावह स्थिति को नियंत्रित करने के लिए हिन्दू राष्ट्र के कल्याणकारी सिद्धान्त को सम्पूर्ण संसार को एक दिन पुनः आत्मसात करना होगा।

## 7.7 हिन्दू राष्ट्र पूर्ण व्यवहार्य

हिन्दू धर्म वैचारिकी विशुद्ध, विशिष्ट एवं व्यापक जीवन दर्शन है। इस वैचारिकी पर आधारित जीवन पद्धति हिन्दू लोक ज़ीवन के विविध पक्षों को उजागर करती है। प्रकृतिपरक हिन्दू जीवन पद्धति एक ऐसे लोक जीवन की स्थापना करती है जो सामाजिक सम्बन्धों, प्रकृति के संवेदनाओं, उपहार स्वरूप प्राकृतिक संसाधनों और उनके उपभोग, आध्यात्म आधारित चिन्तन और सृष्टि निर्माता एवं सृष्टि संचालनकर्ता के प्रति सभी प्रकार के समर्पण की भावना से ओत-प्रोत होता है। हिन्दू लोक जीवन मानवीय व्यवहार के उन सामाजिक सिद्धान्तों को भी अवगाहित करता है जिसे सुसंस्कृत व्यवहारों, सामाजिक मानकों पर आधारित मूल्यों और हिन्दू धर्म के दस लक्षणों (धैर्य, दया, तपस्या, अचौर्य, पवित्रता, इन्द्रिय नियन्त्रण, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अहिंसा) को धारण करने के स्वभाव से पोषित किया जाता है। ऐसे में इन्हीं तथ्यों पर आधारित हिन्दू राष्ट्र मानव के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दर्शन कहा जा सकता है।

हिन्दू राष्ट्र दर्शन के सम्पूर्ण अवयव हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जीवन पद्धति की विशेषता से परिपूर्ण हैं। हिन्दू धर्म आध्यात्मिक और भौतिक चिन्तन पर आधारित मानव, मानव समाज तथा प्रकृति की रक्षा एवं उसकी निरन्तरता बनाए रखने की व्यवस्था की धारणीयता है। इसी प्रकार हिन्दू जीवन पद्धति, आचार-व्यवहार, मर्यादित आचरण, प्रकृति के संरक्षण या विनम्रतापूर्ण उपयोग एवं दृश्य तथा अदृश्य सत्ता के प्रति सम्मान इत्यादि से लिया जाता है। इस प्रकार हिन्दू राष्ट्र न केवल हिन्दुस्तान अपितु सम्पूर्ण संसार के मनुष्यों के लिए महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

हिन्दू राष्ट्र का अधिष्ठान हिन्दू संस्कृति है जो किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित है। हिन्दू संस्कृति प्रकृति के वैज्ञानिक स्वरूप एवं मानव जीवन दर्शन के अन्तर्सम्बन्धों का एक वास्तविक स्वरूप है। प्रकृति भेदभाव रहित एवं सर्वकल्याणकारी होती है। जाति भेद,

रंग भेद, आर्थिक भेद, लिंग भेद इत्यादि से परे प्रकृति के स्वाभाविक गुणों के साथ सनातन हिन्दू संस्कृति विश्व के अन्यान्य संस्कृतियों को भी आलोकित करती रही है। इसलिए हिन्दू संस्कृति पर अवलम्बित हिन्दू राष्ट्र संसार के लिए सरस एवं व्यवहारणीय है। आज मानव अस्तित्व को चुनौती देते हुए स्वयं के मानवीय व्यवहारों, सामाजिक सम्बन्धों में व्याप्त भारी कटुता, अमीरी-गरीबी का प्रदर्शन, मानव जीवन के लिए आवश्यक अन्न को उत्पादित करने वाले किसानों की दीन दशा, अभावग्रस्त जीवन जी रहे श्रमिकों एवं संसार भर में बेरोजगारी की समस्या से जुझ रही युवा पीढ़ी इत्यादि समस्याओं को हिन्दू राष्ट्र के आध्यात्मिक एवं भौतिक चिन्तन के आधार पर हल किया जा सकता है।

सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक मूल्यों का एकीकरण, वर्ग-संघर्ष, अन्तर्जातीय संघर्ष, अस्पृश्यता, रंगभेद, पंथ संघर्ष इत्यादि जटिल सामाजिक समस्याओं द्वारा मानव व्यवहार असामाजिक, अवांछनीय एवं अराजक हो जाता है। पश्चिमी संस्कृति दर्शन जहां इन व्यवहारों के लिए कठोर व्यवहार का अनुमोदन करते हैं, वही हिन्दू संस्कृति एवं लोक जीवन में ऐसी परिस्थितियों को उपदेशों अथवा सत्य विश्लेषण कर उसके वास्तविक स्वरूप से परिचय कराने के व्यवहारिक दृष्टिकोण का अनुमोदन करता है। ऐसे में हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा के तहत संसार को एक परिवार मानने की वैश्विकी वैचारिकी 'वसुधैवकुटुम्बकम्' सम्पूर्ण मानव प्रजाति के लिए एक वरदान है। हिन्दू राष्ट्र दर्शन चिन्तन वैश्वीककरण की आज की अमानवीय एवं कुछ देशों द्वारा सम्पूर्ण संसार पर शासन करने की प्रवृत्ति को पूर्णरूपेण अनर्थकारी घोषित करता है। समय रहते कुछ देशों की इस प्रवृत्ति को नियन्त्रित नहीं किया गया अथवा वैश्वीकरण के इस अमानवीय सिद्धान्तों को नहीं फैलने से रोका गया तो संसार का भारी अहित हो सकता है। वैश्वीककरण के अन्धानुकरण के दौड़ में बौद्धिक सम्पदा अधिनियम को यदि दृष्टिगत करें तो देखेंगे कि जिन वैज्ञानिकों ने कोई वैज्ञानिक खोज किया उसे अपने नाम से पेटेन्ट करवाकर उसे अपनी निजी सम्पत्ति घोषित कर लेता है, किन्तु हिन्दू चिन्तन में हिन्दू ऋषियों एवं विद्वानों ने ऐसा कदापि नहीं किया है, अपितु इसे इस प्रकार के निजीकरण को अमानवीय घोषित किया है।

हिन्दू राष्ट्र की वैचारिकी आज मानव के लिए कितना उपादेय है इस तथ्य से शायद ही कोई प्राणी असहमत होगा। मूल्यपरक जीवन दर्शन, प्रकृति का संरक्षण एवं उसका सदउपयोग तथा संसार के अनेक देशों के व्यक्तियों द्वारा शान्ति की खोज में हिन्दुस्तान आकर हिन्दू संस्कृति एवं मान्यताओं के आस-पास भटकना इस तथ्य को उजागर करती है कि आज संसार हिन्दू राष्ट्र दर्शन की ओर आदर एवं अपेक्षा से देख रहा है। हिन्दू धर्म के आधे सिद्धान्त यानी एक पक्ष को सम्पूर्ण विश्व मानता है जिसे भौतिक स्वरूप यानी वैज्ञानिक विकास अथवा विज्ञान कहते हैं। अब तो मात्र दूसरा पक्ष यानी अध्यात्म ही को आत्मसात करना बचा है। जिस दिन लोग अध्यात्म में विश्वास कर जैसे विज्ञानसम्मत कार्य करते हैं, उसी तरह विज्ञान एवं अध्यात्म सम्यक व्यवहार करने लगेंगे तो यह माना जा सकेगा कि वे हिन्दू राष्ट्र के सिद्धान्तों का अनुगमन कर रहे हैं।

अध्यात्म एवं विज्ञान के मिश्रित सिद्धान्तों पर आधारित मानवीय व्यवहार रूपी हिन्दू जीवन पद्धति पर अधिष्ठित हिन्दू राष्ट्र दर्शन में सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं पंथ निरपेक्षता हिन्दू राष्ट्र की विशेषता का एक अन्य स्वरूप है। हिन्दू धर्म दर्शन में सहिष्णुता एवं पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य अति विशिष्ट है। यहां सहिष्णुता एवं पंथ निरपेक्षता का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि व्यक्ति या व्यवस्था किसी व्यक्ति अथवा पंथ के सम्मुख समर्पण करे बल्कि उसके मानवीय दृष्टिकोण का अनुभव कर उसके साथ सहयोग एवं अच्छे विचार रखे। हिन्दू धर्म चिन्तन में सहयोग का भाव सेवा, दान तथा उपकार से लिया जाता है जिसे सार्वजनिक प्रदर्शन से दूर रखा जाता है। इस भौतिकता की गोपनीयता ही इसकी आध्यात्मिकता है। इस प्रकार ऐसे दृष्टान्त से परिपूर्ण हिन्दू वैचारिकी पर आधारित हिन्दू राष्ट्र वर्तमान लोक जीवन के लिए परमाश्वयक है।

हिन्दू राष्ट्र दर्शन द्वारा ईश्वरीय प्रदत्त प्रकृति एवं उसी प्रकृति का उपभोग कर रहे मानव समाज दोनों के आस्तित्व के निरन्तरता एवं गतिशीलता की कामना करता है। आज पृथ्वी पर उत्तम जलवायु, कृषियोग्य तथा रत्नगंर्भाभूमि, वनस्पतियां, खनिज-रसायन, अन्याय संसाधन इत्यादि प्रचुर मात्रा में है। इन्हें कैसे सुरक्षित, संवहनीय एवं सर्वकालिक रहने दिया जाए इसका चिन्तन मानव को ही करना है।

इनके अस्तित्व रक्षण पर मानव का भविष्य का अस्तित्व रक्षित हो सकेगा। हिन्दू राष्ट्र दर्शन में मानव अस्तित्व रक्षण का आधार प्रकृति संरक्षण से जोड़कर देखा जाता है।

हिन्दू राष्ट्र में मानव का विकास सर्वाधिक रहा है। सनातन वैदिक काल में ज्ञान विज्ञान एवं मानवीय सम्वेदनाओं से युक्त लोक जीवन अपनी पराकाष्ठा पर थी। तत्पश्चात् हिन्दू लोक जीवन प्रकृति, जीव-जन्तु एवं मनुष्य के अंतर्सम्बन्धों पर आधारित था। आधुनिक विज्ञान का विकास वैदिक ज्ञान को सत्यापित करने के अलावा और कुछ नहीं है। हिन्दुस्तान के प्राचीन ज्ञान को आज सम्पूर्ण संसार की मान्यता है। विज्ञान का भी अत्यन्त विकसित रूप रहा है। विशेषतः विद्युत शास्त्र, यन्त्र विज्ञान, धातु विज्ञान, विमान विद्या, नौका शास्त्र, वस्त्र उद्योग, वैदिक गणित, काल गणना, खगोल शास्त्र, रसायन शास्त्र, कृषि एवं वनस्पति शास्त्र, प्राणी एवं स्वास्थ्य विज्ञान, ध्वनि तथा वाणी विज्ञान, लिपि विज्ञान इत्यादि अत्यन्त विकसित अवस्था में था। आधुनिक विज्ञान प्राचीन हिन्दू विज्ञान के समक्ष दसमलव एक प्रतिशत भी नहीं विकसित है। उदाहरणार्थ आयुर्वेद में 'सार्द्धत्रिकोटि' (साढे तीन करोड़) शरीर तन्तु यानी नर्ब्स की गणना की गई किन्तु आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में बहत्तर हजार तक की ही गणना हो सकी है। इसका तात्पर्य हुआ कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की खोज लगभग दसमलव एक (.1) प्रतिशत रही है। इसी औसत में सभी विषयों एवं शास्त्रों में आधुनिक विज्ञान की स्थिति है। इसलिए यह सिद्ध है कि हिन्दू राष्ट्र दर्शन में ज्ञान और विज्ञान दोनों विषयों पर सर्वाधिक महत्त्व होने के कारण आज भी यह संसार के लिए पूर्णतः उपादेय है।

## 7.8 हिन्दू समाज एवं पंथ निरपेक्षता (सेक्यूलरिज़्म)

आज सेक्यूलरिज़्म राजनीति के आवश्यक शस्त्र के रूप में विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के द्वारा प्रयुक्त किया जा रहा है। सेक्यूलरिज़्म नामक इस शस्त्र का प्रयोग हिन्दू अथवा हिन्दूवादी चिन्तकों के मनोबल को गिराने तथा हिन्दू विरोधी ताकतों के तुष्टीकरण के लक्ष्य प्राप्ति हेतु हो रहा है। वर्तमान समय में देश में मुसलमानों की बढ़ी हुई जनसंख्या को ध्यान में रख सभी पार्टियां

अपने वोट बैंक को मजबूत करने के लिए सेक्यूलरिज़्म नामक सूत्र का प्रयोग कर रही हैं।

सेक्यूलरिज़्म शब्द की उत्पत्ति और विकास के इतिहास के क्रम को समझना सबके लिए आवश्यक है। मुख्यतया एक सामान्य जन को सेक्यूलरिज़्म का तात्पर्य, भावार्थ, निहितार्थ, परिभाषा एवं इसके ढाँचे को समझना अति आवश्यक है, क्योंकि राजनैतिक पार्टियों एवं तथाकथित राजनेताओं के अर्थहीन सेक्यूलरिज़्म के सिद्धान्त द्वारा सामान्य जन को ही छला जाता है। जिनको छला जाता है अथवा जिनके पक्ष में छल-कपट पूर्ण कार्य किया जाता है, दोनों के हित में सेक्यूलरिज़्म के भाव का कोई औचित्य नहीं है। सेक्यूलरिज़्म शब्द का अनुवाद आज साहित्य में धर्म-निरपेक्षता के रूप में कर दिया गया है जो गलत है। धर्म-निरपेक्षता में 'धर्म' शब्द प्रयोग की वास्तविकता तो यह है कि अनुवाद की भूल के कारण 'धर्म' शब्द लोकाचार में प्रयुक्त होता चला गया। वास्तव में 'धर्म' शब्द के स्थान पर 'पंथ' शब्द का प्रयोग होना चाहिए था। धर्म तो एक संज्ञा है। जिस प्रकार इस्लाम-निरपेक्ष या ईसाई-निरपेक्ष शब्द नहीं हो सकता, उसी प्रकार धर्म-निरपेक्ष शब्द भी नहीं हो सकता है। इसलिए 'सेक्युलर' शब्द के अनुवाद में 'धर्म' की जगह 'पंथ' शब्द होना चाहिए। धर्म तो धर्म है वैसे ही इस शब्द की भी पहचान है जैसे ईसाई शब्द या इस्लाम शब्द है।

'धर्म-निरपेक्षता' की भावना को प्रसारित करके सर्वप्रथम हिन्दुओं को छलकर उनके मतों को प्राप्त करके तथाकथित राजनैतिक पार्टियां अपनी सत्ता पाने के लक्ष्य को पूरा करती हैं। किन्तु 'बिचारे हिन्दू' जो उनके प्रपंच का शिकार को जाते हैं, उन्हें क्या प्राप्त होता है? सच तो यह है कि हिन्दुओं को 'पंथ-निरपेक्षता' का पाठ पढाने वाले उल्टी गंगा बहाना चाहते हैं? 'सर्वधर्म समादर भाव' की मानसिकता वाले हिन्दूओं से सेक्यूलरिज़्म की अपेक्षा न करके अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता हेतु छल-प्रपंच, जेहाद एवं उग्रवादी लडाइयों के लिए आवाहन करने वाले इस्लामानुयायियों और धर्म परिवर्तन के नाम पर अपनी जनसंख्या बढ़ाकर भू-भाग पर अपने समर्थकों की संख्या बढ़ा लेने की मानसिकता वाले ईसाइयत के समर्थकों से क्या 'पंथ-निरपेक्षता' की अपेक्षा करनी चाहिए?

वास्तव में 'सेक्यूलर' शब्द अस्तित्व में कब और कैसे आया, इसे समझने की आवश्यकता है। यूरोप में ईसाइयत मत के नेता के रूप में पोप का स्थान था। यूरोप के अनेकानेक देश जर्मनी, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, हालैंड इत्यादि राजाओं द्वारा शासित थे। किन्तु पंथ के शीर्ष नेता होने के कारण पोप को ही मुख्य शासक माना जाता था। प्रत्येक विषय में पोप का निर्णय अन्तिम निर्णय के रूप में स्वीकृत था। इस प्रकार इन देशों में पोप के प्रतिनिधि के रूप में चर्च और चर्च के द्वारा जारी ऊटपटांग निर्देशों की राजाओं के आदेशों से अधिक मान्यता थी। ऐसी स्थिति में पोप एवं चर्चों के प्रति राजाओं में अवमांनना तथा रोष के भाव थे। चर्चों के निर्देश भी बड़े अजीब तथा अन्यायपूर्ण थे। पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं सदी के मध्य लगभग पांच लाख महिलाओं को चर्च के निर्देश पर 'डायन' (वीचक्राफ्ट) घोषित कर उन्हें क्रूरता के साथ मार डाला गया। इसी प्रकार चर्च के अन्याय, मूर्खता, हास्यास्पद और दोषपूर्ण निर्णयों पर इन राजाओं के असन्तोष, रोष एवं प्रतिक्रिया से व्यापक विद्रोह हुआ। इतना ही नहीं प्रबल विरोध के साथ ही इन राजाओं ने पोप के एकाधिकार से स्वयं को मुक्त कर अपनी स्वाधीनता घोषित कर ली। इस प्रकार पोप के थियोक्रेटिक स्टेट (पंथ-राज्य) के विरुद्ध तथा विपरीतार्थी शब्द के रूप में 'सेक्युलर' शब्द का प्रयोग हुआ। किन्तु क्या हमारे देश में इसकी आवश्यकता है? क्या हमारे यहां देश में 'हिन्दू धर्म' या मंदिर अथवा हमारे हिन्दू धर्म के शीर्ष महात्माओं द्वारा शासन संचालन में अन्याययुक्त कार्यों के समर्थन हेतु हस्तक्षेप होता है? अतः परिस्थिति तो यह है कि हिन्दू नाम लेने पर ही राजनेताओं को एक राजनैतिक अपराधी के रूप में देखा जाता है। जबकि हिन्दू जीवन पद्धति और हिन्दू लोक जीवन की परम्पराएं मानव के अस्तित्व की रक्षा के साथ प्रकृति की सुरक्षा एवं संचय हेतु महत्त्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तकों एवं विद्वानों ने इसे सिद्ध किया है। यही कारण है कि भारतीय उच्चतम न्यायालय ने भी हिन्दू जीवन पद्धति को एक जीवन जीने की कला माना है।

सेक्यूलरिज़्म की बात करने वाले हमारे देश के नेताओं ने कभी यह समझने का प्रयास नहीं किया कि इस देश में यूरोप जैसा पांथिक-राज्य कभी नहीं था। आज भी लम्बे काल से कम्युनिस्ट

द्वारा शासित राज्य बंगाल, ईसाइयों द्वारा संचालित मिशनरियों का मुख्य कार्य क्षेत्र उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं बिहार इत्यादि प्रदेश हैं। इन स्थानों पर प्रतिवर्ष बारह-तेरह सौ आदिवासी महिलाओं को डायन अथवा वीचक्राफ्ट कहकर क्रूरता के साथ क्यों मार डाला जाता है? क्या यह सब हमारे धार्मिक नेताओं और शंकराचार्यों के आदेश पर होता है? 'सेक्यूलरिज़्म' की बात करने वाले उन राजनेताओं में आज इतनी भी शक्ति नहीं है कि वे जिस पंथ में हैं, उसे त्यागकर एक नास्तिक के रूप में राजनीति में रहे। मंचों पर सेक्यूलरिज़्म की बातें करने वाले इन नेताओं को तान्त्रिक, पुजारी, ज्योतिषियों एवं मंदिरों में नाक रगड़ते हुए एवं ग्रह शान्ति हेतु अपनी अंगुलियों में तरह-तरह की पत्थरयुक्त अंगुठियां पहने सहज में ही देखा जा सकता है।

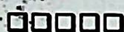
'पंथ-निरपेक्षता' के संदर्भ में तो इस देश में चर्चा होनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि यहां धर्म का अर्थ किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रतिपादित नियम कानून नहीं, अपितु हजारों-हजार ऋषियों, तरह-तरह के अनुभवों और प्रयोग करने वाले विशेषज्ञों, तथा विद्वानों द्वारा लम्बेकाल की प्रक्रिया के बाद लोक जीवन एवं समाज में स्थापित मान्यताओं तथा परम्पराओं को प्रयोग में लाया जाता रहा है। 'सर्व धर्म समभाव' और 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' जैसी भावना पर स्थापित समाज में अनर्गल अथवा अनर्थकारी भाव कभी नहीं था। कालान्तर में आई कुरीतियों, भेदभाव तथा उच्च-निम्न के भाव ने मुस्लिम, मुगल और अंग्रेजों के शासन में हिन्दू धर्म में स्थान बनाया। मुगलकाल में नवाबों के विलासितों के परिणामस्वरूप मैला ढोने की प्रथा के साथ छुआछूत प्रारम्भ हुआ। अमीरी-गरीबी तथा उच्च-निम्न का भाव शक, हूण, फारसी, मुसलमानों के आक्रमण और भयानक लूट-पाट के साथ अभाव एवं खानाबदोस रूपी जीवन में पहुंचने के बाद ही हिन्दुओं में स्वार्थ, अपराध, निर्धनता, उच्च-निम्न इत्यादि कुरीतियां आई। अब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तेजी से हिन्दू समाज में सुधार कार्य हुए हैं। छुआछूत, उच्च-निम्न एवं जाति या वर्ण के नाम पर भेद-भाव समाज के प्रबुद्ध लोगों की मान्यता एवं संविधान लागू होने के साथ समाप्त घोषित है।

पश्चिम देशों में सेक्यूलर का बस इतना तात्पर्य था कि ईसाइयत एवं चर्च के विषयों में राज्य का हस्तक्षेप न हो, किन्तु हमारे यहां यह उलट सोच है कि राज्य के विषयों में धर्म का हस्तक्षेप न हो। जरा ध्यान दिया जाए कि समाज क्या है? समाज एक समूह में रहने की वैचारिकी पर टिका हुआ है। इस प्रकार की सामाजिक वैचारिकी का आधार तो धर्म है। धर्म का अर्थ है ही सामाजिक नियमों, सिद्धान्तों को धारण करना। ऐसे में राज्य अथवा शासन के विषयों में धर्म का हस्तक्षेप न करने की मनोवृत्ति हास्यास्पद और बेबुनियाद है। फिर भी यूरोप में बने सेक्यूलरिज़्म सिद्धान्त का अनर्थकारी प्रयोग क्या राजनितिज्ञों के मानसिक दिवालियापन का द्योतक नहीं है?

हिन्दुस्तान में 'सर्व धर्म समभाव' की वैचारिकी आदिकाल से है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में अनेक पंथ, पूजापाठ की विधि एवं मतमतान्तर के लोग हैं, किन्तु एक संस्कृति, एक राष्ट्रीयता और एक पहचान में बनी हुई है। इतना ही नहीं यहां सदैव सभी मतों एवं पूजा पद्धतियों को समभाव से ही देखा गया। मुसलमान इस देश में आए। उस काल खण्ड में भी मुस्लिम लुटेरों से यहां के राजाओं का युद्ध हुआ, किन्तु युद्धों के चलते हुए भी उन्हें उनकी उपासना एवं पंथ प्रचार से कभी नहीं रोका गया। ईसाइयों के साथ भी यही हुआ। जब वे केरल तट पर पहुंचे तो हिन्दू राजा एवं जनता ने उनका स्वागत ही नहीं उन्हें गिरजाघर बनाने के लिए भूमि, पंथ प्रचार करने की सुविधा के साथ धर्मान्तरण करने की अनुमति भी दी। यही कारण है कि आज केरल में ईसाइयों की जनसंख्या अधिक है। ऐसा करने वालों में राणा प्रताप, शिवाजी और राजा विजयनगर के नाम प्रमुख हैं जो हिन्दुत्व की पहचान माने जाते हैं। आज 'पंथ-निरपेक्षता' के नाम पर हिन्दू नेताओं या मतदाताओं को शिक्षा देने का कार्य हो रहा है। 'अल्पसंख्यकवाद' और 'पंथ-निरपेक्षता' के नारे पर राज्य प्राप्त करने की होड़ लगी हुई है। स्मरण रहे कि आज भी हिन्दुस्तान में हिन्दू बहुसंख्यक है। जिनके रक्त में ही 'सर्व धर्म समादर' भाव है। यही कारण है कि 'पंथ-निरपेक्षता' का नारा इस देश में चल रहा है। स्मरण रहे कि अगर हिन्दू अल्प मात्रा में हुआ तो सर्व धर्म समभाव की बात तो अनसुनी होगी ही, किन्तु

'पंथ-निरपेक्षता' को खोजने पर भी नहीं पाया जा सकेगा।

हिन्दुत्व एक सतत् प्रवाहित, सतत् विकासरत जीवन दर्शन है। यह इसलिए क्योंकि इसमें विचार स्वातंत्र्य को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। केवल वही मन अथवा चित्त वास्तविक एवं सर्वकल्याणकारी विचारों को जन्म दे सकता है जो पूर्वाग्रह रहित हो। इसलिए 'पंथ-निरपेक्षता' की आवश्यकता हिन्दुओं को नहीं बल्कि अन्य मतानुयायियों को अत्यधिक है। हिन्दू व्यक्ति धर्म विहीन कभी नहीं हो सकता। धर्म का अर्थ ही है वैज्ञानिक और आध्यात्मिक कारकों पर आधारित जीवन मूल्य जिसे मानव धारण करें।



# अध्याय-8

## हिन्दुत्व की उपादेयता

हिन्दू जीवन पद्धति सहिष्णुता, समन्वयवादिता एवं प्रकृति जन दृष्टिकोण की युक्तिसंगत सिद्धांत है जिसके स्वरूप में आध्यात्मिक दार्शनिकता एवं संतुलित जीवन जीने के मूल्य निहित हैं। हिन्दू संस्कृति एवं जीवन पद्धति का सुखद भविष्य है। संसार के सभी मानव हिन्दू संस्कृति के पूर्णवाहक होने की विशेषता धारण करते हैं। हिन्दू संस्कृति की प्रकृति परकता के निर्माण में प्रकृति की भूमिका सर्वोपरि रही है।

हिन्दू समाज में जीव जगत की जो परिकल्पना शाश्वत काल से चली आ रही है, वह उन गुणों से ओतप्रोत है जिन्हें ब्रह्माण्ड के किसी भी भौतिक या आध्यात्मिक आयाम में परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दू धर्म का लक्ष्य तथा हिन्दू धर्म चिन्तन एवं एकात्ममानववाद का विस्तृत उल्लेख किया गया है। वस्तुतः एकात्ममानववाद का सिद्धान्त पं. दीनदयाल उपाध्याय के विश्व दृष्टि का आधार है।

### 8.1 हिन्दू धर्म का लक्ष्य

हिन्दू धर्म का लक्ष्य है, परम चैतन्य में प्रवेश और उस चेतना में प्रवेश करके जीवन के प्रति स्वयं को समग्रता से समझना, जानना और उसका निर्वाहन करना। हिन्दुत्व भू-सांस्कृतिक अवधारणा से जुड़ी आत्मान्वेषण की एक यात्रा है। यह अंतस की खोज है। यह गहन सत्य को अनुभव करने का प्रयास है। इस यात्रा में पंचतत्त्व द्वारा निर्मित शरीर का सहयोग लिया जाता है, नियन्त्रित इन्द्रियों का सहयोग लिया जाता है। विचारों तथा अनुभूतियों का सहयोग लिया जाता है। प्राण ऊर्जा का सहयोग लिया जाता है। ज्ञान-विज्ञान का सहयोग लिया जाता है, क्योंकि ये सब चेतना के ही अंश है। इन सब के सहयोग के बिना आत्मतत्व को और हिन्दुत्व की दिव्यता को जाना ही नहीं जा सकता। जब हम जीवन के प्रत्येक पक्ष को आत्मज्ञान से जोड़ लेते हैं तो फिर जीवन विपरीत होकर भी एकरस हो जाता है।

वास्तव में हिन्दुत्व का सारा प्रयास प्रकृति के साथ सामंजस्य एवं एकरसता प्राप्त करना है। सभी सुखी हों, सभी का कल्याण हों, समाजिक समरसता से परिपूर्ण समाज हो, सभी की समृद्धि हां, सभी में बंधुता हो, सभी एक दूसरे के सहयोगी बने, कोई किसी से द्वेष न करें। वसुधैवकुटुम्बकम्, विश्वमेकनीडम्, सर्वे सुखिन भवन्तु इत्यादि नीति वाक्यों का हिन्दू साहित्य में पाया जाना यह सिद्ध करता है कि इन सूक्तियों को फलीभूत करने के उपाय या सिद्धान्त हिन्दू जीवन पद्धति में ही निहित होंगे।

हिन्दू धर्म के गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों की जानकारी सामान्य जीवन शैली के अनुपालन में तो दुष्कर है, किन्तु हिन्दुत्व के दसों तत्त्वों को धारण करने का प्रयास करके इन गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों के दर्शन को उजागर किया जा सकता है। हिन्दुत्व के कुछ गुणों की प्रतिच्छाया मात्र को अवधारित करने के कारण विगत दो-शताब्दियों में कुछ ऐसे लोग हुए हैं जिन्हें आज भी समाज अपने पथ प्रदर्शक के रूप में याद करता है। इन महापुरुषों की कड़ी में स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी श्री अरविन्द, महात्मा गांधी इत्यादि हैं। यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि हिन्दू धर्म के अनुपालन में व्यक्तिगत अभ्युदय के साथ सामाजिक उत्कर्ष निहित है। हिन्दू धर्म अनुपालन हेतु हिन्दू जीवन पद्धति के प्रत्येक कारकों के आधार पर हिन्दू के दसों तत्त्वों को धारण करके वैयक्तिक उत्थान प्राप्त किया जा सकता है। वैयक्तिक अभ्युदय ही सामाजिक उत्कर्ष की प्राथमिक इकाई है।

हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व से परिपूर्ण सामाजिक व्यवहार उन मानवीय मूल्यों को स्थाई बना देती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति सम्मान, प्रेम, सहृदयता तथा भातृत्व भाव धारण करता है। इतना ही नहीं हिन्दू जीवन-दर्शन अपनी मौलिक वृत्ति को ईश्वरीय विधान से संयुक्त रखता है। ऐसी स्थिति में हिन्दू विधानों का अनुपालन ही ईश्वरीय विधानों का अनुकरण एवं अनुसरण बन जाता है। हिन्दू धर्म दर्शन में ईश्वर, भगवान तथा देवी-देवता सम्बोधन का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रायः लोग इन शब्दों के प्रयोग करने में सावधानी नहीं रख पाते। तीनों शब्दों के अस्तित्व के पीछे कुछ ठोस आधार हैं। 'ईश्वर' शब्द का भावार्थ है-सर्वशक्तिमान,

सृष्टि निर्माता एवं संचालनकर्ता, अजन्मा (जिसका जन्म न हो) तथा चर्चा से परे (जिसकी चर्चा मानव के वश की बात नहीं) है। भगवान शब्द अथवा इसके बाद के कारक तथ्यों पर चर्चा हो सकती है। दूसरा शब्द 'भगवान' ह, जिसका भावार्थ है– गर्भ से जन्म लेने वाला महापुरुष जो 'नर से नारायण' बनने के सिद्धान्त के आधार पर ईश्वरीय तत्त्व को प्राप्त होकर किन्तु ईश्वर नहीं, आवागमन से मुक्त (जन्म लेने के बाद पुनः जन्म लेने की प्रक्रिया से मुक्त) ईश्वरीय कार्यों के संचालन में सहयोग तथा मानव के रूप में मानव समाज में श्रेष्ठ आत्मा तथा ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। जो लोग साधना, तपस्या एवं योग से अपने शरीर और आत्मा को इतना श्रेष्ठ बना लेते हैं कि ईश्वर उन्हें अपने प्रतिनिधि के रूप में चुन लेता है। यही 'नर से नारायण' बनने की हिन्दू अध्यात्म की शृंखला में एक विशिष्ट पद्धति है। ऐसे लोग भी ईश्वर की तरह सर्वशक्तिमान होते हैं किन्तु ईश्वर नहीं बल्कि उसके एक प्रतीक अथवा प्रतिनिधि होते हैं। इसी प्रकार देवता शब्द का भावार्थ है कि उच्च साधना, तपस्या तथा योग से बने। श्रेष्ठ व्यक्ति जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हो और वह अपने उसी आत्मा के रूप में आवागमन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो गया हो। आत्मा सर्वदा परमात्मा का दर्शन करे और परमानन्द को प्राप्त हो। स्मरण रहे मोक्ष और मुक्ति भी दो अलग-अलग शब्द हैं। मोक्ष का अर्थ आत्मा को उसी रूप में स्थावत् प्राप्त करना एवं मुक्ति का तात्पर्य आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना यानी आत्मा का अस्तित्व स्थाई रूप समाप्त हो जाना है। हिन्दू ऋषियों एवं मनीषियों ने अध्यात्म ज्ञान की पराकाष्ठा का दर्शन किया है। वे सभी किसी अन्य विचारों के तिरस्कार या सम्मान का नहीं, अपितु उन्हें अध्यात्म एवं विज्ञान की कसौटी पर कसकर, चिन्तन एवं मनन करके छोड़ने या अपनाने की बात करते हैं। जो कुछ भी उपलब्ध है उसे समझो, जानो, परखो तब इसके बाद अपनाने या त्यागने का निर्णय करो। किसी तथ्य को समझने के भाव से ही हम निरन्तर सत्य की ओर बढ़ते हैं। हिन्दुत्व के ज्ञान के विकास की यही मुख्य विशेषता एवं आधार है। हिन्दू जीवन के प्रति एक तटस्थ तथा निरपेक्ष सिद्धान्त है। इसके पालन से मानव की आन्तरिक दरिद्रता दूर होती है और एक नए श्रेष्ठ एवं उदार मानव

का जन्म होता है। हिन्दू धर्म की आकांक्षा है कि प्राणिमात्र का उद्धार, उपकार तथा कल्याण हो।

हिन्दू धर्म, हिन्दू राष्ट्र तथा हिन्दू संस्कृति के उल्लेख में एडिनबरो रिव्यू, अक्टूबर 1972 के अंक में छपे कुछ महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं– "हिन्दू राष्ट्र ही विश्व का प्राचीनतम राष्ट्र है। उसके मूल्यवान अवशेष आज भी अनेक स्थान पर स्थित हैं। हिन्दू राष्ट्र की संस्कृति से श्रेष्ठ ऐसी दूसरी संस्कृति तथा उन्नत विचारधारा आजतक कहीं पर नहीं मिली है।... क्षितिजों से ऊपर उठकर, हिन्दू संस्कृति के उदय सूर्य ने समस्त विश्व के कोने-कोने को प्रकाशित कर मानवता को सुखी बनाया। लेकिन इस संसार की अन्य संस्कृतियां अंधेरे में चमकते तारों के समान केवल अपने नीचे की भूमि तक ही कुछ-कुछ प्रकाश दे पाई और अल्पावधि में ही लुप्त हो गई...।"

इस प्रकार हिन्दू धर्म का लक्ष्य मानव के व्यवहार को प्राकृतिक नियमन के अनुरूप करके मानवीय अस्तित्व की रक्षा तथा पृथ्वी की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान का उपादान प्रकृति की रक्षा और मानव प्रजाति की निरन्तरता तथा समाज की गतिशीलता का अनुशीलन एवं तदनरूप क्रियाकलाप सुनिश्चित करता है। अन्यान्य मत, समुदाय या व्यवस्था में इस प्रकार के भाव नहीं हैं।

## 8.2 हिन्दू जीवन पद्धति से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य

हिन्दू जीवन पद्धति से जीवन जीने से यह तो सिद्ध था कि मानव को इस पद्धति से मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त था। यह प्रकृति आधारित था, इसलिए हिन्दू जीवन शैली यह संकेत देती है कि प्रकृति ही इनके क्रियाकलापों का नियमन करती है। प्रकृति के अनुरूप अपने जीवन को विकसित करना और उससे सामंजस्य बनाए रखते हुए अपनी दिनचर्या का निर्धारण करना हिन्दू जीवन पद्धति का प्रमुख गुण रहा है।

हिन्दू समाज में परिवार एवं कुटुम्ब प्राथमिक ईकाई थी। समाज की निरंतरता को बनाए रखने के लिए विवाह की सुव्यवस्थित पद्धति का विकास कर लिया गया था। महिलाओं का गृहस्थी में अत्यधिक

महत्त्व था। स्त्री सहधर्मिणी थी, उसी के साथ पुरूष धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करता था। नारियों में नैतिकता पूर्ण रूपेण विद्यमान थी। हिन्दू नारियां शोभन आचरण तथा सदाचार के लिए विख्यात थी। अमर्यादित आचरण करने वाले पुरुषों का भी अभाव था। सामाजिक जीवन भी कृषि प्रधान था जो आज तक बना हुआ है। जीविका प्रधान साधन कृषि एवं पशुपालन था।

प्रकृति की विभिन्न लीलाओं का द्रष्टा मनुष्य दिन-प्रतिदिन अपने अनुभवों को समृद्ध करता हुआ आज इस स्थिति में पहुंचा है। अभी भी प्रकृति के कई रहस्य उसके लिए अज्ञात हैं। पाश्चात्य सभ्यता की भौतिकतावादी प्रगति के प्रतिफल जहां व्यक्ति की सांसारिक सुख-सुविधाओं में वृद्धि कर रहे हैं, वहीं उसके विनाश की पृष्ठभूमि को भी तैयार कर रहे हैं। परमाणु शस्त्रों से सुसज्जित आधुनिक विश्व अपने विनाश के सारे साधन जुटा चुका है। अत्याधुनिक मानव विनाश के शस्त्रों के आधार पर श्रेष्टता बनाए रखने की दौड़ में मानव समाज निरंतर अपने अस्तित्व को संकट से घेरता चला जा रहा है। ऐसी स्थिति में यदि आध्यात्मिक शक्तियां प्रभावहीन हो गई तो इस विश्व को विनाश से सुरक्षित रखने वाला भी कोई नहीं होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हिन्दू संस्कृति की सुरक्षा समस्त मानव जाति को करनी चाहिए। हिन्दू संस्कृति में ही उसका अस्तित्व सुरक्षित है। हिन्दुत्व को धारण कर प्रत्येक व्यक्ति अपने शारीरिक सौष्ठव के साथ अपना मानसिक स्वास्थ्य भी बनाए रख सकता है।

हिन्दू जीवन पद्धति की प्रकृतिपरक विशिष्टताओं में सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्टता उसका सरल होना है। संतुष्टि के साथ जीवनयापन करने की शैली हिन्दू संस्कृति में ही निहित है। विलासिता की वस्तुएं जहां व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक रूप से रुग्ण करती हैं, वहीं सरल आध्यात्मिकता व्यक्ति का मानसिक एवं शारीरिक विकास प्रदान करके उन्हें स्वस्थ एवं प्रसन्न रखती हैं।

## 8.3 हिन्दू धर्म में व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्कर्ष सम्भव

हिन्दू धर्म की आधारभूत संरचना इस प्रकार की है जिसमें परम्परा से अलग अस्तित्व रखते हुए भी आध्यात्मिक धरातल पर उन मूल्यों से अलग नहीं हो सकता जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन

संचालित होता है। तात्पर्य यह कि समाज में प्रचलित मान्यताओं को यदि वह अस्वीकार करता है तो भी प्रकृतिक गुणों के अस्तित्व को अस्वीकार करना उसके लिए सम्भव नहीं है। प्राकृतिक गुणों की सार्वभौमिक प्रकृति व्यक्ति के कर्म को इस प्रकार नियंत्रित करती है कि वह अपनी दिनचर्या में उनका सम्वहन करता है। वस्तुतः हिन्दू धर्म की मूलभूत मान्यताएं ऐसी सामाजिक संरचना का सृजन करती हैं जिसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता के नियमबद्ध अनुपालन करने की समस्त स्थितियां विद्यमान रहती हैं।

हिन्दू धर्म में कुटुम्ब, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की वैचारिकी मानवहित का पोषण करती है जिसमें वैयक्तिक उत्थान के सभी अभिकरण स्वचालित ढंग से क्रियाशील रहते हैं। मैक्स बेबर ने विश्व के विभिन्न धर्मों का विश्लेषण करते हुए यह मत स्थापित किया था कि हिन्दू धर्म भौतिक जगत की तुलना में आध्यात्मिक जगत को अधिक महत्त्व प्रदान करता है, इसलिए इसके धर्मावलम्बियों का आर्थिक विकास सीमित रहता है। लेकिन उसकी यह स्थापना पूर्णतः सही नहीं है। हिन्दू धर्म के मूल ग्रंथों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि वेदों का अधिकांश भाग व्यक्ति के भौतिक उत्थान पर ही अभिकेन्द्रित है।

हिन्दू धर्मग्रंथों के विविध आयाम सरल एवं ग्राह्य सामाजिक मूल्यों का निरूपण करते हैं जिनसे सामाजिक समरसता, सामाजिक एकत्वभाव एवं नैतिक मूल्यों को धारण करने के सुगम रास्ते निर्विघ्नता के साथ प्रशस्त होते हैं। सामाजिक उत्कर्ष के लिए आवश्यक दशाओं का उद्भव हिन्दू धर्म में स्वभूत प्रक्रिया में प्रतिफलित होता है। हिन्दू धर्म में यह वैचारिकी प्रमुखता से स्थापित है कि मानव जीवन का मूल उद्देश्य क्या है? साधना एवं तपस्या केवल मनुष्य शरीर धारण करने पर ही सम्भव है। पंचतत्त्वात्मक शरीर के साथ स्वविवेक केवल मानव में ही पाया जाता है। जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कीट-पतंगों की शारीरिक एवं मानसिक संरचना ऐसी होती है कि वे साधना एवं तप नहीं कर सकते।

उपर्युक्त विचारों की सार्थकता आध्यात्मिक धरातल पर स्वीकृत होने के साथ ही सामाजिक एवं भौतिक धरातल पर भी प्रमाण योग्य

पाई गई है। हिन्दू धर्म के गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों की जानकारी सामान्य जीवन शैली के अनुपालन में दुष्कर है। इसके लिए हिन्दुत्व के उन मूलभूत गुणों का अनुपालन करना आवश्यक है जिन्हें यह धर्म अवधारित करता है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में मानसिक क्रियाओं का अन्तर्द्वन्द्व जिन दार्शनिक रहस्यों को उजागर करता है, यदि उनमें निहित युक्तिसंगतता की खोज की जाए तो कुछ ऐसी सार्वभौमिक दशाएँ प्रतिबिम्बित होगी जो मानव जीवन को सार्थक बनाने के साथ ही व्यक्ति विशेष की अमरता को भी सुनिश्चित करती हैं। हिन्दुत्व के कुछ गुणों की प्रतिछाया मात्र को अवधारित करने के कारण विगत दो शताब्दियों में कुछ लोग ऐसे हुए हैं जिन्हें आज भी समाज अपने पथप्रदर्शक के रूप में याद करता है। स्पष्टतः हिन्दू धर्म के अनुपालन में व्यक्तिगत अभ्युदय एवं सामाजिक उत्कर्ष सम्भव है। तात्पर्य यह कि वैयक्तिक उत्कर्ष की सामाजिक उत्कर्ष की प्राथमिक ईकाई है। यदि व्यक्ति का उत्कर्ष सुनिश्चित होता है तो समाज एवं राष्ट्र का उत्कर्ष स्वयंसिद्ध होता है। विराट विश्व चेतना का भी उत्कर्ष हिन्दुत्व के अनुपालन में ही सम्भव दिखलाई पड़ता है।[1]

## 8.4 हिन्दू धर्म में ईश्वर प्राप्ति अवरोध रहित

हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व से परिपूर्ण सामाजिक व्यवहार उन मानवीय मूल्यों को स्थायी बना देती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे के प्रति सम्मान, प्रेम, सहृदयता एवं भ्रातृत्व भाव धारण करता है। सामाजिक स्वतंत्रता, प्रकृतिपरक धार्मिक मूल्यों का होना, वसुधैवकुटुम्बकम् की वैचारिकी, जीव जगत के हित के प्रति मानवीय सन्नद्धता आदि कुछ ऐसी विशिष्ट स्थितियां हैं जो हिन्दू समाज एवं व्यक्ति को विभिन्न बाधाओं एवं समस्याओं से परे रखकर उसे आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर अभिप्रेरित करती हैं। इस प्रक्रिया में वह परमात्मा एवं ईश्वर से साक्षात्कार की ओर सुगमता से अग्रसर होता है।

हिन्दू जीवन दर्शन अपनी मौलिक वृत्ति को ईश्वरीय विधान से

---

1. शर्मा, रघुनन्दन प्रसाद, स्मृतियों में भारतीय जीवन पद्धति, सांस्कृतिक गौरव संस्थान, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ. 20–22

संयुक्त करता है। ऐसी स्थिति में हिन्दू विधानों का अनुपालन ही ईश्वरीय विधानों का अनुकरण एवं अनुसरण बन जाता है।[2] भौतिकतावादी जीवन पद्धति को संतुलित एवं सामान्य महत्व प्रदान करने के कारण हिन्दू जीवन पद्धति का व्यावहारिक पथ भी आध्यात्मिक बना रहता है जो व्यक्ति को ईश्वर प्राप्ति के अनुकूल बना देता है। इस सम्बन्ध में यह जानना भी आवश्यक है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए मानव तन आवश्यक है।

पंचतत्त्वात्मक मानवीय शरीर संरचना में बुद्धि की प्रधानता होने के कारण कोई भी मनुष्य अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकता है। वह किसी अन्य मनुष्य से पीछे नहीं है। इसलिए साधना-तपस्या या ईश्वर प्राप्ति की प्रक्रिया से किसी भी पंथ, प्रजाति, व्यक्ति, समूह अथवा समाज को रोका नहीं जा सकता। आधुनिक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि आदिवासी समुदाय अभी भी सामाजिक एवं आर्थिक विकास की मूलधारा से दूर है। उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न है। बस्तर में तो आज भी ऐसी बनवासी प्रजातियां निवास करती हैं जो अपने को मानव ही नहीं समझतीं। जिस प्रकार जंगलों में अन्य जीव-जन्तु निवास करते हैं, उसी प्रकार आदिवासी समुदाय के लोग भी अपना जीवनयापन करते हैं। उनकी इस स्थिति के लिए जहां विदेशी मुस्लिम आक्रान्ता शासक एवं नीतियां उत्तरदायी रही हैं, वहीं समाज में व्याप्त सामाजिक विषमता एवं स्वतंत्र भारत में नृतत्त्वशास्त्रियों की प्रगतिहीन वैचारिकी भी इसके लिए उत्तरदायी रही है।

मानव प्रजाति के इतिहास की प्रारम्भिक अवस्था की जानकारी एवं मूल्यहीन संस्कृति को विरासत के रूप में बनाए रखने की मानसिकता रखने वाले कुछ कुतर्कों के माध्यम से यह चाहते हैं कि आदिवासी जिस प्रकार का जीवनयापन कर रहे हैं, उसी प्रकार का जीवनयापन करते रहें जिससे आधुनिक समाज के लोगों के अध्ययन के लिए एक जीवन्त प्रयोगशाला उपलब्ध रहे। आदिवासी भी वही सभ्य हिन्दू हैं जिन्हें मध्यकाल में धर्म एवं स्वाभिमान की रक्षार्थ घने जंगलों में शरण लेनी पड़ी थी। उन्हें भी समाज की मूलधारा से

1. शर्मा, रघुनन्दन प्रसाद, स्मृतियों में भारतीय जीवन पद्धति, सांस्कृतिक गौरव संस्थान, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ. 20–22

सम्बद्ध होने का पुनः अवसर प्रदान किया जाना चाहिए तभी उन्हें प्रगति का अवसर प्राप्त होगा और वे मानव होने का सम्पूर्ण लाभ प्राप्त कर पाएँगे। इस स्थिति को प्राप्त करने के उपरान्त उनके लिए भौतिक सुविधाएँ तो स्वयंमेव ही सरल हो जाएँगी और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त हो जाएगा। तात्पर्य यह कि हिन्दू धर्म में प्रदत्त आध्यात्मिक विधाओं से सम्पन्न होने का उन्हें भी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। अतिवाद एवं कुरीतियों से बचते हुए रूढ़ियों का पूर्ण त्याग कर आत्म उत्कर्ष की ओर स्वयं संसार के प्रत्येक प्राणियों को आगे बढ़ना चाहिए।

## 8.5 हिन्दू संस्कृति धार्मिक एवं सांस्कृतिक सहिष्णुता हेतु आवश्यक

हिन्दू संस्कृति का सम्बन्ध मानव में विकसित सामाजिक सहिष्णुता से है। मानव जीवन में सहिष्णुता सदैव समादृत रही है। यह सद्भावना और मैत्री का प्रतीक होती है। सामाजिक सहिष्णुता हिन्दू लोक जीवन में परिलक्षित उस विशेषता की ओर संकेत करता है, जिससे सामाजिक एकता, समरसता, दया एवं करुणा का भाव जागृत करता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह किसी के आगे समर्पण है। सहिष्णुता को मानवीय मूल्यों में से एक उच्च एवं महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जिसे एक मानवीय सद्गुण भी कहा जा सकता है। सहिष्णुता को अपनापनसहित सहयोग कहा जा सकता है। सहयोग भी एक सामाजिक प्रक्रिया है अतएव उसका आशय सामाजिक समरसता सिद्धान्त के अन्तर्गत सहिष्णुता से हो सकता है।

समाजशास्त्रियों ने सहयोग को सहिष्णुता से अलग करके परिभाषित किया है। उनके अनुसार सहयोग वह प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को एक-दूसरे की सहायता से अपने हितों को पूरा करने की प्रेरणा देकर समाज को संगठित बनाती है। यह क्रिया जीवन के प्रत्येक स्तर पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यमान रहती है। इसका क्षेत्र विस्तृत होता चला गया है। परिवार के सदस्यों के साथ का सहयोग अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवहृत हो रहा है। हिन्दू समाज में यह सहयोग और सहिष्णुता के नाम से दो भिन्न रूपों में स्वीकृत है। सहयोग एक प्रक्रिया है जो हिन्दू धर्म एवं लोक जीवन में जन्मजात प्राप्य है। हिन्दू लोक जीवन में सहयोग का प्रदर्शन नहीं किया जाता।

क्योंकि सहयोग वह उपकार है जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति के लिए गोपनीय ढंग से किए जाने पर अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उपकार अथवा सहयोग को प्रदर्शित करने से उसको आध्यात्मिक भाव समाप्त हो जाता है। परोपकार के आलोक में सहयोग निःस्वार्थभाव से की गई धार्मिक प्रक्रिया कहलाती है।

सहिष्णुता एक भाव है। इसे भी सहयोग और परोपकार से निर्मित एक सदगुण ही कहा जाता है। हिन्दू संस्कृति प्रकृतिपरक होने से सदैव सहिष्णु रही है, क्योंकि प्रकृति भी सदैव सहिष्णु है। हिन्दू सहिष्णुभावना को सदैव समरसता पर आधारित प्राप्त किया जाता है। इसका प्रत्यक्ष अवलोकन हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत किया जा सकता है।

सहिष्णुता सामाजिक लोक जीवन में मान्य होती है। उसका सामान्य लक्ष्य परोपकार से सम्बन्धित होता है। सहिष्णुता में निरन्तर भाव के साथ सामूहिक धारण का भाव भी होता है। यह एक ऐच्छिक सहभागिता है, परन्तु उसमें दूसरों की तथा अपनी भी कुशलता का समावेश होता है। सहिष्णुता सदैव एक-जैसी नहीं होती बल्कि उसमें विविधता भी पाई जाती है। वह सामान्य कार्य, मित्रवत् सहयोग और सहायता मूलक सहयोग के लिए प्रयुक्त होती है। यह सहिष्णुता सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति में सहायक होती है।

हिन्दू संस्कृति में सामाजिक सहिष्णुता का प्रधान गुण निहित है। यह धर्म प्रकृतिपरक होने के कारण मौलिक रूप से इस प्रकार के गुणों को धारण ही नहीं कर सकता जिससे समाज में भेदभाव उत्पन्न हों। प्रकृति की नियामक शक्तियां अपनी निरन्तरता को बनाए रखने में सक्षम होती हैं। यही मूल कारण है कि जब-जब इस धर्म में कुरीतियां बाह्य शक्तियों द्वारा प्रविष्ट करा दी जाती है तो उन्हें दूर करने के लिए इसी धर्म के साधकों द्वारा प्रयास किया जाता है जिससे लोक जीवन में सहिष्णुता बनी रहे। हिन्दू संस्कृति में संगठन का प्राकृतिक भाव हिन्दू सामाजिक सहिष्णुता के भाव से अछूता नहीं है। हिन्दू संस्कृति व्यक्तिवादी न होकर समूह की संस्कृति है।

सामाजिक सहिष्णुता के आलोक में यह भी कहा जा सकता है कि सनातन मूल्यों को अवधारित करने वाला वैदिक ज्ञान कुछ सीमा

तक हिन्दू संस्कृति में आज भी मूर्त्त है।[3] सनातन संस्कृति के अक्षुण्ण निधियों को जब हम आधुनिक समाज में व्यंवहृत करने का प्रयास करते हैं तो हमें उन संगठनात्मक मूल्यों को भी आत्मसात् करना होगा जो सहिष्णुता के सन्दर्भ में 'बसुधैवकुटुम्बकम्' को प्रधान स्वीकार करते हैं।

## 8.6 हिन्दू जीवन पद्धति प्रकृति में सामंजस्य स्थापित करने की एक क्रिया

इतिहास इसका ज़ीवन्त एवं ज्वलन्त प्रमाण है कि पूर्णरूपेण प्रकृतिमार्गी मानव जीवन जब-जब प्रकृति के विरुद्ध आचरण करता है, विनाश को प्राप्त है। अपने निहित स्वार्थों अथवा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का दोहन एवं शोषण हो रहा है। वर्षा कराने वाले अभयारण्यों की हरियाली समाप्त की जा रही है और प्राकृतिक वन-वृक्षों को काटा जा रहा है। झरनों एवं नदियों के पवित्र और अमृतमय जल के निंशुल्क वितरण में व्यवधान डालने के साथ ही उसमें नगरों के कूड़ा-करकट तथा मल-मूत्र डालकर उसे अपवित्र एवं प्रदूषित किया जा रहा है जो मानव स्वास्थ्य के लिए अकाल काल के गाल के निर्माण का कारण है। गुरूत्वाकर्षण के प्ररिप्रेक्ष्य में धरती का सन्तुलन पर्वतों के तोड़े जाने से असन्तुलित हो रहा है और आये दिन भूचाल एवं ऐसी ही अन्य आपदाएं मानव समाज को मौत की नींद सुला रही हैं।

हिन्दू जीवन-पद्धति कथमपि प्रकृति-विरुद्ध नहीं होती है, इसलिए उसका प्रकृति के साथ सदैव सामंजस्य बना रहता है। प्रकृति जब भी अपने में परिवर्तन लाती है, हिन्दू जीवन पद्धति में उसी के अनुसार उसके परिवर्तन का अनुमोदन करते हुए अपनी पद्धति में भी पूरी तरह से परिवर्तन कर लिया जाता है, ताकि प्रकृति में किसी तरह की अव्यवस्था न उत्पन्न हो। प्रकृति के साथ निरन्तर सामंजस्य स्थापित रखने के लिए उद्यत रहने वाली हिन्दू जीवन पद्धति को आदर्श अथवा एक मानक के रूप में स्थापित करके अन्य मानव समूहों को भी प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए

3. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 426

ताकि वे भी हिन्दू जीवन पद्धति की तरह प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने का लाभ प्राप्त कर सकें।

मानव समाज के उस समूह को यह जिज्ञासा हो सकती है जो हिन्दुत्व के विरुद्ध षड्यंत्ररत है कि हिन्दू जीवन-पद्धति ने किस प्रकार से प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर रखा है। प्रकृति जिन ऋतुओं को धारण करती है, हिन्दू जीवन पद्धति उसी के अनुरूप अपनी जीवनचर्या बना लेती है और प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेती है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हिन्दू जीवन पद्धति में ही प्राकृतिक चिकित्सा विधि और प्राकृतिक जड़ी-बूटियों (आयुर्वेद) का सहारा लिया जाता है। इसका बहुव्यापी लाभ देखकर आज अन्यान्य देशों के लोगों की मानसिकता भी तेजी के साथ प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद की ओर दौड़ पड़ी है। चीनी के स्थान पर मधु को महत्त्व मिलने लगा है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दू जीवन पद्धति को विश्वव्यापी बना देने के बाद सम्पूर्ण मानव समाज का प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित हो सकता है और विश्वस्तर पर मानव जीवन पद्धति पूर्णतः सन्तुलित रहते हुए अपना विकास कर सकती है। इस महत्त्व को समझने वाले यह निःसंकोच कहते हैं कि हिन्दू जीवन पद्धति प्रकृति में सामंजस्य स्थापित करने की एक क्रिया एवं कला है।

## 8.7 हिन्दू धर्म चिन्तन एवं एकात्ममानववाद

हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दुत्व के सम्बन्ध में पं. दीनदयाल उपाध्याय की विश्व दृष्टि तथा हिन्दू धर्म चिन्तन और एकात्म-मानव दर्शन के विवेचन हेतु उनके राजनीतिक चिन्तन, सामाजिक विचार और आर्थिक वैचारिकी दर्शन को समझना प्राथमिक आवश्यकता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय एक जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न और भूतगामी चिन्तक थे। उनका चिन्तन न केवल व्यक्ति विशेष के जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानव जाति तक का चिन्तन है अपितु मानवेतर प्रकृति और उससे भी आगे जाकर परमेष्ठि तक सबकी रचनात्मक दृष्टि से और समग्र रूप से टोह लेने वाला हिन्दू चिन्तन है। एकात्म मानव दर्शन की उनके भूतगामी रचनात्मक चिन्तन की ही अनमोल निष्पत्ति है। सन् 1965 में विजयवाड़ा

अधिवेशन के तीन माह बाद बम्बई में जनसंघ के सिद्धान्त और नीति के विषय पर चार भाषण हुए जिसमें पहला प्रस्तावित भाषण 'एकात्म मानव दर्शन' अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि विशद करने वाला था। उनका यह मानना था कि स्वतन्त्रता के 16–17 वर्ष बीत जाने के बाद भी हमने इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार नहीं किया कि देश के भविष्य की दिशा क्या होगी। इस सम्बन्ध में उनके भाषणों का कुछ अंश उल्लेखनीय हैं–

"अंग्रेजों के चले जाने के बाद देश की राजनीति, समाज व्यवस्था, जीवनादर्श आदि पर विदेशी शासकों के विचारों का जो प्रभाव था, वास्तव में दूर हो जाना चाहिए था, किन्तु दूर होने की बजाय वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ता चला गया। उनकी वेशभूषा, रीति–रिवाज, भाषा आदि बातें हमारे देश में घुस गई"।[4] समाज शास्त्र, नीति शास्त्र, राज्य व्यवस्था आदि विषयों में भी उन्हीं की बातें हमारे यहाँ भी प्रमाण मानी जाने लगीं। वेद, उपनिषद् स्मृति, गीता और रामायण के स्थान पर मिल्स, हीगल, एडम स्मिथ, मार्क्स, एन्जल्स के वचन यहाँ प्रमाण माने जाने लगे।

वस्तुतः प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपने 'स्व' का विचार करना आवश्यक होता है। स्वत्व के बिना स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं ोता। आखिर प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयास करते हुए सुखी और सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकने के लिए ही स्वतन्त्रता की अभिलाषा रखता है। अपनी प्रकृति के साथ मेल न खाने वाली विचारधारा या कार्य प्रणाली का आधार लेने वाले राष्ट्र पर अनेक विपदाएँ आती हैं। हमारे देश के सामने आज जो संकट है उनका भी यही मुख्य कारण है।

इसके साथ ही हमें यह भी सोचना होगा कि किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में फँसे आज के विश्व को प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए क्या हम कुछ कर सकते हैं। हमें चाहिए की आज कि दुनिया पर बोझ बनकर न रहते हुए केवल अपने स्वार्थ का ही विचार करते हुए, अपनी संस्कृति और परम्परा में दुनिया को देने योग्य क्या–क्या

---

4. पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिया गया व्याख्यान, भारतीय जनसंघ, राष्ट्रीय अधिवेशन, 1965

बाते हैं, इसका चिन्तन कर जगत कि प्रगति के कार्य में सहयोग दें। विगत हजार वर्षों से हमारा सारा ध्यान स्वाधीनता संग्राम में और आत्मरक्षा के कार्यों में लगा रहा, अतः दुनिया के अन्य राष्ट्रों की तुलना में हम बराबरी में खड़े नहीं हो सके। परन्तु अब हम स्वाधीन हो गए हैं। अब हमें इस कमी को पूरा करना चाहिए।

पं. दीनदयाल की दृष्टि में वर्तमान समय में विश्व संभव के चौराहे पर खड़ा है। सारा विश्व आज सम्भ्रमित, अगतिक एवं किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में है। इस चक्रव्यूह से उसे छुड़ा सकने वाला क्या कोई तीसरा विकल्प है? दीनदयाल बड़े ही आत्मविश्वासपूर्वक कहते हैं कि भारतीय संस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत एकात्म अर्थ ही ऐसा विकल्प बन सकता है।

एकात्म मानव दर्शन ऐसा जीवन दर्शन है जो मनुष्य का विचार केवल आर्थिक जीवन के एकांकी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं का तथा ऐसे मानव के अन्य मानवों एवं मानवेतर सृष्टि के साथ परस्परपूरक एकात्म सम्बन्धों को भी ध्यान में लेकर समृद्ध, सुखी एवं कृतार्थ जीवन की दिशा दर्शाता है।

एकात्म मानव दर्शन भारतीय संस्कृति का जीवन दर्शन है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है, अतः शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा से युक्त धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के चतुर्विध पुरुषार्थों की साधना करने वाला और एक ही साथ परिवार, जाति, राष्ट्र एवं मानव समाज आदि विविध एकात्म समष्टियों का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखने वाला मानव इस दर्शन का केन्द्रबिन्दु है।

**साध्य-साधन विवेक**

पं. दीनदयाल की दृष्टि में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व हर प्रश्न की ओर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा जाता था। अब प्रत्येक प्रश्न की ओर केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाता है। कारण साध्य और साधन का विवेक ही शेष नहीं रहा है। पैसा अर्जित करना जीवन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य मात्र न रहकर जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गया है। पैसा प्राप्त करने के परे भी जीवन में अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ होता है, इसका बोध ही हमारे मानस से समूल नष्ट हो गया है।

साध्य-साधन विवेक का विवेचन करते हुए दीनदयाल जी एक तत्कालीन विचारधारा की विकृति का उदाहरण दिया करते थे। देश के आर्थिक विकास के लिए पूँजी चाहिए, इसलिए हम अपनी शस्त्रसज्ज सेनाओं का विसर्जन करके प्रतिरक्षा पर होने वाला खर्च पूर्णतः आर्थिक नियोजन में लगाएँ। यह विचार आत्मघातक है। दीनदयाल की दृष्टि में ऐसा करने के बाद हमने यदि अपनी स्वतन्त्रता को सैनिक सामर्थ्य के अभाव में खो दिया, तो आर्थिक विकास किसका करेंगे? क्या परतन्त्रता की बेड़ियाँ हमें कभी प्रिय हो सकती हैं?

मानव जीवन के उद्देश्य और जीवन में सम्पत्ति के स्थान सम्बन्धी हमारी परिकल्पनाओं को निश्चित किए बिना आर्थिक विकास एवं उसके लिए आवश्यक साधनों को निश्चित नहीं किया जा सकता। उनका कहना था कि मंदिर को उसके बाह्य स्वरूप के कारण नहीं, वरन् उसके भीतरी भाग में स्थापित भगवान की मूर्ति के कारण मंदिरत्व प्राप्त होता है। पश्चिमी दृष्टिकोण में जिसका अन्धानुकरण कर हम अपने अर्थनीति के मूल्यों की प्रतिष्ठापना करने चले हैं, ऐसे सर्वांगीण विचार का कोई स्थान नहीं होता।

अर्थव्यवस्था का निष्कर्ष यह है कि कसौटीबद्ध मानव का सर्वांगींण विकास ही होना चाहिए। मानव का सुख अर्थोत्पादन का प्रमुख साध्य है और मानवीय शक्ति उसका प्रमुख साधन। मानव की शक्ति को बेकार रखते हुए उसका विकास नहीं होगा, इसे ध्यान में रखकर ही उत्पादन तन्त्र का विकास करना चाहिए। जिस अर्थव्यवस्था के कारण समृद्धि तो बढ़ती है, किन्तु मानवता एवं अन्य अंगोपांगों का विकास कुंठित हो जाता है, वह कल्याणकारी नहीं हो सकती। मानव का सर्वांगींण विकास हमारी अर्थनीति और अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए।

भौतिक आवश्यकता और जीवन के सर्वांगीण विकास में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। न केवल मानव के सर्वांगीण विकास के लिए, अपितु उसके जीवन धारण के लिए भी न्यूनतम अर्थ की आवश्यकता होती ही है। इस न्यूनतम अर्थ का भी अभाव हो तो मनुष्य को रोटी और कपड़े की चिन्ता सताती रहेगी। उसका

अधिकतर समय एवं शक्ति इन बातों को प्राप्त करने में ही खर्च होता रहेगा। जीवन में सुख और संतोष उसके लिए दुर्लभ हो जायेंगे। अर्थ के अभाव के कारण व्यक्ति के लिए कर्तव्यरूप धर्म का पालन करना भी कठिन हो जाता है।

अर्थ का अभाव समष्टिगत हो तो समाज के सद्‌गुणों का धीरे-धीरे लोप हो जाता है। समाज के बलवान लोग बलहीनों का शोषण करते हैं। ऐसे समाज या देश को अन्य सम्पन्न देशों के सामने विवशता स्वीकार करनी पड़ती है। परिणामतः आगे चलकर आर्थिक एवं उसके पीछे-पीछे राजनीतिक दासता भी आती है।

अर्थ, धन और सम्पत्ति के केवल अभाव के कारण ही नहीं, अपितु उसके अत्यधिक प्रभाव के कारण भी धर्म का ह्रास होता है। सम्पत्ति के इस प्रभाव पर पाश्चात्य संस्कृति ने विचार ही नहीं किया है। अर्थ के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए पं. दीनदयाल जी कहते हैं, प्रत्यक्ष सम्पत्ति अथवा उसकी सहायता से प्राप्त होने वाली वस्तुओं एवं भोग-विलास में आसक्ति निर्मित होती है तो उसे सम्पत्ति के अत्यधिक प्रभाव का लक्षण माना जाना चाहिए। जिस व्यक्ति को केवल सम्पत्ति का लालच होता है वह देश, धर्म, मानव जीवन के परमसुख आदि महत्त्वपूर्ण बातों को भुला देता है। इस प्रकार सम्पत्ति के लोभ का शिकार विषयासक्त व्यक्ति विवेकहीन बन जाता है तथा अपना और समाज का भी विनाश करता है। अर्थ के प्रभाव के पहले प्रकार में सम्पत्ति साधनरूप न रहकर एकमेव साध्य बन जाती है। दूसरे प्रकार की सम्पत्ति धर्माचरण का साधन न रहकर विषय भोग का साधन बन जाती है और चूँकि विषय भोग की कोई सीमा नहीं होती, अतएव ऐसे व्यक्ति और समाज अंत में नष्ट हो जाते हैं।

समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा बड़प्पन रूपी सम्पत्ति से जो मिलता है, वह अर्थ के अत्यधिक प्रभाव का ही लक्षण है। ऐसी अवस्था में मान-सम्मान, अधिकार, पद, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि बातें केवल धनवानों को ही प्राप्त होती है। इस प्रकार समाज के यदि सभी घटक धनपरायण हो गए, तो हर छोटे-बड़े काम के लिए अधिक-से-अधिक पैसे की आवश्यकता उत्पन्न होती रहेगी। अर्थ के ऐसे प्रभाव के कारण सामान्य लोगों के जीवन में धीरे-धीरे अर्थ

का अभाव निर्मित होने लगता है।

पं. दीनदयाल जी अर्थायाम की कल्पना को प्रस्तुत करते समय अहस्तक्षेप के सिद्धान्त से सहमत नहीं होते और 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' वाले अर्थविचार को जंगल का न्याय बताते हुए अस्वीकार कर देते हैं। वे कहा करते थे कि जिस प्रकार प्राणायाम मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हितकारी है, उसी प्रकार अर्थायाम देश की अर्थ व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

स्वतन्त्रता मानव और राष्ट्र की स्वाभाविक आकांक्षा होती है। जनता की आकांक्षाओं की प्रतिष्ठा के लिए और लोग अपने कर्तव्य का पालन कर सकें, इसके लिए स्वतन्त्रता के साथ ही जनतन्त्र भी आवश्यक होता है। केवल राजनीतिक ही नहीं, अपितु आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी जनतन्त्र की आवश्यकता होती है। व्यष्टि, समष्टि और सम्बद्ध के स्वाभाविक हितों में बाधक न होकर पोषक बने, इसे सामाजिक स्वतन्त्रता कहा जाता है। आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना मनुष्य को सामाजिक एवं कुछ मात्रा में राजनीतिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त नहीं हो सकती। उसी भाँति सामाजिक स्वतन्त्रता को ठीक से भोग लेना भी सम्भव नहीं होता। इसीलिए पं. दीनदयाल कहते हैं कि इसके लिए लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता का अर्थायाम के द्वारा संरक्षण हो, ऐसी अर्थव्यवस्था खड़ी करना नितान्त आवश्यक है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के अधिकार सम्बन्धी विचारों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि में राज्य की उत्पत्ति समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुई है। समाज स्वयं एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। राज्य की उत्पत्ति भारत में 'समझौता सिद्धान्त' के माध्यम से हुई है। तात्पर्य यह है कि समाज में 'मत्स्य न्याय' की स्थिति ने राज्य को सृजित करने की आवश्यकता को जन्म दिया था। उनकी दृष्टि में राज्य मानवीय विकारों की उत्पत्ति है। वह प्रजा में उत्पन्न हुए लोभ, क्रोध आदि धर्म को हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों के विरुद्ध निरूपित हुआ है। मानवीय अधिकारों के संरक्षण के लिए राज्य की उत्पत्ति हुई है।

मानव में विविध सुखों की यह जो भूख होती है। उसे ध्यान में लेकर मन, शरीर, बुद्धि और आत्मा की दृष्टि से उनका विचार न

करते हुए शास्त्रकारों एवं साहित्यकारों ने एक निराली दृष्टि से उसका विवेचन किया है। उनका संक्षेप में यही दर्शन है कि आहार, निद्रा, कामपूर्ति आदि के कारण होने वाले सुख की अनुभूति मनुष्य और पशुओं में समान होती है। मानव और मानवेतर प्राणी में मुख्य अंतर यही है कि मनुष्य के सामने कुछ न कुछ उच्च जीवन लक्ष्य हुआ करता है। यह लक्ष्य ही मानव की मनुष्यता है। आहार और निद्रा आदि में ही रमने वाला लक्ष्यहीन मनुष्य पशु ही होता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सदैव प्रयत्नशील होता है। लक्ष्य की प्राप्ति होने पर उसे कृतार्थता की अनुभूति होती है।

एकात्म मानव दर्शन के परिवेश में कहना हो तो यह लक्ष्य व्यक्ति के साथ-साथ सारे मानव समुदाय और मानवेत्तर संसार दोनों के एकात्म जीवन के भौतिक सुखों के साथ-साथ आध्यात्मिक सुखों की अनुभूति, इस दर्शन में निहित, मानव के व्यक्तिगत स्तर का लक्ष्य है और व्यक्ति के ममत्व भरे व्यवहार की परिधि को अहम से लेकर वयम की दिशा में बढ़ाते हुए विश्व मानव तक और उससे भी आगे जड़ चेतन संसार को व्याप्त करके अन्ततः परमेष्टी तक पहुँचाना ही समष्टि की दृष्टि से विचार और आचार का परम लक्ष्य है।

## स्थूल से सूक्ष्म की ओर

मनुष्य केवल शरीर नहीं है। शरीर के साथ उसके मन, बुद्धि, आत्मा भी हैं। जैसे शरीर का सुख होता है। उसी प्रकार मन, बुद्धि और आत्मा का भी होता है। वस्तुतः आहार, निद्रा, रति आदि शारीरिक भूखों की तृप्ति से प्राप्त होने वाले सुखों के लिए नाना प्रकार के बाहरी साधनों की आवश्यकता होती है। उनकी तुलना में मन, बुद्धि, आत्मा के सुखों के लिए उत्तरोत्तर कम साधनों की आवश्यकता प्रतीत होती है। दूसरी बात यह है कि शारीरिक भूखों की तृप्ति से प्राप्त होने वाले सुख अर्थात् इन्द्रियजन्य सुख अधिकाधिक दीर्घकाल तक रहने वाले और अन्ततः चिरातन सुख में परिणत होने वाले होते हैं।

मन, बुद्धि और आत्मा की भूख भी वस्तुतः नैसर्गिक होती है,

किन्तु उसका बोध सबको उपर्युक्त भूखों के समान सहजता और उत्कृष्टता से नहीं हुआ करता। उस बोध को अध्ययन और सत्संस्कार द्वारा जागृत करना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि ये सुख कुछ समय के अभ्यास और तपस्या के बाद ही प्राप्त होते हैं। फिर भी मानव जीवन का समग्र दृष्टि से विचार करने पर आहार, निद्रा, रति आदि की क्षुधा पूर्ति से प्राप्त होने वाले सुखों का इस दूसरी कोटि के सुखों के साथ विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। पहली श्रेणी के सुखों से मनुष्य को शरीर धारण, शरीर स्वास्थ्य, तात्कालिक सुख-संतोष का लाभ होता है, तो दूसरी श्रेणी के सुखों की साधना से उसका पशुता से मानवता की ओर, व्यष्टि से समष्टि की ओर, आगे चल कर परमेष्टी अर्थात् परमात्मा की दिशा में विकास होता जाता है। मनुष्य के शरीर की धारणा और विकास जितना आवश्यक है, उतना ही उसके मन, बुद्धि और आत्मा का विकास होना भी उसके सर्वांगीण संतुलित विकास के लिए परमावश्यक होता है।

एकात्म मानव दर्शन में सुख की कामना ऐसी एकांगी नहीं है। वह व्यक्ति का विचार समग्र दृष्टि से करता है और इतना ही नहीं अपितु मनुष्य के अन्दर जो सत्प्रवृत्तियाँ, होती है उनका उन्नयन करता है, विकास करता है। इस दर्शन में सुख वर्जित नहीं है। अधिकार की आकांक्षा को यहाँ त्याज्य नहीं माना गया है, किन्तु अधिकार को कर्तव्य के ढाँचे में जड़ने का आग्रह अवश्य है।

संक्षेप में कहा जाए तो शरीर के साथ ही मन, बुद्धि और आत्मा के उपभोग के साथ-साथ संयम और समर्पण का, अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्य का, व्यक्ति के साथ-साथ समष्टि, सृष्टि और परमेष्टी का निरन्तर भान रखकर चलने वाला एकात्म सुख इन दर्शन को अभिप्रेत है, जो भी प्रयास करना है, जो पुरुषार्थ करना है, वे सब इस सर्वांगीण सुख को प्राप्त करने की दिशा में हों, क्योंकि उसी में से एकात्म मानव दर्शन का लक्ष्य अर्थात् व्यक्ति और समष्टि की समन्वित भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति साकार होने वाली है।

काम पुरुषार्थ में स्त्री-पुरुष समागम का अन्तर्भाव अवश्य है,

किन्तु इस पुरुषार्थ का आशय मात्र रति सुख की अपेक्षा निश्चय ही बहुत व्यापक और उदात्त है। सुप्रसिद्ध सुभाषित 'न जातु कामः काम्यानामुपभोगेन शम्यति' में वर्णित काम निश्चय ही स्त्री–पुरुष के शारीरिक सुख की वासना तक ही सीमित नहीं है। उसमें सभी इंद्रियों के विषयों का समावेश है। नत्वहं कामये राज्य न स्वर्ग नापुनर्भवम। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्। या धर्माक विरुद्धो भातेषु कामोकस्मिभरतर्षभः जैसे वचनों से भी काम पुरुषार्थ के आशय की ऊँचाई और घनता ध्यान में आ सकती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य के मन में उत्पन्न होने वाली विविध कामनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं का अन्तर्भाव काम पुरुषार्थ में होता है।

मन की तुलना हमारे यहाँ चंचल पक्षी से की गई है। अनेक बार वह न जाने कहाँ–कहाँ भटकता रहता है। ऐसी–ऐसी बातों को करने के लिए, जो वास्तव में नहीं करनी चाहिए, इन्द्रियों को प्रवृत्त करता रहता है और स्वयं विषय वासना के पीछे घिसटता चला जाता है। इस प्रकार भटका हुआ मन यदि श्रेष्ठतम जीवन की ओर एकाग्र हो जाए, तभी मनुष्य उस लक्ष्य की ओर निष्ठापूर्वक आगे बढ़ सकेगा और उस लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

काम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए आवश्यक विविध साधन जुटाना अर्थ पुरुषार्थ है। शरीर के केवल सुख के लिए ही नहीं, अपितु उसकी धारणा के लिए भी अन्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है और इनकी प्राप्ति अर्थ पर निर्भर रहती है। इसका अर्थ यह हुआ कि अपरिहार्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो पुरुषार्थ की साधना जीवन में आवश्यक हो जाती है।

मनुष्य अपने काम के द्वारा अपने आप की अभिव्यक्ति भी करता है। वह उसके आत्मा एवं समूचे जीवन की अभिव्यक्ति होती है। चित्रकार से कोई कहे कि चित्र मत उतारो, या कवि से कहे कि कविता मत बनाओ तो उनके जीवन में कोई रस ही नहीं रहेगा। किसान खेती के साथ अपने जीवन को भी विकसित करता है। खेती बाड़ी का हर छोटा काम उसका जीवन ही तो होता है। वह उसके जीवन का अभिन्न अंग होता है। बुनकर के हाथों का कौशल, सितारवादक की अंगुलियों की सितार पर होने वाली फिरत, और

नर्तक के पदविन्यास की लयबद्धता से उनका जीवन ही प्रकट होता रहता है।

अर्थ का अभाव व्यक्ति-धर्म और समष्टि-धर्म दोनों के लिए हानिकारक होता है। सदैव पैसे की किल्लत में रहने वाला मनुष्य न तो अपने तन, मन और बुद्धि की समुचित धारणा कर पाएगा, न ही समष्टि के घटक के नाते अपने कर्तव्यों को ठीक से निभा सकेगा। ऐसा व्यक्ति जीवन धर्म का यथोचित पालन नहीं कर सकता, अपितु अधर्म करने के लिए भी प्रवृत्त हो सकता है। हमारे यहाँ यो हीं नहीं कहा गया है बुभुक्षितः किं न करोति पापम्। मूलतः पापभीरु प्रकृति के लोग ही घूसखोरी, चोरी, डाकाजनी, जुआ जैसे अपराधों की ओर मुड़ते पाए जाते हैं या अच्छे संस्कारों वाले परिवार में पली बहिनें भी अनीति के मार्ग पर चलने लगती हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं, किन्तु एक प्रमुख कारण अर्थ का अभाव भी होता ही है।

काम और अर्थ दोनों पुरुषार्थों की आपस में बड़ी मित्रता होती है। सामान्यतः काम पुरुषार्थ के पीछे अर्थ पुरुषार्थ घिसटता हुआ चला आता है। अतः अर्थ के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए सशिक्षा, सत्संस्कार, सदाचार की अर्थात् धर्म की शरण लेना अत्यावश्यक होता है।

धर्म शब्द बहुआयामी और पर्याप्त व्यापक आशय वाला है। पदार्थ का गुण विशेष प्रकृति का आधारभूत नियम, जीवन के आधारभूत नीति नियम एवं कर्तव्य आदि अनेक आशय धर्म शब्द द्वारा व्यक्त होते हैं। उदाहरणार्थ प्रवाहशीलता पानी का, उष्णता या दाहकता अग्नि का, तरलता वायु का, सुगंध और शीतलता चंदन का धर्म होता है। यहाँ धर्म शब्द को प्राकृतिक गुण विशेष के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। पितृ-धर्म, मातृ-धर्म आदि शब्दों में प्रयुक्त धर्म शब्द सम्बन्धित व्यक्तियों के नीति नियमों पर आधारित दायित्यों का परिचायक है, तो राजधर्म, समष्टिधर्म आदि शब्दों में प्रयुक्त धर्म प्रमुखता से कर्तव्यों का संकेत देता है।

तत्त्वतः व्यष्टि धर्म उन सभी नियमों का समुच्चय है जो व्यक्ति के जीवन की धारणा करने वाले और जीवन की दिशा में उसका विकास करने में सहायता करने वाले होते हैं। यह धर्म मनुष्य

की प्रकृति में ही होता है। मनुष्य को जन्म से प्राप्त होने वाले सभी अंग, उसका शरीर, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन आदि प्रकृति धर्म के अनुसार ही कार्य करते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि सामान्यतः मनुष्य प्राणी प्रकृति धर्म के अनुसार जीवन धारण के लिए अनुकूल ढंग से ही विचार एवं व्यवहार करता है और इसीलिए उसकी जीवनयात्रा चलती रहती है। किन्तु कई बार सुखलोलुपता के कारण, आलस्य के कारण या झूठे अहंकार के कारण मनुष्य इस प्रकृति धर्म की उपेक्षा या उल्लंघन कर देता है।

मनुष्य का शरीर प्रकृति धर्म के अनुसार सुचारू रूप से चले, उसमें असमय विकृतियाँ उत्पन्न न हों, इसके लिए आयुर्वेद शास्त्र में आहार-विहार के सम्बन्ध में कुछ नियम या विधिनिषेध बताए गए हैं। ये विधिनिषेध शरीर धर्म के ही नियम हैं। चूँकि शरीर व्यष्टि धर्म और समष्टि धर्म का महत्त्वपूर्ण साधन है। इस शरीर धर्म का दृढ़ता के साथ पालन करना शारीरिक क्षमता को बनाए रखने के लिए नितान्त आवश्यक है। किन्तु मनुष्य की धारणा केवल शरीर की धारणा नहीं होती। शरीर के स्वास्थ्य के साथ ही मन एवं बुद्धि का स्वास्थ्य भी इस धारणा में अभिप्रेत है। धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। इस श्लोक में धर्म के जो 10 लक्षण बताए गए हैं। वे शरीर के साथ ही मन बुद्धि के स्वास्थ्य से भी जुड़े हुए हैं। जीवन के लिए शरीर स्वास्थ्य के साथ ही मन बुद्धि का स्वाथ्य भी आवश्यक होता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थ में धर्म आधारभूत पुरुषार्थ है तो मोक्ष परम पुरुषार्थ और शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के सुख के लिए जिन चतुर्विध पुरुषार्थों की योजना हमारे यहाँ है, उन्हीं में मोक्ष एक पुरुषार्थ है, इसे नहीं भूलना चाहिए।

## चतुर्विध पुरुषार्थ की एकात्मता

जिस प्रकार हमारी संस्कृति में मानव की प्रकृति को ध्यान में रखकर उसके शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा, सबका विचार प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार मनुष्य की सभी प्रकार की क्षुधा पूरी करने की व्यवस्था भी की गई है, किन्तु यह सावधानी भी बरती गई

है कि एक भूख मिटाने के प्रयास में दूसरी भूख शान्त करने का रास्ता कहीं बंद न हो जाए या कोई तीसरी विपरीत भूख का निर्माण न हो जाय। भारतीय संस्कृति में चारों पुरुषार्थों का संकलित विचार किया गया है।

चतुर्विध पुरुषार्थ की साधना करने वाला व्यक्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक व्यक्तियों एवं जनसमूह के सम्पर्क में आता है। उसका सम्बन्ध और व्यवहार कैसा होता है, कैसा होना चाहिए, इस बारे में वह सोचने लगता है तो परिवार, जाति, अपनी भाषा, अपना समाज, अपना राष्ट्र आदि विभिन्न घटक उसके समक्ष आते हैं। इस चढ़ते क्रम में परिवार का क्रमांक पहले आता है। व्यक्ति एवं समष्टि को जोड़ने वाली वह अत्यंन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी कड़ी है। यह परिवार संस्था इस धरती पर प्रायः सभी समाजों में काफी प्राचीन समय से चली आ रही दिखाई देती है।

पाश्चात्य देशों में परिवार संस्था टूटने के तीन प्रमुख कारण हैं– 1. व्यक्ति स्वातंत्रय के बारे में एकान्तिक कल्पना, 2. साम्यवादी देशों में कम्यून्स 3. समाजवादी प्रशासन या कल्याणकारी राज्य। इनका प्रकार्यात्मक विवरण निम्नलिखित है।

## व्यक्ति स्वातन्त्र्य

किसी भी संस्था के सुचारु संचालन के लिए अनुशासन की अपेक्षा होती है। परिवार संस्था भी इसके लिए अपवाद नहीं है। परिवार संस्था में व्यक्ति स्वतन्त्र तो होता है, फिर भी परिवार के सुख के लिए, हित के लिए व्यक्ति को कभी-कभी न्यूनाधिक मात्रा में अपनी स्वतन्त्रता को कुछ सीमित करना पड़ता है, बड़ों की बात सुननी पड़ती है। सुखों के भोग पर अपने आप कुछ सीमाएँ पड़ जाती हैं। ऐसी सीमाएँ व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर आघात हैं, ऐसी भावना पश्चिम के अनेक देशों में बल पकड़ती जा रही हैं।

परिवार व्यक्ति को समष्टि जीवन का पहला पाठ देने वाली संस्था है, आपस में स्नेह, एक दूसरे के लिए कष्ट उठाने की प्रवृत्ति, सहनशीलता आदि सद्गुणों के संस्कार, जिनकी समाज धारणा के लिए आवश्यकता होती है, परिवार जीवन में स्वाभाविक रूप से मिल

जाते हैं। परिवार की इस कल्पना को अधिकाधिक विशाल करते जाना, उसको समाजव्यापी बनाना ही आत्मिक विकास की दिशा है और यही एकात्म मानव दर्शन की भी केन्द्रीय कल्पना है।

## व्यक्ति और समाज

व्यक्ति सम्मिलित होकर आपसी हितों एवं सम्बन्धों की रक्षा करने हेतु समाज का निर्माण करते हैं। इसे सोशल काण्ट्रेक्ट थ्योरी का नाम दिया गया है। इसी भूमिका से पश्चिमी राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन की रचना होती है। समाज एवं व्यक्ति में श्रेष्ठ कौन है– समाज या व्यक्ति? कुछ लोगों का कहना है कि व्यक्ति ने एकत्रित होकर समाज का निर्माण किया है, अतः स्वाभाविक रूप से निर्माता होने के नाते व्यक्ति समाज से श्रेष्ठ है। समाज का अस्तित्व भी व्यक्ति की सुविधा और उसके सुखी जीवन के लिए ही है। इसके विपरीत पक्षधर लोगों का कहना है कि व्यक्ति के लिए समाज का निर्माण करना अपरिहार्य हो गया, इससे तो यही सिद्ध होता है कि समाज व्यक्ति से हर स्थिति में श्रेष्ठ है।

मनुष्य जन्म से ही कुछ बातें साथ लेकर आता है। उदाहरण के लिए उसके माता–पिता। जन्म लेने वाले जीव को अपने माता–पिता का चयन करने की स्वतन्त्रता नहीं है। उसके प्रत्यक्ष में जन्म लेने से पूर्व ही उसके माता–पिता निश्चित हो जाते हैं।

व्यक्ति के अन्दर जो सुप्त गुण होते हैं, उनका प्रकटीकरण एवं विकास समाज के कारण ही होता है। विविध विधाओं और कलाओं का पाठ व्यक्ति को गुरुजनों से, अर्थात् समाज से ही प्राप्त होता है और उन क्षेत्रों में प्रवीणता प्राप्त करने वाले व्यक्ति का अभिनन्दन या सहयोग कर उसे प्रोत्साहन भी समाज ही देता है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का एक और भी पक्ष ध्यान देने योग्य है। अपने देश के परिवेश में कहा जाए तो राम, कृष्ण, भीष्म, बुद्ध, भीम, गुरु गोविन्द सिंह जैसे कई महापुरुष और सावित्री, लक्ष्मीबाई, पन्ना दाई जैसी अनेक महान महिलाएँ यहाँ हो गईं। स्थल और काल की दृष्टि से आज उनमें और हममें बहुत अधिक अन्तर आ गया है, किन्तु बन्धु प्रेम का आदर्श राम–लक्ष्मण का, प्रतिज्ञा

भीष्म की, पराक्रम भीम का, उदारता कर्ण की, बलिदान गुरू गोविन्द सिंह और हकीकत राय का, शूरता रानी लक्ष्मीबाई की, त्याग पन्ना दाई का, पतिव्रत्य सती सावित्री का, ये आदर्श आज भी हम अपने बच्चों के समक्ष रखते हैं। हज़ारों मील और सहस्रों वर्षों के अन्तर काटकर ये आदर्श पाठ अपनी पीढ़ी तक पहुँचाने का जादू किसने किया? यह अद्भूत जादू समाज का है। हर पीढ़ी को इन श्रेष्ठ आदर्शों से संस्कारित कर परम्परा की उस धरोहर को अपनी वाली पीढ़ी के हाथ सौंपने का कार्य समाज ही करता है। श्रेष्ठ आदर्शों की ऐसी अखण्ड संस्कार परम्परा से ही समाज जीवित और एकात्म रहकर अपनी प्रगति करता रहता है।

चूँकि व्यक्ति के समान समाज की भी शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा होती है, अतः जिस प्रकार व्यक्ति के समग्र एवं संतुलित विकास के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का विचार आवश्यक होता है, उसी प्रकार समष्टि और राष्ट्र के सन्दर्भ में उनका विचार आवश्यक है।

समाज क्योंकि अनेक व्यक्तियों का समुच्चय होता है अतः धृतिः क्षमो दमोऽस्तेयम् आदि सामान्य धर्म लक्षणों और व्यक्ति के पुरुषार्थों से सम्बन्धित विधिनिषेधों का समष्टि धर्म में भी अन्तर्भाव होता है। व्यक्ति यदि इन बातों को छोड़ दे, तो उसकी धारणा और उसका विकास नहीं हो सकेगा और व्यक्तियों का ही बना होने के कारण समाज के समष्टि जीवन पर भी उन बातों का परिणाम अवश्य होगा।

समष्टि धर्म के सम्बन्ध में मुख्य विचार धर्मोधारयति प्रजाः सूत्र में वर्णित धर्म का ही करना होगा। जिस सहज प्रवृत्ति, संकेत, विवेकशीलता, नियम, उपनियम और व्यवस्था के कारण व्यक्ति व्यक्ति में, व्यक्ति समूहों में, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच आपस में सौमनस्य रहकर उनका जीवन सुचारु रूप से चलता है, उन सब बातों का समष्टि धर्म में अन्तर्भाव होता है।

व्यक्ति की भाँति समाज के लिए अर्थ पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। पर्याप्त मात्रा में अर्थ का उत्पादन न हो तो समाज का योगक्षेम सुचारू ढंग से नहीं चलेगा। आज के युग में

आर्थिक नियोजन का समाज के आर्थिक विकास या अर्थ पुरुषार्थ के साथ घनिष्ठ है। इसीलिए समाज के अर्थ पुरुषार्थ का सच्चे अर्थ में विकास करना हो, तो हर सक्षम व्यक्ति को अपना निर्वाह करने योग्य काम मिले, ऐसा ही नियोजन करना होगा। इस बात पर दीनदयाल जी बहुत बल देते थे। ऐसा करने से ही व्यक्ति का विकास होता है, देश की आर्थिक समृद्धि में वृद्धि होती है और समाज की सामूहिक कर्तृत्व शक्ति भी बढ़ती है।

लोगों के सामने कोई उच्च राष्ट्रीय लक्ष्य हो तो वे जितना चाहे परिश्रम करने के लिए तैयार होंगे। भारत को पुनः अखण्डित करना एक लक्ष्य हो सकता है। चीन द्वारा हड़प ली गई हमारी भूमि से चीनियों को निकाल बाहर करना भी एक और लक्ष्य हो सकता है। समाज मानस में प्रचण्ड राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा भर देने वाले ये उद्धार हैं।

प्रत्येक राष्ट्र उस परम सत्ता द्वारा नियत किए जीवनकार्य को लेकर ही जन्म लेता है। इस कार्य की पूर्ति के लिए अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करना ही उस राष्ट्र के विकास की सर्वोत्तम एवं एकमेव साधना है।

भारतीय संस्कृति की इस भूमि में विकसित एकात्म दर्शन केवल मानव के पास आकर ही नहीं रुकता। वह प्रकृति मानवेत्तर प्राणि सृष्टि, वनस्पति सृष्टि और प्रकृति की दी हुई अन्य बातों का भी विचार करता है। मानव जीवन का इस प्रकार सर्वांगीण विचार करते समय इन सभी बातों का उसमें समावेश करना एक परिपूर्ण दर्शन के नाते उपयुक्त एवं अपरिहार्य भी है। जल, वायु, सूर्य, प्रकाश, वनस्पति एवं प्राणि, खनिज सम्पदा आदि हमारे जीवन के साथ ऐसे जुड़े हुए हैं कि उनके बिना जीवन का केवल सुखोपभोग ही नहीं अपितु प्रत्यक्ष में जीवन भी असम्भव हो बैठेगा।

यहाँ भूमि भी भोग भूमि न होकर धर्म भूमि, वत्सला भूमि है। वह भूमि माता है। नदियाँ केवल पीने के लिए या खेती के लिए पानी देने वाली जलवाहिनियाँ न होकर लोकमाताएँ हैं। गाय केवल उपयोगी पशु न होकर यहाँ गोमाता है। ये सारे मानो जगजननी के विविध रूप हैं। इस प्रकार प्रकृति की ओर देखने की भारतीय

संस्कृति की दृष्टि भोग वासना से सनी नहीं है, बल्कि अगाध भक्ति भावना और आत्मीयता से ओत-प्रोत है। एकात्मकता की यह सजीव अनुभूति और यह बोध व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र के चढ़ते क्रम से समस्त मानव समूह को अपने में समा लेती है।

व्यक्ति की भाँति परिवार तथा राष्ट्र का अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। उदाहरण के लिए परिवार में एक कुल देवता होता है, कुछ परम्पराओं के अनुपालन में परिवार का धर्म होता है तथा उसकी निश्चित परम्परा होती है। राष्ट्र का विचार करने पर दिखाई देगा कि राष्ट्र का भी अपना इतिहास होता है, भूगोल होता है, कुछ परम्पराएँ होती हैं एवं जीवन के कुछ आदर्श होते हैं। इन सबके कारण उस राष्ट्र की अन्य राष्ट्रों में अलग पहचान बनती है।

जीवन दर्शन का काम जीवन के यथार्थस्वरूप को स्पष्ट करना और उसके अनुसार सुख, स्वास्थ्य, उन्नति एवं कृतार्थ जीवन की ओर जाने वाला सही मार्ग कौन-सा है, यह दिखाना मात्र है। उस मार्ग पर चलकर उस दर्शन को प्रत्यक्ष जीवन में उतारना मानव का अपना दायित्व है।

## 8.8 हिन्दू धर्म में सर्वकल्याण एवं 'वसुधैवकुटुम्बकम्'

हिन्दू धर्म अथवा वैदिक धर्म का स्वरूप वृहद् एवं व्यापक रहा है। वह उदार, दया एवं करुणा युक्त, सार्वभौम, सर्वग्राही, अनादि, सनातन, चिरन्तन, संवेदनशील, प्रकृतिमार्गी, प्रकृतिपोषक, प्रकृतिपोषित, वेदादृत इत्यादि के महनीय विशेषणों से संयुक्त माना गया है। हिन्दू धर्म के प्रणेता वैदिक आर्य धर्मप्रधान थे। देवताओं की सत्ता, प्रभाव और देवताओं की व्यापकता में उनका दृढ़ विश्वास था। उनके दृष्टिकोण से यह जगत कुल तीन भागों में विभक्त था- पृथ्वी, अधःतल और आकाश। इनको त्रिलोक कहते थे। तीनों लोकों के अलग-अलग देवताओं की मान्यता के कारण ही वैदिक समाज में बहुदेवतावादी यज्ञ, पूजा-पाठ, उपासना-अनुष्ठान प्रतिपादित थे। अग्नि, इन्द्र, पवन, सोम, पृथ्वी, सूर्य, सविता आदि देवी देवता किसी-न-किसी विशिष्ट प्राकृतिक गुणों को अवधारित करते थे, अतएव समाज की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए और सामाजिक सन्तुलन को शाश्वत रखने हेतु मानव द्वारा उन सबकी पूजा की जाती

थी। 'सबके लिए सबकी पूजा' का अर्थ ही 'हिन्दू धर्म में सर्वकल्याण' से है। पूजा का तात्पर्य उनकी सुरक्षा अथवा उनकी मानवोपयोगी क्षमता के संरक्षण की व्यवस्था थी।

हिन्दू धर्म की सर्वग्राह्यता और उसकी सार्वभौमिकता से भी पता चलता है कि उसका उद्देश्य सर्वकल्याण था। हिन्दू धर्म के समस्त (दसों) तत्त्वों (धृति अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम अथवा तपस्या, अस्तेय अथवा चोरी न करना, शौच अथवा पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध अथवा अहिंसा) में सम्पूर्ण मानव समाज का कल्याण समन्वित रूप से देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ- धृति अथवा धैर्य न रखने से मानव समाज किसी भी वस्तु को पाने अथवा अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपने आप पर भी काबू नहीं रख पाता और कुछ उल्टा कार्य कर डालता है जो उसके लिए अहितकर हो जाता है। क्षमाशील न होने से वह दूसरों की दुष्टता का प्रत्युत्तर देने लगता है तो वह भी शिष्टता के साथ-साथ कुछ अशिष्टता कर बैठता है। दुष्टता के प्रत्युत्तर में की गई अशिष्टता को भी समाज की स्वीकृत नहीं होती, इसलिए इस प्रकार का कृत्य अकल्याणकारी ही होता है। अतएव इन दस तत्त्वों का अनुपालन करने का आदेश देकर हिन्दू धर्म सर्वकल्याण की कामना एवं समाज में सामाजिक समरसता की स्थापना करता है।

हिन्दू धर्म में सर्वकल्याण का अवलोकन करने के लिए हमें हिन्दू धर्म के उन सभी लक्ष्यों की ओर ध्यान देना होगा जो उन्हें प्रतिष्ठित करते समय संज्ञान में रखे गए थे। हिन्दू धर्म का लक्ष्य है, परम चैतन्य में प्रवेश और उस चेतना में प्रवेश करके जीवन के प्रति स्वयं को समग्रता से समझना, जानना और उसका निर्वाह करना। यह लक्ष्य केवल हिन्दू समाज के कल्याण से सम्बन्धित न होकर सर्वकल्याण से सम्बन्धित दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दू धर्म का प्रयास रहा है कि सभी लोग अपने जीवन के प्रत्येक पक्ष को आत्मज्ञान से जोड़े रखें, ताकि विपरीत अवस्था में भी जीवन एकरस रहे और उसमें समरसता का सर्वव्यापी भाव बना रहे। इस धर्म की यह भावना कदाचित् सर्वकल्याण की ओर ही उन्मुख दिखलाई देती है और हिन्दू धर्म का यही भाव है कि सभी लोग

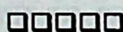
परोपकार में लगे रहें, क्योंकि परोपकार परम धर्म है। माता-पिता और गुरु के महत्व को सभी लोग आदर एवं सम्मान प्रदान करें तथा गृहस्थाश्रम धर्म का निर्वहन करते हुए मातृ, पितृ, ऋषि आदि के ऋणों से मुक्त हों। सभी लोग पुरूषार्थ के साधनों का धर्मोचित उपयोग करते हुए अपना विकास करें। सभी सुखी हों, सभी का कल्याण हो, समाज में मानव कल्याण का वातावरण हो, सभी की समृद्धि हो, सभी में बन्धुता हो, सभी एक दूसरे के सहयोगी बने, कोई किसी से द्वेष न करे। सभी धर्म का आचरण करें, अधर्म से दूर रहें। जीव-हिंसा से विरत रहें। ये सभी आदेश एवं अपेक्षाएं यह सिद्ध करती हैं कि हिन्दू धर्म में सर्वकल्याण की सद्भावना विद्यमान है।

हिन्दू धर्म में 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की वैचारिकी को अन्य किसी भी धर्म अथवा मत में नहीं पाया जाता है। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' को हिन्दुत्व की वैश्विक अवधारणा कहा जाता है। हिन्दू जीवन-दर्शन के अन्तर्गत समस्त मानव समुदायों के मध्य निहित आपसी भेदभाव, संकीर्णता, स्वार्थ एवं घमण्ड को मिटाने की चेष्टाएं इसी अवधारणा के प्रयत्न हैं। हिन्दू धर्म में पूर्ण समन्वय और सहिष्णुता का भाव पाया जाता है। ऐसा किसी अन्य धर्म में नहीं प्राप्त होता। हिन्दू धर्म की ये सभी विशेषताएं सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार के स्वरूप में परिवर्तित हुई देखना चाहती हैं। यहां के लोगों में पाया जाने वाला भाईचारा वसुधा (जगत्) की संयुक्तता में विश्वास करता है।

हिन्दू धर्म में 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की अवधारणा भारतीय ऋषि-मुनियों की विश्वबन्धुत्व भावना से सम्बन्धित है। अमेरिका में प्रायोजित विश्व धर्म सम्मेलन में भारतवर्ष के महान् दार्शनिक एवं विचारक स्वामी विवेकानन्द ने इसी सद्भावना को 'प्यारे भाई एवं बहनों' सम्बोधन के साथ प्रस्तुत किया था। इसी भावना को विश्व के समस्त देशों में हिन्दू धर्मावलम्बियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। विश्व-शांति की पहल करने वालों में हिन्दुस्तान सबसे आगे रहा है और आज भी है।

हिन्दू धर्म में 'वसुधैवकुटुम्बकम्' को समष्टि-चिन्तन कहा जाता है। यह चिंतन समस्त विश्व मानव के लिए कल्याणप्रद और लाभकारी स्वीकार किया गया है। इसमें समस्त मानव समुदायों के

मध्य निहित आपसी भेदभाव, संकीर्णता, स्वार्थ एवं घमण्ड भाव को मिटाने की चेष्टा की गई है। यह भावना पूर्ण समन्वय एवं सहिष्णुता से युक्त है, अतएव संकीर्णता की सत्ता का सम्मानपूर्वक अतिक्रमण करते हुए यह विराट रूप की ओर बढ़ती है और विराटस्वरूप का भी अतिक्रमण करके यदि उसके भी परे कुछ है तो उसे स्वीकार कर लेती है, यद्यपि उसे भी वह अपना अन्तिम पड़ाव नहीं मानती है। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का चिन्तन एक ऐसा उर्ध्वारोहण है, जहां न कोई छुद्र है, न कोई महान है– सभी एक ही चैतन्य की अभिव्यक्तियां मात्र हैं। इस चिन्तन में तात्विक दृष्टि से कहीं कोई भेद है ही नहीं। जो भी दृश्य एवं अदृश्य जगत है, वह पूर्ण के अन्तर्गत है जो संयुक्त है, भेदहीन है, चैतन्य है। जड़ और चेतन, दृश्य और अदृश्य समस्त इसके अभिन्न अंग हैं। इस दृष्टि से यह चिन्तन स्वयं में परिपूर्ण है।



# उपसंहार

संसार में अनेकानेक पंथ और मजहब विभिन्न महापुरुषों द्वारा चलाए गए हैं, किन्तु हिन्दू धर्म हजारों -हजार ऋषियों के वैज्ञानिक और आध्यात्मिक अधिष्ठान पर आधारित चिन्तन का व्यावहारिक रूप है। प्रकृति एवं ज्ञान-विज्ञान के साथ मानव सम्बन्धों के संवहन का हिन्दू धर्म एक सरंचनात्मक संस्था है। आज हिन्दू धर्म छद्म धर्मनिर्पेक्षवाद की भेंट चढ़ रहा है। ऐसे में हमें मानवता के हित में हिन्दू धर्म के वास्तविक रूप को संसार के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। हिन्दुस्तान ही हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म का केन्द्र है। भारत का एक राष्ट्रीय लक्ष्य है, और वह लक्ष्य है विश्व कल्याण हेतु हिन्दू धर्म का मानव समाज में प्रचार-प्रसार करना। देश में परम वैभव का तात्पर्य न केवल सुख-समृद्धि यानी भौतिक उत्कर्ष बल्कि साथ में पूर्ण आध्यात्मिक उत्सर्ग भी है। दोनों के सन्तुलन से ही परम वैभव की प्राप्ति संभव है। हिन्दू की अवधारणा का दो प्रमुख आधार है। पहला आधार अध्यात्म और दूसरा आधार विज्ञान है। आज संसार विज्ञान पर पूर्ण आस्था रखता है यानी यह जगत आधा हिन्दू है। इस प्रकार अध्यात्म को भी संसार मान ले तो यह समस्त पृथ्वी हिन्दू धर्मानुयायी हो जाएगी।

आज सम्पूर्ण हिन्दू समाज का लक्ष्य होना चाहिए कि 'हिन्दू संगठित हो' हिन्दुस्तान में हिन्दू धर्म पुनः अपने गौरवशाली स्वरूप को प्राप्त करें। कुरीतियों, जातिवाद, भेदभाव तथा उच्च-निम्न की भावना को त्याग एकबार हिन्दू राष्ट्र पुनः उठ खड़ा हो। अशान्त विश्व को शान्ति का संदेश एवं पैशाचिक एवं पाशविक जीवन से मुक्ति दिलाकर मूल्यों पर आधारित जीवन जीने की कला के साथ प्रकृति के संरक्षण का उपदेश अगर भारत देगा, तभी भारत वर्ष पुनः विश्व गुरू के रूप में स्थापित होगा। ज्ञान-विज्ञान में विश्व का नेतृत्व करने वाला यह देश आज अपने अधोगति को प्राप्त हो रहा है। अपने ही लोग हिन्दुत्व के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ हो गए हैं। हिन्दू धर्म पर निरंतर प्रहार हो रहा है। हिन्दू धर्म का वर्तमान रूप मूल हिन्दू धर्म से भिन्न हो गया। हिन्दू धर्म के संरक्षण के लिए हम हिन्दू होने के गर्व के साथ जुटें। हिन्दू संस्कृति में राजनीति का संक्षिप्त तात्पर्य है 'समूह की चिंता की जाए।' राजनीति से आज धर्म को बाहर किया जा रहा है। इससे अधिक अनर्थ क्या हो सकता है कि

सामूहिक चिन्तन का आधार धर्म यानी आध्यात्म न हो। तब बचता ही क्या है? हजारों नियम,कानून एवं विधियाँ आज मानव समाज को नियंत्रित करने में सक्षम नहीं हो पा रही हैं, किन्तु पूर्व में हिन्दू धर्म के एक शब्द के कानून से सम्पूर्ण समाज नियन्त्रित था। वह शब्द है–'पाप'। उदाहरणार्थ–पराये धन चोरी करना, पर नारी के प्रति आकृष्ट होना, क्रोध करना, हिंसा करना या झूठ बोलना पाप है।

कई संशक्त अवधारणाएँ हिन्दू धर्म के मूल प्राण में आज भी अपनी अक्षुण्णता को बनाए हुए हैं। उनमें अव्यय भाव एवं अनित्यता का गुण विद्यमान है। वे शाश्वत हैं। सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। आज भारतीय कम्युनिस्ट, नक्सली, जनवादी एवं दलित साहित्य लेखक हिन्दू समाज में व्यवहृत लोकाचारों को धर्म का नाम देकर हिन्दू धर्म की शाश्वतता को चुनौती देने का प्रयास करते हैं। अपनीं अज्ञानता और लोभी प्रकृति को ही जीवन की सफलता का सम्बल मान लेते हैं। अवगुणों से सिक्त समाज में भौतिक सुख की क्षणिक लिप्सा से प्रसन्न हो उसे ही हम सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं। ज्ञात इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ को यदि तनिक ध्यान से देखा जाय तो यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि चक्रवर्ती महाप्रतापी सम्राटों को भी इसी मिट्टी में समाहित होना पड़ा है। छल–छद्म से स्वार्थ पूर्ति करने वाले लोभी धर्म को नष्ट नहीं करते, अपितु वे स्वयं को ही निरंतर नष्ट करते जाते हैं। तथ्यतः हिन्दू धर्म की मूल अवधारणाओं को आत्मसात कर विश्व के अन्य पंथों, विचार शैलियों एवं सम्प्रदायों ने स्वयं को शाश्वत सिद्ध करने का प्रयास किया है और इसी क्रम में उन्होंने अपनी सीमाएँ बनाकर स्वयं को संकुचित कर लिया है। ठीक इसके विपरीत हिन्दू धर्म ज्ञान, विज्ञान, नित्यता, अनित्यता, ईश्वर, देवता, मर्यादा, अवसाद आदि समस्त भौतिक एवं अभौतिक बंधनों एवं सीमाओं से मुक्त है। यह एक जीवन शैली है जो मानव को मानव, जीव को जीवन, सत्, ऋत् एवं ब्रह्म के शाश्वत एवं अनित्य गुणों को धारण करता है। इसे धारण करने वाला विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा से ओत-प्रोत रहता है। आधुनिक विश्व की समस्त मानवीय मर्यादाओं की आधारभूमि हिन्दू धर्म से ही सृजित होती है। आइए हम एक सार्थक प्रयास कर इस धर्म के मूल तत्त्वों को जीवन की सार्थकता हेतु जन-जन तक पहुँचाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हों।

□□□□□

# संदर्भ ग्रंथ-सूची

## अ. मूल ग्रंथ


1. ऋग्वेद, सायणकृत व्याख्या, श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित, बरेली संस्कृति संस्थान, 1962. ऋग्वेद-संहिता (पदपाठसहितासायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता सैवं हिन्दी भाषामन्त्रानुवादसमन्विता), अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1997.
2. तैत्तिरीय संहिता, महादेवशास्त्री सम्पादित, मैसूर 1884.
3. वाजसनेयी संहिता, बेबर सम्पादित, बर्लिन 1852, वासुदेवशास्त्री सम्पादित्त निर्णय सागर, बम्बई 1929.
4. सामवेद, थ्योडर बेनफे सम्पादित, लाइपजिंग, 1848.
5. मूलयजुर्वेद संहिता, संकलयित महर्षि देवरात, वाराणसी, 1973.
6. अथर्ववेद, सायणभष्य सहित, बम्बई, 1996.
7. ऐतरेय ब्राह्मण, ए.हाग सम्पादित, बम्बई, 1863, सत्यव्रत सामश्रमी सम्पादित, कलकत्ता, 1895.
8. शतपथ ब्राह्मण, लिन्डेनर सम्पादित, मैसूर, 1921.
9. मत्स्यपुराण, मूल श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य संस्कृत प्रकाशन, कलकत्ता, 1876, हिन्दी अनु. पण्डित रामप्रताप त्रिपाठी, साहित्यसम्मेलन, प्रयाग संवत, 2003.
10 जातक, हिन्दी अनु. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग, सवंत 2014.
11. महाभारत, आलोचनात्मक संस्करण, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्ट्टीयूट, पूना, 1966 हरविंश पुराण अनु. मनमथनाथ दत्ता, कलक्तता, 1897.
12. शतपथ ब्राह्मण-वेबर अल्बेर्न (अनु.) गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 1988. कौशीतिकी उपनिषद्, एक सौ आठ उपनिषद् सम्पा. श्री रामशर्मा, बरेली, 1963.
13. बृहदारण्यक, आनन्दगिरी कृत टीका, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि, पूना, 1914.
14. अनुशासन पर्व, सम्पादित व्यास कृष्ण द्वैपायम, लेखक द्वारका प्रसाद शर्मा, इलाहाबाद, 1930.
15. श्रीरामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास कृत, श्रीठाकुर प्रसाद

पुस्तक भण्डार, वाराणसी, 2002.
16. बाल्मीकि रामायण, सम्पादित ज्वाला प्रसाद मिश्र, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1985.
17. श्रीमद्वाल्मीकीयम् रामायणम्, श्रीपण्डितरामतेजपाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी.

## ब. व्याख्या ग्रंथ ( हिन्दी )

1. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के मानव अधिकार मध्य प्रदेश सरकार की मार्गदर्शिका, मध्यप्रदेश जनसम्पर्क, भोपाल, 2002.
2. अबुल फजल अल बेहकी: तारीखुस सुबुक्तगीन, उद्ध इलियट एवं डाउसन (मूल सम्पादक) भारत का इतिहास, अनुवादक, मथुरा लाल शर्मा, भाग-2, आगरा, 1974.
3. उपाध्याय, बलदेव (आचार्य), वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदासंस्थान, वाराणसी, 1998.
4. डॉ. विशुद्धानन्द पाठक: उत्तरभारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, 1982.
5. पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-3, (अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यपद्ध लखनऊ, (प्रथम संस्करणद्ध, 1966.
6. श्री गणेश प्रसाद जैन: वाराणसी में जैन तीर्थ, सन्मार्ग पत्रिका, काशी विशेषांक, 1986.
7. लोहिया, राममनोहर, जातिप्रथा, राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1964.
8. त्रिपाठी, वचनेश और कौशलेन्द्र कुमार, (संग्राहक तथा सम्पादक), डा. हेडगेवार: प्रेरक जीवन प्रसंग, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2001.
9. राधाकृष्ण चौधरी: प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पटना, 1990.
10. रामगोयल: नन्द मौर्य साम्राज्य का इतिहास, मेरठ, 1992.
11. राजकुमार शर्मा (सम्पादक) कलचुरि राजवंश और उनका युग, नई दिल्ली, 1998.
12. डा. सुमन लता सोनकर शास्त्री, मध्यकालीन भारत की व्यापार व्यवस्था का ऐतिहासिक अनुशीलन, शोधप्रबंध इतिहास विभाग,

महात्मा गाांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2002
13. सावरकर, विनायक दामोदर, हिन्दुत्व के पंच प्राण, अनु. विक्रम सिंह, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली, 2001.
14. शर्मा, रघुनन्दन प्रसाद, स्मृतियों में भारतीय जीवन पद्धति, सांस्कृतिक
15. गौरव संस्थान, नई दिल्ली, सम्वत् 2058.
16. शास्त्री डा. विजय सोनकर, मानवाधिकार: एक भारतीय दृष्टि, श्रीमहाविद्यायोगपीठम्, वाराणसी, 2001
17. शास्त्री डा. विजय सोनकर, दलित हिन्दू की अग्नि परीक्षा, श्रीमहाविद्यायोगपीठम्, नई दिल्ली, 2003.

## स. अंग्रेजी ग्रंथ

## BOOK & ARTICLES IN ENGLISH & OTHER LANGUAGES

1- Abdul Haqq Dehlavi, Akhbarul Akhiar, Delhi, 1889. Abdulla, Tarikh-i-Daudi, ed., by S.A.Rashid, Aligarh.

2- Abraham, P., Aambedkar's Contribution for Economic Planning and Development- Its Relevance, Kanishka Publishers, Distributors, New Delhi, 2002.

3- Abul Fida, Tarikh-i-Abul Fida, Al Mukhtasar-fi-Akhbari-I-Bashar, Constantinople, 1879.

4- Abul-Fazal, Ain-i-Akbari, ed. H.Blockmann, 2 vols., Calcutta, 1867-69; Eng. tF. H.Blockmann, I. And H.S. Jerrett, II, III. revised by D.C. Phillot and J.N. Sarkar, 3 vols, Calcutta, 1927-49;3 vols, reprinted, New Delhi, 1978-79.

5- Al Beruni, Abu Raihan, Kitabul Hindi, Eng. tr. E.Sachau, as, Al-Beruni's India, London, 1910.

6- Alexander, J.W., Economic Geography, New Jersey, 1963.

7- Ambedkar, B.R., The Untouchables, Shravasti, Balarampur, Jetavan Mahavihar, 1969.

8- Ambedkar, B.R., Writings and Speeches, Education Dept., Government of Maharashtra, 1979-1994.

9- Bakshi, N.A., Tabaqat-i-Akbari, ed. De and Husain, Calcutta, 1927-1941.

10- Bandopadhyaya, N.C., Economic Life and Progress in Ancient India, Calcutta, 1945.

11- Barani, Z., Tarikh-i-Firuzshah, ed. Sir Sayyid Ahmed Khan, Calcutta, 1862; ed. By W.N.Lees, S. Ahmed Khan, Kabiruddin, BI, Calcutta, 1860-62.
12- Barua, K.L., Early History of Kamarupa, Shillong, 1933.
13- Bhandarkar, D.R., Some Aspects of Ancient Indian Culture, University of Madras, 1940.
14- Briggs, J., History of the Rise of Muhammadan Power, 4 vols., Calcutta, 1910.
15- Chanana, D.J., Slavery in Ancient India, Peoples Publishing House, New Delhi, 1960.
16- Chatterjee, S.K., The Scheduled Castes in India, 4 vols, Gyan Publishing House, New Delhi, 1996.
17- Crooke, W., Tribes and Castes of North-West Frontier Provinces and Oudh, Calcutta, 1896.
18- Datta, B.B., Town Planning in Ancient India, Calcutta, 1925.]
19- Desai, I.P., Untouchability in Rural Gujarat, Popular Prakashan, Bombay, 1976.
20- Dey, N.L., Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, London, 1927.
21- Dutt, N.K., Origin and Growth of Caste in India, Mukhopadhya, Calcutta, 1968.
22- Dutt, N.K., The Aryanisation of India, Calcutta, 1925.
23- Faruki, Z., Aurangzeb and His Times, Bombay, 1935. *Fawaid-ul-Fuad,* Conversation of Shaikh Nizamuddin Aulia, Compiled by Amir Hasan Ala Sijzi, Lucknow, 1302 AH.
24- Ferishta, Muhammad Qasim Hindu Beg. *(Gulshan-i-lbrahimi¼, Tarikh-i-Ferishta,* Lithographed at Bombay, 1832, Lucknow, 1905; Eng. Tr. J. Briggs, Rise of Mahomedan Power in India, 4 vols., London, 1827-29, Calcutta, 1966.
25- Gadekar, D.R., Dr. Ambedkar and the duty of Harijans in the context of his Life, Panchsheel, Baroda, 1972.
26- Ghurye, G.S., The Scheduled Tribes, Popular Prakashan, Bombay, 1963.
27- Ghyrye, G.S., Caste and Race in India, Popular Prakashan, Bombay, 1969.
28- Habibulla, A.B.M., Foundation of Muslim Rule in India, Allahabad, 1961.
29- Hitti, P.K., The Origins of Islamic State, New York, 1916.

30- Ishwari Prasad, History of Medieval India, 1965.

31- Kane, P.V., History of Dharmasastr, 5 vols., Poona, 1930-1962.

32- Khare, G.H., Persian Sources of Indian History, Poona, 1937.

33- Lal, K.S., Studies in Medieval Indian History, Delhi, 1966.

34- Lynch, Owen M., The Politics of Untouchability, National, Delhi, 1974.

35- Majumdar, R.C. (Ed., The History and Culture of the Indian People, Bombay, 1947-1967.

36- Majumdar, R.C., Hindu Reaction to the Muslim Invasion, D.V. Potdar Volume.

37- Mishra, J., Equality Versus Justice: The Problem of Reservations for Backward Classes, Deep & Deep Publications, New Delhi, 1996.

38- Mukherjee, P., Beyond the Four Varnas, The Untouchables in India, Motilal Banarsidass, Delhi, 1988.

39- Mungekar, B.L., Ambedkar's Quest for Democratic Socialism, Dr. Ambedkar's National Seminar on 19.3.1999.

40- Prakash, B., Aspects of Indian History and Civilization, Agra, 1965.

41- Roychoudhary, S.C., Pulitical History of Ancient India, Calcutta, 1953.

42- Shah, V.P. (Ed., Removal of Untouchability, Sociology Dept., Gujarat University, Ahmedabad, 1980.

43- Sharma, R.S., Some Economic Aspect of Caste System in Ancient India, Patna, 1962.

44- Sharma, R.S., Sudras in Ancient India, Delhi, 1958.

45- Shastri, B.S., Inaugural Address at National Conference on Educational and Socio-Economic Empowerment of SCs & STs, BHU, Varanasi, 29-30 September, 2002.

46- Srivastava, K.L., The Position of Hindus under the Delhi Sultanate 1206-1526, Munshiram Mahoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 1980.

47- Thapar, R., A History of India, Vol.II, Pelican Books, London, 1966.

48- Three Historical Addresses of Dr. Babasaheb Ambedkar in the Constituent Assembly-In Search of Remedies for Current Instability of Polity, Dr. Ambedkar Foundation Research Cell,



**डॉ.** विजय सोनकर शास्त्री का जन्म उत्तर प्रदेश में वाराणसी जनपद के एक ऐसे परिवार में हुआ जिसमें ग्रामीण पृष्ठभूमि और भारतीय विकासशील समाज का परिवेश तो था ही, स्वतंत्रता सेनानी पिता स्व. शिवलाल के अभिन्न मित्र प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. राजाराम शास्त्री का संरक्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा। डॉ. शास्त्री के पितामह से उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की गहरी मित्र भावना ने इन्हें लेखन विधा की रतफ सर्वदा प्रेरित किया। चन्द्रशेखर आजाद, मन्मथनाथ गुप्त, डॉ. भीमराव अम्बेडकर एवं महात्मा गांधी के साथ पिता की भेंट-वार्ता के संस्मरण डॉ. शास्त्री के लिए अमूल्य धरोहर हैं।

अपढ़ माता-पिता के उच्चशिक्षित पाँच पुत्रों एवं चार पुत्रियों में डॉ. सोनकर शास्त्री सबसे कनिष्ठ हैं। डॉ. सोनकर शास्त्री ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.ए. (अर्थशास्त्र) एम.बी.ए., पीएच.डी. (प्रबन्ध शास्त्र) के साथ ही सम्पूर्णनन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री उपाधि प्राप्त की।

बाल्यकाल से ही संघ की शाखाओं में राष्ट्रोत्थान एवं परमवैभव के भाव से परिचित डॉ. शास्त्री की सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा काशी में हुई। तीन जानलेवा बीमारियों के बाद पूर्ण रूपेण स्वस्थय हुए डॉ. शास्त्री ने प्रकृति के संदेश को समझा। आपातकाल के आन्दोलन एवं उत्तरोत्तर जाति-वर्ग के विघटनकारी तत्वों का भयानक रूप अपने आस-पास बाल्यावस्था में ही पाया। हिन्दू वैचारिकी और हिन्दू संस्कृति को आत्मसात् कर डॉ. शास्त्री ने राजानीति में प्रवेश किया और भारतीय संसद में लोक सभा सदस्य हुए। सामाजिक न्याय एवं सामाजिक समरसता के पक्षधर डॉ. सोनकर शास्त्री को राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, भारत सरकार का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया। देश एवं विदेश की अनेकों यात्राएं कर डॉ. शास्त्री ने हिन्दुत्व के प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका को सुनिश्चित किया। विश्वमानव के सर्वोतम कल्याण की भारतीय संकल्पना को चरितार्थ करने का संकल्प लेकर व्यवस्था के सभी मोर्चों पर डॉ. सोनकर शास्त्री सतत् सक्रिय हैं।

दुनिया के देशों की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थिति अपनी-अपनी अलग-अलग है। परन्तु सभी देशों में अपने राष्ट्र की पहचान, अपनी संस्कृति, अस्मिता तथा इनके प्रति स्वाभिमान की भावना स्पष्ट रुप से सभी देशवासियों के मन एवं बुद्धि में विद्यमान है तथा उसको वाणी से यथावत् प्रकट करने में किसी को कोई संकोच नहीं लगता। परन्तु भारतवर्ष एकमात्र ऐसा देश ध्यान में आता है जहाँ उसकी पहचान, अस्मिता के लिए स्पष्ट बोलने के बारे में संकोच दिखाई देता है। हिंदुत्व यही वह पहचान है यह तर्कसिद्ध, इतिहाससिद्ध तथा अनुभवसिद्ध तथ्य है। देश के सर्वोच्य न्यायालय ने भी इंसकी दुहाई दी है। परंतु अज्ञान, स्वार्थ तथा मतांधता पर आधारित विरोध एवं भ्रम वैसे ही चल रहे है।

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा लिखित यह पुस्तक "हिन्दू वैचारिकी : एक अनुमोदन" इस भ्रमजाल को भेदकर भारतीय राष्ट्रीयता के तथ्य की बौद्धिकता को उजागर करने में बहुत उपयुक्त साधन बनेगी।

इस पुस्तक में संकलित तथा विचारित तथ्यों के आधार पर समाज में चर्चा हो तथा राष्ट्रीयता का शुद्ध प्रकाश एवं ऊर्जा लेकर भारतवर्ष फिर से अंपने ईश्वर प्रदत्त कर्त्तव्य को निभाने के लिए समरस, सामर्थसम्पन्न देश बनकर खड़ा हो यह प्रार्थना एवं डॉ. शास्त्री को इसके लिए शुभकामना—

मोहन भागवत
सरकार्यवाह, रा. स. संघ.